प्रेरणा

जीवन के रंग - अनुभवों के संग

विषय सूची

1. ईमानदारी ही महानता है 9
2. सृष्टि के अन्त का लक्ष्य..10
3. भूल 11
4. अहंकार से अपमान 13
5. मूल्यों की धारणा 14
6. महान शिल्पी...15
7. जैसा बोलोगे, वैसा ही सुनोगे 17
8. दुआएँ दें और दुआएँ लें 19
9. यह भी बदल जायेगा...20
10. हिम्मतवान बनो 21
11. स्व से विश्व परिवर्तन 22
12. दृढ़ता सफलता की कुँजी है 23
13. निश्चय में विजय है 25
14. स्वमान जागृति 25
15. कर्त्तव्य ही धर्म है 26
16. ईश्वर में तन्मयता 27
17. आज्ञा भंग की सजा..28
18. सहकार या संग्राम 29
19. आशीर्वाद की कीमत 30
20. सोचिए पाप का भागी कौन? 32
21. ह और म का झगड़ा...33
22. जीवन संगीत..35
23. वायदा और बहाना...36
24. परचिन्तन से पतन 36

25. जीवन में संतुलन 38
26. नम्रता द्वारा नव निर्माण 39
27. दुनियाँ रैन बसेरा....................................41
28. अहिंसा की विजय 42
29. करुणा की भाषा 44
30. एकता में सफलता 46
31. बात का बतंगड़ 52
32. गर्व न कीजिए 53
33. कला! ईश्वर की अमूल्य देन.........................56
34. संतोषम् परम् सुखम्..................................57
35. ऐसी वाणी बोलिए (युक्ति से मुक्ति) 58
36. समय पर कार्य का महत्त्व 60
37. बनो रूहानी दर्पण 61
38. सच्चा मित्र...कर्म 62
39. प्यार बाँटते चलो 64
40. सम्पूर्ण समर्पण 65
41. पहले तोलो, फिर बोलो 66
42. तजो बुराई, करो बड़ाई 68
43. रात और दिन.......................................70
44. सच्चा सुख सन्तुष्टता में 72
45. कथनी-करनी एक समान हो.........................73
46. परिवर्तन – सच्ची पूँजी...............................74
47. निंदा हमारी जो करे, मित्र हमारा सो होय.....................78
48. जीवन का अन्तिम लक्ष्य, आत्मस्वरूप की अनुभूति 79
49. निर्णय का आधार शब्द नहीं शब्दार्थ हो 80
50. विवेकयुक्त भावना कल्याणकारी 83
51. वह कौन! स्थूल धन या ज्ञान धन.............................86
52. अंतर्मन का दरवाजा खोलो 89
53. गुण ही व्यक्ति की वास्तविक सुन्दरता है 90
54. एक वह भी जमाना था..93
55. शरणार्थी की रक्षा...95
56. क्षमाशीलता..98
57. छोड़ो तो छूटो..101

58. सेवा ही सर्वोत्तम 102
59. कर्म अनुसार प्राप्ति 105
60. उन्नति में विघ्न रूप ईर्ष्या 107
61. व्यक्ति की पहचान, बोल 109
62. युक्ति से मुक्ति 110
63. सम्बन्धों से स्नेह होता है 113
64. अभिमान का अस्त 114
65. सेवा का फल – मेवा 116
66. सत्यता की जीत 118
67. स्मृति विजय का और विस्मृति हार का प्रतीक है 119
68. राजऋषि 120
69. अहंकार रहित व्यक्ति ही महान होता है 122
70. न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी 123
71. नीयत का प्रभाव 124
72. ईमानदार बनो तो नौजवान की तरह 127
73. मृत्यु से मित्रता 128
74. भट्ठी 132
75. एकता से सफलता 132
76. तृष्णा दु:ख का कारण 134
77. कंजूस 134
78. इच्छाओं को जीतो 135
79. ट्रस्टीपन 136
80. शंका दु:ख का कारण 137
81. बड़ा मूर्ख कौन? 138
82. सकारात्मक दृष्टिकोण 139
83. जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि 140
84. स्वमान सम्मान देता है 142
85. सच्चा स्नेह 143
86. साधना से भगवान मिलते हैं 144
87. बड़ा कौन? 147
88. जीवन की सफलता 148
89. आइना 148
90. सहनशील शहंशाह बनाता है 149

91. अन्न का मन पर प्रभाव......................................151
92. नाम गुणदायक हो..152
93. शालिग्राम और शिव 154
94. अशान्ति का कारण अहंकार................................156
95. विज्ञान और अध्यात्म 158
96. दुआएँ लें, बद्दुआएँ नहीं 161
97. महानता सत्य की..162
98. पाप, पाप को खा जाता है 164
99. सहनशीलता सफलता का आधार है..........................165
100. भोले का साथी – भगवान...................................166
101. मृत्यु की स्मृति से पाप से मुक्ति..............................169
102. सत्य से बढ़कर असत्य.......................................171
103. माँ का वात्सल्य 172
104. समय का महत्त्व...174
105. असन्तुष्टता दु:ख का कारण 176
106. सुपात्र को दान दो 177
107. समाने की शक्ति को अपनाएँ 178
108. दान दो, धनवान बनो..179
109. सच्चे दिल से प्रभु समर्पण हो 181
110. स्वावलम्बन की की श्रेष्ठता..................................183
111. अहंकार 184
112. अपकारी पर भी उपकार करो...............................186
113. परिश्रम का चमत्कार...187
114. जहाँ प्रेम है, वहाँ सब कुछ है................................189
115. कला का सम्मान करो 191
116. सदाचार ही सम्मान दिलाता है 192
117. बुद्धि ही धनवान बनाती है 195
118. श्रेष्ठ कर्मों की पूँजी जमा करें...............................196
119. प्राण जाय पर वचन न जाय 198
120. श्रेष्ठ विचार ही विजय दिलाता है 200
121. माया का झूठा बंधन.. 204
122. ईश्वर भक्ति से बड़ा कोई नहीं 206
123. सत्य की नैया हिलती है डूबती नहीं 208

124. सहनशीलता दीर्घायु बनाती है 209
125. मूल्यहीन वस्तु 210
126. जैसा अन्न वैसा मन 212
127. बेपेंदी का लोटा 215
128. नर्क की एडवरटाइजमैंट......................................219
129. सतत् औयास से सफलता मिलती है 221
130. डर और दुविधा, दु:ख का कारण.......................... 223
131. समय की पहचान.. 223
132. रत्न अमूलय या चक्की!...................................... 225
133. गलत प्रयोग से दु:ख... 227
134. स्वच्छ बुद्धि में ही स्वच्छ ज्ञान रहता है 227
135. धरनी का प्रभाव.. 228
136. निश्चय बुद्धि 229
137. समर्पणता 230
138. सबसे श्रेष्ठ धन संतोष धन.....................................231
139. अंतर्मन में झाँकें 233
140. टाइम पास 234
141. जंगल में आग... 236
142. अन्न का मन पर प्रभाव 237
143. अज्ञानता से क्रोध होता है 240
144. खुशी का आधार, उद्देश्य का ज्ञान 241
145. महानता की महत्ता 242
146. परमार्थी संत.. 244
147. बुद्धिमान बंजारा 246
148. गुरु और शिष्य 249
149. प्रार्थना की सार्थकता 250
150. भूखे ब्राह्मण 252
151. योग का विज्ञान 253

ईमानदारी ही महानता है।

आचार्य चाणक्य मगध साम्राज्य के स्थापक और सर्वेसर्वा थे। वे राजनीति के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। वे पूरे साम्राज्य का संचालन भी करते थे। उनके इशारे पर चन्द्रगुप्त कार्य करते थे। उनकी

बुद्धि और सूझबूझ से मगध सम्राट सन्तुष्ट थे। इतने बड़े राज्य का संचालक होने के बाद भी चाणक्य स्वयं साधारण-सा जीवन जीते थे और घास-फूस की बनी एक झोपड़ी में रहते थे। कई विदेशी लोग भी उनसे मिलते और उनकी सादगी और पवित्र आचरण को देख कर दंग रह जाते।

फाहियान ने मगध देश में आचार्य चाणक्य की प्रशंसा सुनी, वह उनसे मिलने राजधानी में आ पहुँचा। रात हो चुकी थी। उस समय चाणक्य अपना कार्य कर रहे थे। तेल का एक दीपक जल रहा था। उन्होंने आगंतुक को जमीन पर बिछे आसन पर बैठने का अनुरोध किया। फिर वहाँ जल रहे दीपक को बुझा दिया, अन्दर गए और दूसरे दीपक को जलाकर ले आए। आगंतुक विदेशी व्यक्ति आश्चर्य में पड़ गया। वह इस रहस्य को नहीं समझ सका कि जलते दीपक को बुझाकर, बुझे हुए दूसरे दीपक को जलाना, यह कैसी बुद्धिमानी हो सकती है? उसने संकोच करते हुए चाणक्य से पूछा – यह क्या खेल है? जलते दीपक को बुझाना और बुझे दीपक को जलाना! जला था तो बुझाया ही क्यों और बुझाया तो जलाया ही क्यों? रहस्य क्या है? चाणक्य ने मुस्कराते हुए कहा इतने देर से अपना निजी कार्य कर रहा था इसलिए मेरा दीपक जल रहा था, अब आप आये, मुझे राज्य के कार्य में लगना होगा, इसलिये यह सरकारी दीपक जलाया है। आंगतुक चाणक्य की इस ईमानदारी और सच्चाई को देख बड़ा प्रभावित हुआ।

सृष्टि के अन्त का लक्षण

महाभारत आख्यान में वर्णन आता है कि पाण्डवों ने एक बार भगवान से पूछा – भगवन् , कृपया सृष्टि की वे निशानियाँ बताये जब आपका पुन: इस पर अवतरण होगा। भगवान ने उत्तर दिया – वे सभी लक्षण देखने के लिए आप सभी भाई, अलग-अलग दिशाओं में एक-एक घण्टा घूम कर आओ और लौटकर मुझे बताओं कि आपने क्या-क्या देखा? पाँचों भाई एक घण्टे से भी कम समय में लौट आए और आकर आश्चर्यजनक घटनाओं का वर्णन करने लगे। सर्वप्रथम युधिष्ठिर बोला- मैंने एक हाथी देखा जिसकी दो सूँडे थीं। इसके बाद अर्जुन ने सुनाया – मैंने एक ऐसा पक्षी देखा जिसके पैरों में मंत्र बँधे हुए थे परन्तु वह माँस को चोंच से नोच-नोच कर खा रहा था। इसके बाद भीम की बारी थी, उसने कहा – मैंने एक ऐसी गाय देखी जो अपनी बछड़ी का दूध पी रही थी। नकुल भी बोल उठा – मैंने तीन कुएँ देखे। पहला कुआँ भरा हुआ था लेकिन उसके पास एक कुआँ खाली था। इन दोनों से दूर, भरा हुए एक तीसरा कुआँ था, जो खाली कुएँ को पानी दे रहा था। सहदेव ने भी अपना आश्चर्य सुना दिया- मैंने पहाड़ से एक ऐसे पत्थर को फिसलते देखा जो रास्ते के सारे पेड़ों को गिराता हुआ आ

रहा था। वही पत्थर एक घास के तिनके के आगे रुक गया। इन अजीबोगरीब बातों को सुन पाँचों भाई एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे और संयत भाव से भगवान के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान ने इन सभी का आध्यात्मिक रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा – दो सूँड़ वाला हाथी राज्यसत्ता का प्रतीक है। धर्मग्लानि के समय का राजा (राजनीतिज्ञ) अमीर व गरीब दोनों से खायेगा। दोनों से लगान के रुप में पैसे वसूल करेगा। उसके मन में दया व सेवा की भावना नहीं रहेगी। मंत्रयुक्त पक्षी माँस नोच कर खाये, इसका अर्थ है कि कलियुग के अन्त में तथाकथित ब्राह्मण, पण्डित, पुजारी आदि मंत्रों के ज्ञाता होते हुए भी भ्रष्ट आचरण वाले होंगे। वे तमोगुणी खान-पान, चरणों की पूजा और धन की हवश, इन विकृतियों से ग्रसित होंगे। गाय द्वारा बछड़ी का दूध पिया जाना इस बात का प्रतीक है कि कलियुग में माता-पिता भी बेटी का कमाया खायेंगे। तीन अलग-अलग कुओं का रहस्य है – धर्म ग्लानि के समय मनुष्य अपने मात-पिता तथा अति नजदीक सम्बन्धियों से दूर हो जायेंगे और दूर-दराज के लोगों से मदद व लेन-देन करेंगे। पहाड़ से गिरता पत्थर धर्म की गिरावट का प्रतीक है। इस गिरावट से बड़े-बड़े विद्वानों का भी पतन हो जायेगा। अन्त में तृण समान हल्के, बिन्दुरूप भगवान शिव के द्वारा मानव मात्र को ज्ञान- योग की शरण दी जायेगी, तब गिरावट बन्द होगी।

भूल

एक बार ग्यारह यात्री एक नगर से दूसरे नगर जा रहे थे। जैसे ही आगे बढ़े तो रास्ते में एक नदी आ गई। सभी घबरा गए कि अब नदी कैसे

पार करें। किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं थी परन्तु जाना बहुत जरूरी था। उनमें से एक चतुर था। उसने कहा – घबराओ नहीं। नदी को अवश्य पार करेंगे। सभी ने एक-दो का हाथ पकड़कर नदी को पार कर लिया। फिर उस चतुर व्यक्ति ने कहा गिनती तो कर लें कि हम सभी हैं या नहीं। उसके कहने से एक ने गिनती करना शुरू की – एक- दो- तीन- चार- पाँच..दस। स्वयं को उसने गिनती नहीं किया और फिर चौंककर कहने लगा कि हम तो ग्यारह थे, एक कहाँ गया?

दूसरे ने कहा – मैं गिनता हूँ। उसने भी अपने को छोड़कर गिनती किया और कहा – दस। शेष सभी ने भी ऐसे ही अपने को छोड़कर गिनती किया और दस ही गिने। सभी रोने-चिल्लाने लगे। वहाँ से एक अन्य यात्री गुजर रहा था। उसने पूछा – अरे भाई! क्यों रो रहे हो? सभी ने उसे पूरी कहानी सुना दी। उसको तो पूरे ग्यारह ही दिखाई दे रहे थे। उसने कहा – देखो। अगर ग्यारहवें यात्री को खोजा तो? वे सभी बोले हम आपको भगवान मानेंगे। यात्री ने कहा – बहुत अच्छा, बैठ जाओ। सभी बैठ गये। यात्री ने कहा जैसे ही मैं चमाट मारूँ तो एक-दो-तीन....कहते जाओ। यात्री ने मारना शुरू

किया। एक को मारी तो उसने कहा – एक, दूसरे को मारी तो उसने कहा-दो, तीसरे ने-तीन......। इस प्रकार अन्तिम व्यक्ति ने कहा-ग्यारह। सब प्रसन्न हो गये। सभी ने उस चमाट मारने वाले व्यक्ति को कहा – सचमुच तुम तो भगवान हो।

हमें तो उन यात्रियों की मूर्खता पर हँसी आती है। परन्तु सोचकर देंखे, हम स्वयं क्या कर रहें हैं। हम ग्यारह यात्री चले थे इस जीवन यात्रा पर। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवीं आत्मा। देह अभिमान में आकर पाँचों कर्मेन्द्रियों और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की गिनती प्रतिदिन कर लेते हैं परन्तु स्वयं को अर्थात् आत्मा को भूल जाते हैं और स्वयं को भूलने के कारण ही इस संसार रूपी विषय वैतरणी नदी की दलदल में फँस गए। अपने वचन के अनुसार परमपिता परमात्मा शिव पुरुषोत्तम संगमयुग पर सृष्टि पर अवतरित होते हैं और सत्य ज्ञान सुनाते हैं कि – हे मानव आत्मा! तुम इन कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों से भिन्न हो। तुम तो पवित्र चैतन्य सत्ता हो, शान्ति तुम्हारा स्वधर्म है। अब स्वयं को और स्वयं के पिता परमात्मा शिव को पहचानो तो सम्पूर्ण सुख-शान्ति मिलेगी।

अहंकार से अपमान होता है।

मोमबत्ती और अगरबत्ती दो बहनें थीं। दोनों ही एक मन्दिर में रहती थीं। बड़ी बहन मोमबत्ती हर बात में अपने को गुणवान और अपने फैलते प्रकाश के प्रभाव में सदा अपने को ज्ञानवान समझकर, छोटी बहन को नीचा दिखाने का प्रयास करती थी। अगरबत्ती उसके इस प्रयास से व्यथित होती थी परन्तु व्यथा को प्रकट नहीं कर पाती थी। सदा की भाँति उस दिन भी पुजारी आया, दोनों को जलाया और किसी कार्यवश मन्दिर से बाहर चला गया। तभी हवा का एक तेज झोंका आया और मोमबत्ती बुझ गई। ये देख अगरबत्ती ने धीरे से अपना मुख खोला – हवा के एक हल्के झोंके ने तुम्हारे प्रकाश को समाप्त कर दिया परन्तु इस झोंके ने मेरी

सुगन्ध को और ही चारों तरफ बिखेर दिया। यह सुनकर मोमबत्ती को अपने अहंकार का बोध हो गया।

मूल्यों की धारणा

बरसात की हल्की-हल्की फुहार के बीच फिसलन भरे रास्ते पर दो साइकिल सवार सामने से आ रहे थे, अचानक टक्कर होती है। दोनों गिर जाते हैं। एक जैसे-तैसे खड़ा होता है और आँखें लाल करके दूसरे को कहता है – ''अन्धा है क्या? दिखाई नहीं देता तुझे?''

दूसरा भी तब तक खड़ा हो चुका था। वह तैश में आकर फुफकारता है.... ''तू अन्धा, तेरा बाप......।'' मामला इतना गम्भीर हो जाता है कि अनेक लोगों को बीच-बचाव करने के लिए एकत्रित होना पड़ता है। थोड़ी देर बाद उसी रास्ते पर दो और साइकिल सवार सामने से आ रहे थे। अचानक उनकी भी टक्कर हो जाती है और दोनों गिर पड़ते हैं। एक उठा, कपड़ों को ठीक किया और दूसरे भाई की तरफ हाथ बढ़ाया – '' भाई साहब! माफ कीजिये। मेरी गलती से आप गिरे।'' दूसरा उठकर मुस्कराता है – ''नहीं...नहीं, मेरा हैण्डल ही अनियन्त्रित हो गया था।'' दोनों खुशी-खुशी आगे का रास्ता तय करते हैं। दोनों घटनाओं में सब कुछ समान होते हुए भी मूल्यों की व्यावहारिक धारणा के कारण इतना अन्तर नजर आ रहा है। आइये, प्रेम, शान्ति, सद्भावना, नम्रता, सत्यता और पवित्रता का पाठ पढ़ें, जीवन में उतारें और सुखी समाज निर्माण करें।

महान शिल्पी

कपड़ो का ढेर कूटते-कूटते छज्जु धोबी गिड़गिड़ाया –'' क्या अजीब पत्थर है यह गड़रिया (वह पत्थर जिस पर धोबी कपड़ा धोता है) भी कि सालों से मेरे पूर्वज और फिर मैं इस पर प्रतिदिन ढेरों कपड़े कूटते आ रहे हैं, पर यह फिर भी काला-का-काला ही है, ज़रा भी सफेद नहीं होता। किसी ने ठीक ही कहा है कि अधजला अंगारा....। भला कोयला भी कहीं अपना रंग बदलने लगा?

कपड़े धुल चुके थे। छज्जु ने फिर से उस काले पत्थर की ओर देखा और मन ही मन सोचने लगा, ''अच्छा, कल कपड़ों पर ढेर सारा सोडा डालूँगा। खूब गरम-गरम पानी डाल कर कपड़ों को जोर-जोर से कूटूँगा। फिर तो शायद तुझ बद-नसीब का भी नसीब बदल जाये। मगर.. दूसरे दिन भी गिड़गिड़ाना ही छज्जु के हाथ आया क्योंकि अभी भी वह पत्थर काला का काला ही दिखाई दे रहा था। बेचारा छज्जु परेशान-सा कपड़ों की गठरी लिये मालिकों के घर देने चल दिया।
सेठ दयाराम जी के घर आज देश के सम्मानित शिल्पी 'हेमन्त राज' आये हुए थे। परेशान-सा छज्जू कपड़ों की गठरी ले दयाराम जी के घर पहुँचा। दयाराम जी ने उसके चेहरे के भाव को पढ़ते हुए पूछा,

''क्यों भाई छज्जु, आज तुम काफी परेशान दिखाई दे रहे हो? क्या बात है? परेशान दिल का हाल पूछे जाने पर छज्जू फूट पड़ा, '' क्या बताऊँ सेठ जी। रोज गरम पानी में ढेर सारा सोडा डाल कर खूब देरी तक उस गड़रिया पर कपड़े कूटता हूँ, पर फिर भी वह गड़रिया काला का काला ही है। अरे मैं ही नहीं बल्कि मेरा पूरा खानदान उस पर कपड़े कूटता आ रहा है, पर.. बदनसीब गड़रिया

अभी तक काला का काला ही है। ''छज्जु के मुँह फुलाने पर सेठ जी को हंसी आ गई। परन्तु..शिल्पी राज उसकी बात को बहुत ध्यान से सुन रहा था।

दूसरे दिन सवेरे जब छज्जु कपड़ो को सुखाने जा रहा था, तो देखा कि स्वयं शिल्पीराज उसकी तरफ आ रहे हैं। शिल्पीराज पास आकर बड़े प्यार से बोले – ''छज्जू, क्या तू मुझे अपना गड़रिया देगा? उसके बदले जो माँगेगा मैं दे दूँगा।'' पर भोला छज्जू समझ नहीं पाया कि यह सब क्या नाटक है और बोल उठा , '' साहब, यह तो पतित गड़रिया है। इस पर तो मैं लोगों के तमाम मैले कपड़े धोता हूँ। इसे छूने पर तो आपको शुद्ध होना पड़ेगा। इसे लेकर आप क्या करेंगे''? खैर, उस कलूटे गड़रिया के बदले छज्जु को एक बड़ा सुन्दर गड्डुर (पत्थर) और कुछ नोट भी मिले। फिर तो जिन्दगी पलट गई थी छज्जू की भी। दिन पर दिन बीतते गये। एक बार छज्जू धोबी को किसी काम से शहर जाना पड़ा। शिल्पागार के सामने से गुजरते हुए अचानक उसे गड़रिया की याद आई तो वह बरबस ही शिल्पागार के अन्दर घुसता चला गया। उसकी व्याकुल निगाहें जब टिकी तो देखा की शिल्पी छैनी और हथौड़े के प्रहार से एक पत्थर को जोर-जोर से काट रहा था। वह पत्थर कोई और नहीं बल्कि गड़रिया ही था।

कुछ दिन बाद छज्जू को मालूम पड़ा कि शिल्पी ने उस पत्थर से श्री कृष्ण की मूर्ति बनाई है जो आजकल साक्षी गोपाल के नाम से जीवन्तसम है। आज उस मन्दिर में मूर्ति प्रतिष्ठा समारोह था जिसमें छज्जू भी आया था। उसका आनन्दित मन किसी असीम आकाश को छू रहा था। उस साधारण गड़रिया (पत्थर) से बनाई गई पूजनीय देवता श्री कृष्ण की मूर्ति पर सभी लोग अपनी-अपनी भेंट चढ़ाये जा रहे थे। लेकिन.. सच तो यह है कि कुशल शिल्पी के हाथ लगने पर पतित गड्डुर भी देवता बन गया। जिसे छूने मात्र से लोग अपने को पतित समझते थे, आज वो गड्डुर पतित-पावन बन गया।

जैसा बोलोगे, वैसा ही सुनोगे

एक पहाड़ी इलाके में एक झोपड़ी में एक गरीब माँ अपने 13 वर्षीय पुत्र के साथ रहती थी। वह लड़का प्रातः ही कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी काटने पहाड़ की घाटी में निकल जाता था और लकड़ी काटकर अपनी झोपड़ी में लाया करता। यह उसका नित्य का काम था।
एक दिन घाटी में लकड़ी काटते समय लड़के ने जोर से आवाज लगाई तो आवाज घाटी में टकराकर गूँजने लगी। उस लड़के ने समझा दूसरा लड़का भी यहाँ है जो उसे चिढ़ा रहा है। उसने जोर से बोला कि

तुम कौन हो? आवाज आई तुम कौन हो? तब लड़के ने कहा तुम मुझे नहीं जानते? तब आवाज गूँजी तुम मुझे नहीं जानते? लड़के ने ललकारा –''मैं तुम्हें देख लूँगा'' तब आवाज आयी मैं तुम्हें देख लूँगा। फिर लड़के ने कहा- मैं कुल्हाड़ी से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। तब सामने आवाज गूँजी- मैं कुल्हाड़ी से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। अब उस बालक को निश्चय हो गया कि घाटी में दूसरा लड़का उसे चिढ़ा और धमका रहा है। उसने वापस घर आकर वह घटना अपनी माँ को सुनाई तो उसकी माँ समझ गई। घाटी में आवाज टकराकर आने की बात को उसका लड़का नहीं समझा। तब माँ ने अपने बेटे से कहा- बेटा कल जब तुम लकड़ी लाने जाना तो उस लड़के से प्यार से बोलना फिर देखना क्या होता है? दूसरे दिन घाटी में पहुँचते ही उसने आवाज लगाई ''दोस्त मैं आ गया हूँ'' तो आवाज आई दोस्त मैं आ गया हूँ। फिर लड़का बोला ''मैं तुमसे प्यार करता हूँ '' हम और तुम एक परमात्मा के बच्चे हैं। '' तुम मेरे घर चलो'' आवाज आई तुम मेरे घर चलो। वह लड़का बड़ा प्रसन्न होकर झोपड़ी में लौटा और सारी बात माँ से कह सुनाई कि वह लड़का अब मेरा दोस्त बन गया है। वो हमारे घर भी आयेगा और मैं भी उसके घर जाऊँगा। तब माँ ने कहा बेटा जैसा व्यवहार तुम दूसरों से करोगे वैसा ही व्यवहार दूसरे भी तुमसे करेंगे। जैसा बोलोगे वैसा सुनोगे। मीठे वचन अमृत समान है जिससे शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।

दुआयें दें और दुआयें लें।

बचपन में दुआओं के बारे में एक कहानी पढ़ी थी। एक राजा की सौतेली लड़की को उसकी सौतेली माँ ने जंगल में थोड़ा खाने के सामान के साथ भेज दिया। राजकुमारी स्नान करने के लिए नदी में गई। उतने में एक नाग-रानी जिसने अभी-अभी अपने बच्चों को जन्म दिया था और वह भूखी थी, तो उसने राजकुमारी का सब खाना खा लिया। तत्पश्चात् वह थोड़ी दूर जाकर बैठ गई और सोचने लगी – '' मैंने जिसका खाना खाया है वह क्या कहती है?'' राजकुमारी जब स्नान करके वापस आई तो उसने अपने सामान से खाने की चीजें खत्म हुई देखीं तो उसने प्रेम से दुआयें देते हुए कहा – कोई हर्जा नहीं, यह खाना जैसे मेरे पेट में शान्ति देता, ऐसे खाने वाले को भी पेट में शान्ति देगा। राजकुमारी के इन दुआओं भरे शब्दों को सुनकर नाग-रानी खुश हो गई और उसने राजकुमारी को अनेक रत्न दिये। राजकुमारी इन रत्नों को लेकर अपने पिता के पास आई। ईर्ष्या के कारण दूसरे दिन सौतेली राजरानी ने अपनी कन्या को भी बहुत अच्छा-अच्छा खाना देकर जंगल में भेजा। वह जब स्नान पर गई तो फिर से नाग-रानी उसका भोजन खाकर, इन्तजार में थोड़ी दूर जाकर बैठी। जब राजकुमारी ने अपना खाना खत्म हुए देखा तो उसने बद्दुआयें निकालीं-मेरे खाने को खाने वाले तेरा नुकसान हो जाये। यह

सुनकर नागरानी ने उस कन्या को डस लिया जिससे वह काली हो गई। सारा सौन्दर्य नष्ट हो गया। वह वापस राजमहल आयी तो उसको देखकर

राजरानी को बहुत दु:ख हुआ। इस प्रकार कहानी से हमें शिक्षा मिलती है कि – ''जाने-अनजाने में सदा दुआयें देते रहो''– ऐसा संस्कार बच्चों में डालें ताकि दुआयें देना-लेना स्वाभाविक संस्कार बन जाये।

यह भी बदल जायेगा

एक समय की बात है कि किसी राजा ने अपने राजकीय स्वर्णकार को बुलाकर कहा – हमें एक सुन्दर अँगूठी बनाकर दो तथा उस पर एक छोटी-सी पंक्ति अंकित कर दो, जो हमें हर परिस्थिति में काम आये। अँगूठी तो बन गई लेकिन वह स्वर्णकार इसी चिन्तन में था – इस पर लिखें क्या? उन्हीं दिनों उस राज्य में एक सन्त पधारे हुए थे। अँगूठी बनाने वाले स्वर्णकार ने राजा के आदेश का उस सन्त से जिक्र किया। सन्त बोले – ठीक है, इस पर यह पंक्ति अंकित कर दो कि – '' यह भी बदल जायेगा।'' राजा ने उस अँगूठी को पहन लिया और अपने राज्य-कारोबार में मग्न हो गया।

थोड़े समय के बाद पड़ोसी राजा ने उस राजा पर आक्रमण कर दिया। नौबत यहाँ तक आ गई कि उसे भागकर अपनी जान बचानी पड़ी। जब वह भाग रहा था, उस समय भी दुश्मन के कुछ घुड़सवार उसका पीछा कर रहे थे। वह एक गुफा की आड़ में खड़ा हो गया और अपने को जितना छुपा सकता था छुपा लिया। घोड़े की टाप नजदीक आती जा रही थी। अचानक उसकी नजर अपनी अँगूठी पर अंकित उन शब्दों पर पड़ी कि '' यह भी बदल जायेगा।'' उसकी धड़कन शान्त होने लगी। उसने सोचा – '' इतना घबराने की जरुरत ही क्या है? यह परिस्थिति भी थोड़े समय में बदल ही जायेगी।'' ज्ञान की एक नन्हीं किरण ने शब्दों के रुप में उसके अन्तर को आलोकित कर दिया। फिर कैसा दु:ख! घोड़े की टाप दूर, और दूर होती चली गई।

समय के अन्तराल में एक दिन वह अपने आपको तैयार कर युद्ध में पुन: विजयी हुआ। बड़े गर्व से, खुशी-खुशी, गाजे-बाजे के साथ वह पुन: अपने राज्य में प्रवेश कर रहा था। लेकिन उसी झण अचानक उसकी नजर पुन: उस अँगूठी पर पड़ी- ''यह भी बदल जायेगा।'' विजय उत्सव के बीच वह पुन: शान्त और अन्तर्मुखी होता चला गया- '' अरे, यहाँ तो सभी बदल जाते हैं! ये हार, ये जीत सब अल्पकाल के हैं, फिर इसमें कैसा दु:ख, कैसा सुख! अन्तर आलोक में उसे साक्षी बना दिया। सम-भाव की राजयुक्त मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गई। आज वह पहली बार अपने को अनेक बोझों से मुक्त , हल्का-फुल्का अनुभव कर रहा था।

हिम्मतवान बनो।

एक बार एक गरीब व्यक्ति की पत्नी चर्च में गई और वहाँ के पादरी से निवेदन किया कि- ‘‘मेरे पति को एक लाख डॉलर की लॉटरी मिल गई है। जब वह सुनेगा तो कहीं खुशी के मारे पागल न हो जाये, उसका

हार्ट फेल न हो जाये। अत: आप कुछ करें।‘‘ यह सुनकर पादरी ने कहा ‘‘ चिन्ता नहीं करो, सब ठीक हो जायेगा। मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।‘‘ घर जाकर पादरी ने उसके पति से कहा- ‘‘ मान लो कि यदि तुम्हें 10 हजार डालर की लॉटरी मिल जाये तो तुम क्या करोगे? पादरी ने सोचा था कि थोड़ा-थोड़ा करके बतायेंगे। उस व्यक्ति ने कहा- ‘‘ क्यों पहेलियाँ बुझा रहे हो! मैंने तो कभी 10 हजार देखा भी नहीं है! फिर भी उसमें से 2 हजार तुम्हें दे दूँगा।‘‘ फिर पादरी ने कहा कि - ‘‘यदि 25 हजार.. यदि 50 हजार..।‘‘ उस व्यक्ति ने कहा- ‘‘बस-बस, मैं गारन्टी करता हूँ कि 50 हजार में से आधा आपको दे दूँगा।‘‘ और यह सुनते ही खुशी के मारे पादरी का हार्ट फेल हो गया। क्योंकि वह साधारण चर्च का पादरी था जिसने कभी इतने डॉलर नहीं देखे थे।

स्व से विश्व परिवर्तन

एक बच्चा अपने पिता के कार्य में बाधा डाल रहा था, जो किसी आवश्यक कार्य में लगे हुये थे। पिताजी ने बच्चे को किसी कार्य में लगाना चाहा। उन्होंने मेज पर विश्व का मानचित्र रखा हुआ देखा। उन्होंने उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये और बच्चे को वो टुकड़े देकर कहा कि वह विश्व का मानचित्र बनाकर लाये।

बच्चा बहुत ही चतुर था। टुकड़ों को सही क्रम में लगाने से पहले उसने टुकड़ों को पीछे से देखना प्रारम्भ किया। उसने देखा तो उसे एक टुकड़े पर मानव शरीर के अंग का छोटा सा हिस्सा दिखाई दिया। उसने सभी टुकड़ों को उल्टा फर्श पर रखा और मानव शरीर के हिसाब से सब टुकड़ों को उल्टा कर फर्श पर रखा और मानव शरीर के हिसाब से सब टुकड़ों को क्रमश: लगाने लगा। जब उसे फिर से उल्टा किया तो विश्व का मानचित्र तैयार था। और तब वह भागता हुआ अपने पिताजी को दिखाने ले गया। पिताजी आश्चर्यचकित हुए।

पिताजी: (आश्चर्यचकित होकर) तुमने इतनी जल्दी विश्व का नक्शा कैसे बना दिया?

पुत्र: यह तो बहुत ही आसान है।

पिताजी: लेकिन यह कोई इतना सरल कार्य नहीं था। मैंने तो विश्व के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे और तुमने इतनी शीघ्रता से कैसे जोड़ लिया?

पुत्र: मैंने 'व्यक्ति' को ठीक किया और 'विश्व' ठीक हो गया।

इसी तरह से यदि हम व्यक्ति के परिवर्तन का नक्शा तैयार करें जैसे बच्चे ने किया अर्थात् यदि हम व्यक्ति को मानसिक रुप से सकारात्मक परिवर्तन के लिये तैयार करें तो विश्व का सम्पूर्ण नक्शा तैयार हो जायेगा अर्थात् विश्व सकारात्मक बन जायेगा।

दृढ़ता सफलता की कुंजी है।

एक बड़ा चतुर किसान था। कितना भी कोई कहे लेकिन वह कभी

कोई प्रतिज्ञा या अच्छा संकल्प लेने को तैयार नहीं होता था। वह बहुत भावना वाला था और उसकी उदारता भी महिमा योग्य थी लेकिन वह कभी कोई नियम लेने को तैयार नहीं होता था। एक दिन गाँव में एक साधु आया। किसान के एक मित्र को मजाक सूझी। वह उस किसान को उस संत के पास ले गया। दोनों ने विनम्र भाव से वंदना की। कोई आज्ञा चाही। साधु ने बड़े प्यार से पूछा- '' क्या आप कोई प्रतिज्ञा या संकल्प लेंगे?'' इस पर किसान पहले तो हिचकिचाया, कहने लगा-''वैसे आज तक कभी प्रतिज्ञा नहीं ली है लेकिन आप आज्ञा देंगे तो ना भी नहीं कर सकता।'' बेचारा किसान बंध गया। साधु ने मुस्कराकर पूछा- '' अच्छा क्या प्रतिज्ञा लेंगे? किसान ने कुछ क्षण सोचकर कहा-'' मेरे खेत के पास से रोज एक गंजा व्यक्ति निकलता है, आज से उसके गंजे सिर को देखकर फिर भोजन करुँगा।'' अब तो यह उसका नित्यक्रम बन गया कि पहले गंजे का दर्शन करना और फिर भोजन करना। 6-8 मास निकल गए। एक दिन वह गंजा दिखाई नहीं दिया। एक तरफ भूख और दूसरी तरफ इन्तजार। और आप जानते हैं कि इन्तजार की घड़ियाँ लम्बी होती हैं। इतने में दूर से उसने उस गंजे व्यक्ति को देखा जो चारों ओर देख रहा था। किसान खुशी से चिल्लाया- देख लिया! बात यह थी कि उस गंजे व्यक्ति को अपने खेत में एक सोने की मुहरों से भरा हुआ घड़ा मिला था, वह सिर ऊँचा करके देख रहा था कि कोई देखता तो नहीं हैं। इधर किसान अपनी खुशी को व्यक्त करने के लिए चिल्लाया। वह घबरा गया और सोचा इस किसान ने मुझे देख लिया है, क्यों न उसकी ही मदद घड़ा उठाने में ली जाए? उसने किसान को बुलाया और उसकी मदद ली और कुछ मुहरें किसान को दी। दोनों ने मिलकर घड़ा घर पहुँचा दिया।

निश्चय में विजय है

एक पति-पत्नी का आपस में बहुत प्यार था। एक बार वे दोनों जहाज पर सफर कर रहे थे। अचानक समुद्र में तूफान उठा और सब घबराने लगे। पत्नी ने देखा कि उसका पति एकदम निर्भीक होकर बैठा है। उसने पूछा- आपको डर नहीं लग रहा है? पति ने तुरन्त म्यान से तलवार निकाली और पत्नी की गर्दन पर रख दी और पूछा बताओ तुम्हें डर लग रहा है? तो पत्नी ने जवाब दिया कि मुझे मालूम है कि आपको मुझसे बहुत प्यार है, इसीलिए आप मेरी गर्दन नहीं काट सकते हैं। पति ने कहा कि इतना ही निश्चय, इतना ही विश्वास मुझे परमपिता परमात्मा में है। मेरा किसी भी बात में, किसी भी कारण से अकल्याण नहीं हो सकता।

स्वमान जागृति

एक दिन आरब बादशाह नशखान से मिलने के लिए एक दूसरा आरब आ पहुँचा। प्रवेश द्वार पर ही उसे रोक दिया गया। थोड़े इन्तजार

के बाद उसने बादशाह के नाम पर एक चिट्ठी लिखी कि मैं एक दीन-हीन आरब हूँ और आपसे मिलना चाहता हूँ। दरबान ने जाकर चिट्ठी बादशाह को दे दी, उसे अन्दर बुलवा लिया गया। जब आरब आया सामने तो नशखान ने पहला ही सवाल किया - '' तुम कौन हो?'' आरब ने नशे से उत्तर दिया-'' जहाँपनाह, मैं एक महान आरब हूँ।'' बादशाह चौंक कर बोले- '' अरे भाई! तुमने चिट्ठी में तो लिख भेजा था कि तुम एक दीन-हीन आरब हो। और यहाँ आते ही तुम्हारी भाषा बदल गई? आरब ने स्वमानयुक्त नशे से प्रत्युत्तर दिया-'' जब मैं नशखान से दूर था तब एक मामूली-सा आरब था लेकिन अब मैं स्वयं बादशाह के साथ हूँ तो महान आरब बन गया हूँ।''

कर्तव्य ही धर्म है

एक बार पानी में डूबते एक बिच्छू को एक साधू ने हाथ पर रख कर बाहर निकाला पर बिच्छू ने उसे ही डंक मारा और हाथ से छूट कर पुनः पानी में गिर गया। साधु ने पुनः निकाला, पुनः उसने डंक मारा। देखने वाले एक व्यक्ति ने कहा कि यह क्या, बिच्छू डंक मार रहा है, फिर भी साधु बचाने की कोशिश कर रहा है। तब साधु ने उत्तर दिया कि यह अपना कर्तव्य नहीं छोड़ता है तो मैं अपना कर्तव्य क्यों छोड़ूँ। इसका कर्तव्य है डंक मारना और मेरा कर्तव्य है किसी को बचाना। तो मुझे अपना कर्तव्य सदा पूरा करना है, चाहे कुछ भी हो जाए। अतः हमें भी धारणा बनानी है कि कोई अगर दुःख दे तो उसे दुआ दूँ। वास्तव में यह प्रेम की शक्ति अर्थात् अपकारी पर भी उपकार करना। क्या आज

की दुनियाँ में इस प्रकार की धारणा कोई बनाते है? लोग तो यही सोचते हैं कि ईट का जवाब पत्थर से देना है।

ईश्वर में तन्मयता

अकबर बादशाह दिन भर यात्रा करते हुए बहुत दूर निकल गए। चलते-चलते नमाज का समय हो गया। तब मार्ग में एक ओर नमाज का वस्त्र बिछा कर दो-जानु (घुटनों के बल बैठना) हो गए। उधर एक युवती अपने पतिदेव को खोजती आ रही थी। उसने नमाज का कपड़ा देखा नहीं और उसी के ऊपर पग रखती हुई आगे बढ़ गई। अकबर को उसकी गुस्ताखी पर क्रोध तो आया परन्तु चुप रहे। थोड़ी ही देर में जब वह युवती अपने पतिदेव के साथ लौटी तो अकबर कहने लगा-'' तुझे दिखा नहीं, मैं नमाज पढ़ रहा था और प्रभु भक्ति में था? तुझे नजर नहीं पड़ा नमाज के कपड़े पर पग धरती गई? युवती ने बड़े धैर्य से एक दोहा बोला –

नर राची सूझी नहीं, तुम कस लख्यो सुजान।
कुरान पढ़त बोरे भयो, नहिं राच्यो रहमान।।

''मैं तो अपने पतिदेव की खोज में गुम हो चुकी थी जिस कारण मुझे कुछ सूझा नहीं। परन्तु तुम तो प्रभु भजन में लीन थे। तुमने मुझे कैसे देख

लिया? मालूम होता है कि कुरान पढ़ कर बौखला गए हो। भगवान से अभी प्रीत नहीं हुई।'' अकबर यह उत्तर सुनकर अवाक् रह गया।

ईश्वरीय ज्ञान भी हमें बताता है कि ईश्वर से सच्ची दिल की प्रीत हो तो न व्यर्थ दिखाई देगा और न सुनाई देगा। लगन में मगन अर्थात् प्रभु से सच्ची प्रीत जोड़ने के लिए घर का सन्यास करने की जरुरत है परमात्मा को बस हमारा शुद्ध मन चाहिए। मन निर्मल है तो प्रभु से सर्व प्राप्तियाँ करना कोई मुश्किल नहीं हैं।

आज्ञा-भंग की सजा

विश्व विजेता बनने का स्वप्न देखने वाला नेपोलियन एक दिन अपनी विराट सेना के साथ शत्रु पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ रहा था। एक जंगल में उनका पड़ाव था। संध्या होते ही नेपोलियन ने आज्ञा फरमाई, ब्लैक आऊट (सम्पूर्ण अन्धकार)', कोई भी सैनिक रात्रि में दीपक नहीं जलाएगा। सभी सैनिकों ने स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य की। नेपोलियन, भेष परिवर्तन करके सभी तम्बुओं का

रात्रि में निरीक्षण करने लगा। अचानक एक तम्बू में उसे प्रकाश दिखाई दिया, निकट जाकर देखा कि एक सैनिक मोमबत्ती के प्रकाश में कुछ लिख रहा था। नेपोलियन ने सिंह-सी गर्जना करते हुए पूछा- '' क्या कर रहे हो? मेरी आज्ञा नहीं सुनी थी? सैनिक काँपने लगा। थरथराती आवाज में बोला- ''सुनी तो थी पर मुझे क्षमा करें, पत्नी की अचानक याद आ गई, उसे पत्र लिखने बैठ गया। '' नेपोलियन ने कहा -'' ठीक है, पत्र में इतना जोड़ दो कि मैंने आज्ञा- भंग करके यह पत्र लिखा है और आज्ञा-भंग की सजा में मुझे मौत मिल रही है। मेरा यह अन्तिम पत्र है, अब मैं तुम्हें इस दुनियाँ में नहीं मिल पाऊँगा।'' बेचारा सैनिक क्या करता! नेपोलियन की आज्ञा से उसे पत्र में इतना और जोड़ना पड़ा। पत्र पूरा होते ही नेपोलियन ने उसे गोली से उड़ा दिया।

सहकार या संग्राम

एक बार परमपिता परमात्मा ने सभी को भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। भोजन में 56 प्रकार के पकवान और 108 प्रकार के फल आदि रखे हुए थे। सभी भोजन कक्ष में जायें, उसके पहले उनके दोनों हाथों में तीन फुट की लकड़ी का डण्डा बाँध दिया था जिससे उनके हाथ मुड़ न सकें। सभी मेहमान भोजन कक्ष में गये और इतना स्वादिष्ट भोजन और फल देखकर सबके मुँह में पानी आ गया और सबने अपने मुख की तरफ हाथ मोड़ा तो लकड़ी के कारण हाथ नहीं मुड़ सका और भोजन पीछे वाली पंक्ति में बैठे मेहमानों के ऊपर अथवा आगे की पंक्ति में बैठे मेहमानों के ऊपर गिरा। सबके कपड़े आदि बिगड़ गये। जिससे वे क्रोधित होकर आपस में लड़ने लगे, एक-दूसरे को अपशब्द बोलने लगे और कोई ने तो हाथापाई भी शुरु कर दी। भोजन कक्ष बदल कर संग्राम का मैदान हो गया, सभी जगह भोजन बिखर गया और सभी मेहमान

भूखे ही रह गये। ये सब सतो-सामान्य संस्कारों वाली आत्मायें अर्थात् संग्राम करने की प्रवृति वाली आत्मायें थी। फिर परमात्मा ने अपने दूतों को भेज कर भोजन कक्ष खाली करवाया। दूसरे दिन दूसरे समुदाय को बुला कर उसी तरह हाथ बाँधकर भोजन कक्ष में भेजा गया। सुन्दर -स्वादिष्ट भोजन को देखकर उनको भी खाने की इच्छा होने लगी परन्तु खायें कैसे? इस पर सोच चलने लगा। ये सभी सतोप्रधान संस्कारों वाले व्यक्ति थे, इसलिए उन्होंने धैर्य से विचार किया। उनका हाथ अपने मुँह की तरफ तो मुड़ नहीं सकता था परन्तु दूसरे के मुख की तरफ तो बिना मोड़े ही जा सकता था। इसलिए उन्होंने प्रेम और स्नेह से, सहयोग भावना से अपने हाथ में चम्मच लेकर एक-दो को खिलाना आरम्भ किया और सभी ने अपने को तृप्त किया। उनकी सहयोग भावना से ना तो भोजन खराब हुआ और न ही भोजन कक्ष खराब हुआ और सभी की तृप्ति भी हो गई।

आर्शीवाद की कीमत

एक बार एक नगर सेठ ने महात्मा बुद्ध को भिक्षा के लिए निमन्त्रण दिया। महात्मा बुद्ध ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। सेठ जी का मन तो बल्लियों उछलने लगा कि मुझे भिक्षा के बदले ढेरों आर्शीवाद और दुआये मिलेंगी। निश्चित समय पर महात्मा बुद्ध उनके द्वार पर पहुँचे। नगर सेठ दौड़े-दौड़े गए और अन्दर से खीर भरा पात्र लाए। पर ज्योंही महाभिक्षु के पात्र में उड़ेलने लगे तो एकदम रुक गए क्योंकि भिक्षा-पात्र कीचड़ से भरा था। सेठ जी को थोड़ा विचित्र लगा परन्तु मौके की महानता को ध्यान में रखकर वे बिना बोले पात्र को साफ करने में लग गए और स्वच्छ भिक्षा-पात्र में खीर डालकर, महात्मा जी के हाथ में देकर आर्शीवाद की कामना से हाथ जोड़कर, सिर झुका कर उनके सामने खड़े हो गए। महात्मा बुद्ध शान्त मुद्रा में खड़े उसे निहारते रहे। उनका मौन नहीं टूटा, आर्शीवादों की झड़ी नहीं लगी। सेठजी का धैर्य-बाँध टूट गया। उन्होंने कातर स्वर में कहा- ‘‘ महाराज, आर्शीवाद से कृतार्थ कीजिए।‘‘ महात्मा जी तो जैसे इसी क्षण के इन्तजार में थे। उन्होंने ओजस्वी वाणी में धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ किया- ‘‘ हे नगर सेठ, जिस प्रकार भिक्षा लेने से पहले भिक्षा-पात्र का स्वच्छ होना जरुरी है, इसी प्रकार कीमती आर्शीवाद ग्रहण करने से पहले मन-बुद्धि रुपी पात्र का स्वच्छ होना भी जरुरी है। आपने कीचड़ से भरे पात्र के ऊपर खीर नहीं डाली क्योंकि आपको ख्याल था कि खीर व्यर्थ हो जाएगी। खीर की कीमत तो कुछ पैसे मात्र ही है परन्तु मेरे आर्शीवाद तो अमूल्य हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और छल-कपट से भरे मन-बुद्धि रुपी पात्र पर कीमती आर्शीवाद ठहरते ही नहीं। इसलिए आप भी पहले मन-बुद्धि को स्वच्छ कीजिए। काम की जगह आत्मिक स्नेह, क्रोध की जगह क्षमा, लोभ की जगह सन्तोष, मोह की जगह वैश्विक प्रेम और अहंकार की जगह नम्रता भरिए। छल-कपट के स्थान पर सरलचित्त बन जाइये, फिर अमृत तुल्य आर्शीवाद स्वतः तुम्हारी निजी सम्पदा बन जायेंगे, बिना

माँगे भी मिल जायेंगे।‘‘ नगर सेठ को,सचमुच, आत्म-विश्लेषण का बहुत सुन्दर मन्त्र महात्मा जी से मिल गया जिसने उसके जीवन को अच्छाई की ओर मोड़ दिया।

सोचिये पाप का भागी कौन?

एक मनुष्य ने एक बहुत सुन्दर उपवन लगाया। उसमें कई प्रकार के सुन्दर-सुन्दर फल देने वाले वृक्ष, पौधे व खुशबूदार फूल लगाये। बड़ी लगन व मेहनत से खाद व पानी देकर बगीचे की शोभा

बढ़ाई। बगीचे को देख कर वह मन ही मन अति हर्ष का अनुभव करता था और कहते नहीं थकता था कि कितना सुन्दर बगीचा है, जो मैंने अपने हाथों से तैयार किया है। इस सुन्दर उपवन में एक दिन एक गाय घुस गई और सभी सुन्दर पौधों, फूलों व पेड़ों को उसने नष्ट कर दिया। यह देखकर वह मनुष्य आग बबूला हो गया। उसने क्रोधवश गाय को इतना पीटा की वह वहीं ढेर हो गई। व्यक्ति का क्रोध जब शान्त हुआ तो उसे बहुत दु:ख हुआ कि यह क्या हो गया? उसके मन में विचार आया कि इस गाय को तो मैंने नहीं मारा। यह कुकृत्य तो भगवान ने ही मेरे इन दो हाथों से करवाया है। मेरे हाथ तो भगवान के अधीन हैं। दु:ख देना, पाप करना, मारना, यह भी तो वही करवाता है।

कहते हैं कि भगवान ने तभी एक फरिश्ते को उस मनुष्य के पास भेजा। फरिश्ते ने पूछा-‘‘ सुना है कि आपका बहुत सुन्दर बगीचा था जिसे गाय ने नष्ट कर दिया। क्या आप बता सकते हैं कि इतना सुन्दर बगीचा किसने लगया? उस व्यक्ति ने गर्व से जवाब दिया- ‘‘ मैंने।‘‘ फरिश्ते ने पुन: पूछा- ‘‘ ये सुन्दर -सुन्दर खुशबूदार फूल किसने लगाये?‘‘ वह बोला- ‘‘ यह भी मैंने।‘‘ फिर फरिश्ते ने बोला- ‘‘ तो फिर उस गाय को किसने मारा? व्यक्ति ने कहा- ‘‘भगवान ने।‘‘ सोचिए, इस तरह की बहाने बाजी से मनुष्य पाप के दोषों से छुटकारा कैसे पा सकता है? परमपिता-परमात्मा तो हम सब आत्माओं के पिता है, प्रेम का सागर है? आनन्द का सागर है, शान्ति का सागर है, सुख का सागर है, न कि दु:ख का सागर। दु:ख तो मनुष्य को अपने पाप कर्मो के फल के रुप में भोगने पड़ते हैं। इसमें भगवान दोषी कहाँ हुआ? जरा सोचिए....।

‘‘ह’’ और ‘‘म’’ का झगड़ा

एक बार ‘‘ह’’ और ‘‘म’’ बैठे गपशप कर रहे थे। ‘‘ह’’ अहंकार पूर्वक कह रहा था, मुझसे बड़ा कोई नहीं है। मैं देवों मे हरि, राजाओं में हरीशचन्द्र, तीर्थो में हरिद्वार, पशुओं में हिरण, पक्षियों में हंस, भोजन में हलुआ और सवारियों में हवाई जहाज हूँ।

‘‘म’’ ने सोल्लास कहा- मेरा सामना कौन करेगा। मैं देवों में महादेव, वीरों में महावीर, ऋषियों में महर्षि, मनुष्यों में मनु, फूलों में मन्दार, भोजन में मलाई, मालापुआ और मक्खन हूँ।
‘‘ह’’ को ‘‘म’’ की बातें अच्छी नहीं लगीं। उसने बिगड़कर कहा

क्यों डींग मारते हो सारा संसार जानता है कि तुम जीवों में मच्छर, मकड़ी और मक्खी हो। पानी में जाते हो तो मछली बन जाते हो। मेरे साथ तुम्हारा मुकाबला ही क्या है? मैं हाकिम हूँ मुझे लोग हजूर कहते हैं।

''म'' ने मुस्कराकर कहा, अपने ही मियाँ मिट्ठू बन रहे हो। तुम मनुष्यों में हिरणाकश्यप, आभूषणों में हथकड़ी, राजनीति में हड़ताल, बर्त्तनों में हंडिया, रोंगों में हैजा हो। मैं तो इंद्रियों में मन, मकानों में मंदिर और महल, व्यापारियों में महाजन तथा रत्नों में मोती हूँ।

''ह'' ने जोर से हँस कर कहा, वहाँ जाकर गाल बजाओ जहाँ तुम्हें कोई जानता न हो। मैं तो तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम मूर्ख हो, मक्कार हो, मतलबी हो, मलेच्छ हो, तुम फूलों में महुआ, खाद्य पदार्थो में माँस, रोगों में मलेरिया और महामारी हो। मैं पर्वतों में हिमालय, अंगों में हृदय हूँ। हंसता हूँ और दूसरों को हँसाता हूँ। तुम तो हँसते हुए आदमी को भी मार डालते हो।

''ह'' बोल ही रहा था कि वहाँ एक मानवता का पुजारी ब्रह्मा कुमार आ पहुँचा। उसने दोनों की बातें सुन कर कहा कि तुम दोनों बेकार में लड़ रहे हो। तुम तो एक दूसरे के अंग हो यदि तुम झगड़ा छोड़ कर मिल जाओ तो कितना अच्छा हो। ये बातें सुनकर दोनों आपस में मिल गये। हिन्दू और मुस्लिम 'हम' बन गये।

जीवन संगीत

ऊँची-ऊँची पथरीली चट्टानों को पार करते हुए एक युवा सन्यासी तेज कदमों से अपनी मंजिल की ओर बढ़ता ही चला जा रहा था। काफी लम्बा सफर तय करने के उपरान्त उसे विश्राम की आवश्यकता महसूस हुई। आश्रय की तलाश में इधर-उधर नजर दौड़ाई तो देखा उत्तर दिशा में एक विशाल वट-वृक्ष की छाया में कुछ पथिक विश्राम कर रहे हैं। सन्यासी भी वट-वृक्ष की नीचे पहुँच कर अपना दण्ड-कमण्डल रखकर विश्राम करने लगा। अन्य पथिकों में से एक गृहस्थी व एक संगीतकार भी था, जो वट-वृक्ष की शीतल छाँव में लेटे हुए थे। थोड़ी देर में अचानक मौसम परिवर्तन होता है और प्रवाहित हो रही मन्द शीतल पवन आँधी के रुप में बदल गई। आँधी के कारण वृक्ष की डालियाँ आपस में टकराने लगीं, कुछ टूट भी गई। डालियों का टकराना व टूटना देखकर गृहस्थी कहने लगा '' संसार में शान्ति कहीं नहीं, देखो! घर से निकलकर कुछ पल शान्ति के लिए यहाँ इस वृक्ष के नीचे आया तो यहाँ भी अशान्ति, टकराव, बिखराव। ऐ डालियो! तुम आपस में क्यों टकराती हो। तुम्हें कौन से हिस्से बाँट का भय सताये जा रहा है। तुम तो शान्ति से रहो।''
युवा सन्यासी देखता है कि आँधी के कारण पत्ते पेड़ से टूटकर दूर उड़ते चले जा रहे हैं। जिनका कोई अता पता ही नहीं पड़ता। सन्यासी सोचता है कि '' जीवन भी क्या है? एक अन्तहीन लम्बी अन्नत यात्रा.. जिसमें लगता है मंजिल कहीं नहीं, बस पड़ाव ही पड़ाव हैं। देखो, कल

तक ये पत्ते पेड़ की डाली से जुड़े थे, इनका कितना महत्व था आज ये महत्वहीन बनकर मिट्टी में मिल गये। मैं भी क्या हूँ? जब तक इस संसार में हूँ तब तक मेरी पहचान है। ये शरीर छूट जाये तो मैं भी माटी में मिल जाऊँगा। सच, जीवन तो पानी का एक बुलबुला है। पता नहीं कब कौन सी लहर आये और फूट जाये। भावी को किसने जाना...। ऐसा कहकर युवा सन्यासी अपनी वैराग्य की दुनिया में खो गया।

वायदा और बहाना

एक मनहूस व्यक्ति था। एक दिन उसने प्रभु को प्रार्थना की- हे प्रभु, अगर मुझे एक रुपया मिलेगा तो मैं उसमें से चार आने आपके कार्य में लगाऊँगा। संयोग से उसे रास्ते जाते एक गन्दा और फटा हुआ कागजी नोट मिल गया। उसने एक दुकान वाले को नोट बदलने के लिए दिया। दुकान वाले ने कहा कि नोट फटा हुआ है तो मैं इसके बारह आने ही दूँगा। हाँ/ना करते बेमन से उसने स्वीकार कर लिया। वहाँ से वह मन्दिर पहुँचा और प्रभु के समक्ष खड़े होकर कहा- हे प्रभु, क्या आपको मुझ पर भरोसा नहीं था जो चार आने पहले से ही काट लिये।

परचिन्तन से पतन

किसी गाँव में एक साधु रहता था। साधु की कुटिया के सामने एक कसाई रहता था, जिसे देखकर साधु मन ही मन उस पर क्रोधित होता था तथा उससे घृणा करता था। हर समय साधु कसाई के अवगुणों को ही देखता एवं स्मृति में लाता था और यहाँ-वहाँ वर्णन करता था। कसाई कितनी बकरियाँ काटता है- यही गिनता रहता था। उसकी दुकान पर माँस खरीदने के लिए आने वालों की संख्या भी गिनता रहता था। वह कसाई के साथ-साथ माँस खरीदने वालों से भी घृणा करने लगा। इस प्रकार वह साधु सारा दिन कसाई तथा माँस खरीदने वालों की बुराइयों को देखता, उन्हें दूसरों के सामने वर्णन करता, इसमें ही उसका समय बीतने लगा।

संयोगवश एक दिन साधु और कसाई-दोनों की मृत्यु हो गई। जब दोनों धर्मराज के पास पहुँचे तो धर्मराज ने दोनों को अपने-अपने कर्मों का वर्णन करने को कहा। तब कसाई बोला-''मालिक, मैं जात का कसाई था, बकरा काटना मेरा धंधा था। मेरी रोज-रोटी थी। इसलिए मैं अपनी रोजी-रोटी के खातिर यह पाप-कर्म करता था। पाप-कर्मो के लिए मैं ईश्वर से क्षमा माँगता था। दान-पुण्य आदि भी करता था।'' फिर धर्मराज ने साधु से पूछा- अब तुम अपने कर्मो का वर्णन करो। धर्मराज के सवाल के जवाब में साधु बोला- ''यह कसाई दिन में कम से कम 10-15 बकरियाँ काटता था, जिसे 50-

60 व्यक्ति (जो फलाना-फलाना है) खरीदने आते थे। ये सब पापी हैं, ये सब नर्क के हकदार हैं।'' यह सुनकर धर्मराज बोले- ''मैंने तुमसे केवल तुम्हारे अपने ही कर्मो का वर्णन करने को कहा है, न कि दूसरों के कर्मो का। क्योंकि तुमने सारा

जीवन दूसरों के अवगुणों को देखने और वर्णन करने में ही बिताया, कभी अपने कर्मो का ख्याल भी नहीं किया कि मैं क्या कर रहा हूँ। साधु होकर भी तुमने कोई साधुत्व वाला काम नहीं किया। बस, परचिन्तन तथा व्यर्थ चिन्तन में ही अपना समय गँवाया। तुमसे तो वह कसाई अच्छा है, जो कुछ समय प्रभु-चिन्तन में गुजारता था व अपने पापों के लिए ईश्वर से क्षमा माँगता था दूसरों के दुःख-दर्द में साथी बनता था। परन्तु तुमने साधु होकर भी सिवाय परचिन्तन के कुछ भी नहीं किया। तुम्हारे भाग्य के खाते में पुण्य का लेश मात्र भी स्थान नहीं है। बस 'पाप ही पाप है' । बाबा हमेशा कहते हैं-मीठे बच्चे परचिन्तन छोड़ स्वचिन्तन एवं शुभ कामना करो। शुभ भावना और शुभ-कामना उत्तम सेवा का आधार है।''

जीवन में सन्तुलन

एक बार महात्मा बुद्ध का एक शिष्य आनन्द, दीक्षा ग्रहण करते ही उग्र तपस्या में लीन हो गया। उसे तन की भी सुध नहीं थी। परिणामस्वरुप तन सूख कर काँटा हो गया। एक दिन अचानक महात्मा बुद्ध की नजर आनन्द पर पड़ी। उन्होंने आनन्द को बुलाया और पूछा-'वत्स, पहले तो तुम वीणा अच्छी बजाते थे, तो लीजिये यह वीणा और एक राग बजाइये।' आनन्द बोले- 'भन्ते, यह कैसे बजेगी? इसके तो सभी तार ढ़ीले हैं।' बुद्ध बोले- 'लाओ आनन्द, मैं वीणा के तारों को कस दूँ, फिर तू बजाना।' जब दोबारा वीणा आनन्द के हाथों में आया तो फिर आनन्द उलझन में पड़ गया और बोले-'भन्ते, इसको यदि अभी बजायेंगे तो इसके सभी तार टूट जायेंगे क्योंकि यह अत्यधिक तनावपूर्ण है। बुद्ध ने कहा- 'अच्छा, इसे ठीक कर लो फिर बजाओ।' जब वादन क्रिया समाप्त हुई तो फिर बुद्ध ने आनन्द से कहा-'यह जीवन भी वीणा के तार की तरह है। जैसे वीणा के तार से धुन निकालने के लिए उसे मध्य में रखा जाता है, न बहुत ढीले न बहुत तना हुआ। इसी प्रकार, जीवन की वीणा से आनन्द, प्रेम, सुख-शान्ति के स्वर तभी झंकृत होते हैं, जब वह मध्य में हो, सन्तुलित हो।' भाव यह है कि जीवन के विभिन्न पहलुओं में जब तक सन्तुलन एवं आदर्श नहीं तो खुशी और आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।

नम्रता द्वारा नव निर्माण

बात बहुत पुरानी है। एक बहुत सुन्दर बाग था। उसमें तरह-तरह के फूल खिले हुए थे। बाग में एक तरफ फूलों की ही क्यारी थी। उन गुलाबों में एक गुलाब सबसे बड़ा था। सारे फूल उसे 'राजा गुलाब' कहकर पुकारते थे। राजा गुलाब अपने को इस तरह सम्मान मिलते देखकर घमण्डी हो गया था। वह किसी भी फूल से सीधे मुँह बात नहीं करता था। परन्तु अन्य फूल उसकी यह नादानी समझते हुए भी उसे सम्मान देते रहे।

राजा गुलाब के पौधे की जड़ के पास एक बड़ा काला पत्थर जमीन में गड़ा हुआ था। वह अक्सर उस पत्थर को डाँटता, ''ओ काले पत्थर! तेरी कुरुपता के कारण मेरा सौन्दर्य बिगड़ता है। तू कहीं चला जा। ''पत्थर शान्त भाव से राजा गुलाब को समझाता, ''इतना घमण्ड ठीक नहीं। अपना सौन्दर्य देख दूसरे को तुच्छ बतलाना तुम्हारे हित में नहीं है।'' राजा गुलाब अकड़कर कहता, ''अरे कुरुप पत्थर! तेरा मेरे आगे क्या सामना? तू तो मेरे चरणों में पड़ा है।''

एक दिन एक व्यक्ति उस बाग में आया। घूमते-घूमते उसकी नजर उस राजा गुलाब के पास पड़े हुए काले पत्थर पर पड़ी। उसने वह गड़ा हुआ पत्थर वहाँ से उखाड़ा और उसे अपने साथ ले गया। राजा गुलाब की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने सोचा, ''अच्छा हुआ जो यह भद्दा पत्थर यहाँ से हट गया! इसकी कुरुपता मेरा सौन्दर्य नष्ट करती थी।''

कुछ दिन के बाद वहाँ पर एक और व्यक्ति आया। उसने राजा गुलाब को तोड़ा और एक मन्दिर में जाकर भगवान् की मूर्ति के चरणों में समर्पित कर दिया। राजा गुलाब को वहाँ बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा। वह वहाँ पड़े-पड़े बाग में मिलने वाले सम्मान की बात सोच ही रहा था कि उसे हँसने की आवाज सुनाई दी। उसने इधर-उधर देखा, परन्तु कोई दिखाई न दिया। उसे आवाज सुनाई दी, ''राजा गुलाब, इधर-उधर क्या देखते हो? मुझे देखो, मैं उसी पत्थर की मूर्ति हूँ जिसे तुम हमेशा डाँटते रहते थे, तुच्छ समझते थे। आज तुम मेरे ही चरणों में पड़े हो।'' '' तुम, तुम यहाँ कैसे आये? , राजा गुलाब ने आश्चर्य से पूछा। मूर्ति रुपी पत्थर ने कहा, ''जो व्यक्ति मुझे ले गया था वह एक मूर्तिकार था। उसने ही तराश कर मुझे इस रुप में ढाला है।'' राजा गुलाब अपने किये पर पछतावा करने लगा। उसने मूर्ति रुपी पत्थर से क्षमा माँगी और कहा, '' मुझे मालूम हो गया कि घमण्डी का सिर हमेशा नीचा होता है।'' अत: अपने अहंभाव को इस हद तक त्याग दो कि आपकी अपनी हस्ती रहे ही नहीं, जिसके लिए किसी ने सच ही तो कहा है-

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर तू मर्तबा चाहे।
कि दाना मिट्टी में मिलकर ही, गुले गुलजार होता है।।

दुनियाँ रैन बसेरा

कहते हैं कि बल्क में एक बड़ा ही ख्याति प्राप्त फकीर हुआ, नाम था उसका इब्राहिम। बात उन दिनों की है जब वो बल्क का बादशाह था। एक दिन वह अपने महल में विश्राम कर रहा था। उसे बाहर से कुछ झगड़ने की आवाज सुनाई दी। एक फकीर उसके द्वारपाल से कहा रहा था कि आज रात इस सराय में उसे विश्राम करना है। द्वारपाल ने कहा- तुम पागल हो? देखते नहीं कि यह बादशाह का महल है। और किसी के महल को सराय कहना, रैन बसेरा कहना उसका कितना बड़ा अपमान है? यदि तुम्हें रात बितानी ही है तो बस्ती में जाओ, वहाँ तुम्हें कोई सराय मिल जायेगी। उस शोरगुल की आवाज को सुनकर बादशाह खुद द्वार

तक आये और फकीर को अन्दर ले गये।

'तुम अन्धे हो, आँखे होते भी दिखाई नहीं देता कि यह सराय नहीं, मेरा महल है'-बादशाह ने कहा। फकीर ने कहा- 'हाँ लेकिन यह बताओ कि जब मैं कुछ समय पहले यहाँ आया था उस समय कोई दूसरा व्यक्ति यहाँ था, वह कौन था? वह मेरे वालिद थे, जो स्वर्ग सिधार गये'- बादशाह ने कहा। फकीर ने कहा- 'हाँ , उससे भी कुछ समय पूर्व जब हम यहाँ आये थे उस समय एक तीसरा व्यक्ति इस सिंहासन पर बैठा था, वह कौन थे? हाँ, वह हमारे दादा जी थे, उनका भी स्वर्गवास हो गया'- बादशाह ने कहा। वह फकीर हंसने लगा और उसने कहा-'जब मैं फिर दोबारा आऊँगा तो यह पक्का है कि यहाँ तुम्हारा बेटा मिलेगा। इसीलिये तो मैं इसे सराय कहता हूँ। तीन बार आया, अलग-अलग लोगों को ठहरा पाया। फिर तुम्हारा महल कैसे हुआ? कुछ समय के बाद लोग यहाँ आते हैं और चले जाते हैं। फिर तेरा महल कैसे हुआ? सराय नहीं तो क्या है? कहते हैं कि उस फकीर की ये बातें सुनकर इब्राहिम को एक गहरा झटका लगा-ऐसे, जैसे बिजली। उसकी आँखें खुल गई। उसने फकीर से कहा- 'आप बैठिये, मैं चलता हूँ।'

अहिंसा की विजय

एक बार महात्मा बुद्ध एक स्थान से किसी दूसरे गाँव जाना चाहते थे। जिस गाँव जाना चाहते थे, उस गाँव का एक छोटा-सा रास्ता जंगल से होकर जाता था। जंगल में 'अंगुलिमाल' नाम का एक बहुत खूँखार, निर्दयी एवं क्रूर डाकू रहता था। वहाँ से जो भी व्यक्ति जाते थे, वह उसे लूटकर उसके हाथों की अंगुलियाँ काट लेता था और फिर उन्हीं अंगुलियों की माला बनाकर एवं पहनकर स्वछन्द घूमता था। ऐसे भयानक डाकू से सभी लोग डरते थे और दूसरे लम्बे मार्ग को पार करके दूसरे गाँवों की यात्रा करते थे।

जब बुद्ध उसी रास्ते से जाने लगे तो लोगों ने उन्हें खतरे से आगाह करते हुए बहुत समझाया कि आप उस रास्ते से न जायें। परन्तु महात्मा बुद्ध उसी रास्ते से अकेले चल पड़े। जब वे घनघोर जंगल से गुजर रहे थे तो किसी व्यक्ति ने भारी और ऊँची आवाज में आदेश दिया-''रूक जाओ, एक कदम भी आगे बढ़ाया तो जान से हाथ धोना पड़ेगा।'' किन्तु बुद्ध अपनी मस्त चाल से चलते ही रहे। उस व्यक्ति ने इनकी तरफ भयानक आवाज करते हुए इन्हें पकड़ने हेतु दौड़ लगायी। जब वह पास आ गया तो उसने फिर रूकने को कहा, उसकी आँखें गुस्से से लाल थीं, उसके हाथ में खून भरी बाँक (एक प्रकार का धारदार हथियार) थी। महात्मा बुद्ध रूक गये। उसने बुद्ध से पूछा- जानते हो मैं कौन हूँ? बुद्ध ने कहा-हाँ, लोंगो ने बताया कि आप अंगुलिमाल हो। उसने पूछा- ''क्या मुझे देखकर तुम्हें डर नहीं लग रहा? तुम अन्य लोगों की तरह मुझे देखकर बचाव हेतु भाग भी नहीं रहे।'' बुद्ध ने कहा- नहीं, बिल्कुल नहीं। वह पुनः कहने लगा कि मैं लोगों की अंगुलियाँ काट लेता हूँ और उसकी माला बनाकर पहनता हूँ। उसने डरावनी शक्ल बनाकर कहा-देखो, यह माला! बुद्ध ने इसके उत्तर में निर्भयतापूर्वक दोनों हाथ उसके सामने बढ़ा दिये। ऐसा दृश्य जीवन में पहली बार देखकर अंगुलिमाल अवाक् रह गया। उसे जीवन में पहली बार ऐसा कोई व्यक्ति मिला था, जो इतना निर्भय, अचल-अडोल स्थिति में था। ऐसे क्रूर हिंसा पर उतारु व्यक्ति के प्रति भी करुणा एवं दया का भाव था। फिर भी उसने बुद्ध के दोनों हाथ एक हाथ से पकड़े और दूसरे हाथ से बाँक पूरी शक्ति से उठाकर हाथ काटने को बढ़ायी और बुद्ध की आँखों में आँखे डालकर देखता रहा, और जब हथियार वाला हाथ जैसे ही नीचे आया, उस डाकू पर उनकी अहिंसा का ऐसा असर पड़ा कि वह हथियार फेंककर उनके चरणों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करते हुए कहने लगा- '' बताइये आप कौन है? इतने शान्त और निर्भय।'' महात्मा बुद्ध को जैसे इसी क्षण का इन्तजार था, उन्होंने उसे उपदेश दिया।

करुणा की भाषा

किसी वन के आश्रम में एक ऋषि अपने शिष्य पारंगत के साथ रहते थे। पारंगत एक आज्ञाकारी शिष्य था। एक दिन ऋषि बोले- '' वत्स पारंगत, तुमने बहुत समय तक मेरी सेवा की है। इस अवधि में मेरे पास जो कुछ भी ज्ञान था, वह सब मैंने तुम्हें सिखला दिया है। मैं बहुत समय तक इसी आश्रम में रहा। इस कारण मैं मात्र दो ही भाषायें सीख पाया हूँ। लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम अनेक स्थानों का भ्रमण करो। इस अवधि में तुम संसार की अधिकाधिक भाषायें सीख कर वापस आओ।'' आज्ञाकारी पारंगत देशाटन पर निकल पड़ा। उसने मन ही मन संकल्प लिया-'' मैं संसार की अधिक से अधिक भाषायें सीखकर वापस लौटूँगा।'' पारंगत नए-नए स्थानों से गुजरता रहा। लगभग दस वर्ष बीत गये।

उसने संसार की अनेक भाषायें सीख लीं और कुछ धन भी इकट्ठा कर लिया। सब कुछ लेकर वह गुरु के आश्रम की तरफ चल पड़ा।

एक लम्बी यात्रा के पश्चात् वह आश्रम के समीप जा पहुँचा। उसने उत्साहपूर्वक आश्रम में प्रवेश किया परन्तु यह क्या! गुरुजी रुग्णावस्था में शैय्या पर पड़े थे। यह देखकर उसे थोड़ा दु:ख तो पहुँचा लेकिन उत्साह में कोई कमी नहीं आई। उसने गुरु को प्रणाम किया और अपनी बात छेड़ दी- ''गुरुजी! अब आपका शिष्य वह पारंगत नहीं रहा बल्कि बहुत कुछ सीखकर आया है।'' ऋषि शान्त भाव से सुनते रहे। फिर अपने टूटते हुए स्वर को संयत कर बोले-'' वत्स पारंगत! क्या तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगे?'' ''क्यों नहीं गुरुजी! आप आज्ञा तो कीजिए।'' ऋषि बोले- '' पुत्र! तुमने बहुत सारे स्थानों का भ्रमण किया है। क्या तुम्हें इन स्थानों पर कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई दिया जो बेबस, लाचार होकर भी दूसरों की मदद कर रहा हो? तुम्हें कोई ऐसी माँ मिली जो अपने शिशु को भूखा देखकर अपना दूध रहित स्तन उसे पिला रही हो?'' '' ऐसे लोग तो पूरे संसार में मिले थे गुरुजी!''- शिष्य उत्साहित होकर बोला। '' क्या तुम्हारे मन में उनके लिए सहानुभूति जागी? क्या तुमने उनसे प्रेम के कुछ शब्द कहे?

ऋषि का ऐसा प्रश्न सुनकर पारंगत सकते में आ गया। उसे ऋषि से ऐसे प्रश्न की कदापि आशा नहीं थी। वह बोला- ''गुरुजी! मैं तो आपकी आज्ञा का पालन करता रहा। मुझे इतना समय कहाँ था, जो मैं यह सब करता। इतने वर्षो में मैंने पाँच सौ भाषायें सीख ली है।'' इतना कहकर पारंगत ने गुरु की तरफ देखा और पाया कि उनके मुख पर एक रहस्यमयी मुस्कान आकर चली गयी। ऋषि बोले- ''वत्स पारंगत! तुम अब भी प्रेम, सहानुभूति और करूणा की भाषा में अपारंगत हो। यदि ऐसा न होता तो तुम दुखियों का दु:ख देख मुँह न फेर लेते। इतना ही नहीं, तुम्हें अपने गुरु की रुग्णावस्था भी नहीं दिखाई पड़ी। तुमने मेरा कुशल-क्षेम जाने बिना ही अपनी कहानी छेड़ दी।'' इतना कहकर गुरु कुछ क्षणों के लिए रूके। उनका हृदय बैठा जा रहा था। वे अपने हृदय को संयत कर पुन: बोले-''पारंगत! मैंने तुम्हें जिस उद्देश्य से देशाटन पर भेजा था, वह पूरा नहीं हुआ। मैं तुम्हें करूणा की भाषा सिखाना चाहता था। हो सके तो यह भाषा भी अवश्य सीख लेना। इतना कहकर गुरुजी सदा के लिए शांत हो गये। पारंगत को भाषा सीखने का उद्देश्य समझ में आ गया। उसने अपने आप को करुणाशील और प्रेमस्वरुप बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

एकता में सफलता है।

पात्र परिचय:

1. राजा हाथरस

2. पाँच अंगुलियाँ

3. मन्त्री

किसी प्रदेश में 'हाथरस' नामक राजा राज्य करता था, अपनी शक्ति तथा सूझ बूझ के लिए काफी प्रसिद्ध था। उसकी अध्यक्षता में अनेक रचनात्मक कार्य सम्पन्न हुए। उसके राज्य में सभी खुशहाल थे। क्या आप जानते हैं उसकी प्रजा कौन थी? उसकी प्रजा थी उसकी अंगुलियाँ! सभी अंगुलियाँ में आपस में प्रेम, सहयोग, सद्भावना और अनुशासन था। इन्हीं गुणों के आधार पर उन्होंने सुन्दर मनभावन भवनों का निर्माण किया, दिलों को जोड़ने वाले महल बनाए। निर्मल आनन्द तथा आमोद-प्रमोद के सुन्दर उद्यानों का निर्माण किया। संक्षेप में जीवन को सरस, सरल एवं सम्पन्न बनाया। अचानक समय ने करवट ली, परस्पर प्रेम-भावना, स्वार्थ में बदल गई! मान, शान, दंभ की वृति अहंकार का रुप धारण करने लगी। वैर-विरोध, ईर्ष्या-द्वेष के वश अपने को बड़ा दिखाने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। सभी अंगुलियों में मैं-पन की बीमारी फैल गई।

(सामूहिक कोलाहल)- मैं बड़ा.. मैं बड़ा.. नहीं, मैं बड़ी हूँ। अरे नहीं, मैं बड़ा हूँ। नहीं-नहीं मैं बड़ी हूँ। अबे जा-जा, मैं बड़ी हूँ।

कनिष्ठिका- ओ हो! निर्णय कौन करे कि बड़ा कौन है?

अनामिका- अरे! चलो, राजा के पास चलते हैं।

मध्यमा- हाँ,हाँ हमारा राजा बड़ा सयाना और गुणवान है।

तर्जनी- हाँ, राजा का जो भी निर्णय होगा, हमें मान्य होगा। (सबसे पूछते हुए) मान्य होगा ना! चलो,चलो सभी चलते हैं। (राजा के पास जाने हेतु सबका प्रस्थान)

(राजा के सम्मुख पहुँचकर)

समवेत स्वर में- प्रणाम राजन!

राजा-(धीर-गम्भीर स्वर में) कहिए, कैसे आना हुआ?

मध्यमा- हम बड़ी समस्या में हैं महाराज! हमारा निर्णय कीजिए कि हम सबमें बड़ा कौन है? हम आप के आभारी होंगे।

राजा- मैं अपना निर्णय दूँ, उससे पूर्व आप प्रत्येक बारी-बारी से अपनी-अपनी विशेषताएँ बताइए ताकि मैं समझ सकूँ कि आप अपने आप को बड़ा क्यों मानते हैं!

(सभी एक-दूसरे को निहारने लगते हैं। तभी सर्वप्रथम अंगूठा सामने आता है और अपनी विशेषता का बखान करता है। तत्पश्चात् क्रमशः सभी अंगुलियाँ आत्मश्लाघा करती हैं।)

अँगूठा-

दिखने में मैं छोटा-नाटा, मोटा हूँ, मतवाला हूँ।
गुरुभक्ति में वचनबद्ध हो गर्दन तक कटवाता हूँ।
बड़े-बड़े कामों को देखो, बड़ी शान से करता हूँ।
बना भिखारी को अधिकारी, निर्बल को बल देता हूँ।

तर्जनी-

तर्जनी हूँ नाम से, सबको तारने वाली हूँ।
ईसा, मुहम्मद, नानक की, प्रभु से तार जुड़ाने वाली हूँ,
मैं शक्तिपुंज रणभेरी हूँ, स्वदर्शन चक्रधारी हूँ,
मैं दुष्टों की संहारी हूँ।

मध्यमा-

सबसे लम्बी-उँची दिखती, समभाव सन्तुलन रखती,
मैं सबसे बलवान, हस्त-किले की शान,
मैं शोभा-श्रृंगार राज्य की, पतली, लम्बी विजय ध्वज-सी
(सभी को सम्बोधित करती हुई)
आइए, आइए, सारे एक कतार में आ जाइए। लीजिए, देखिए,
हूँ ना मैं सबसे बड़ी,‘प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्‘
(राजा की तरफ मुखातिब होकर)
महाराज, आप ही निर्णय दीजिए ,
सबसे बड़ी हूँ ना।

अनामिका-

मैं तो हूँ सबसे निराली, भले कहो मुझ को मतवाली।
मंगल वेला में मुस्काती, भले अनामिका ही कहलाती।
राजा का अभिषेक कराती, भगवान का नैवेध्य कराती।

कनिष्ठिका-

दिखने में मैं नन्हीं-दुर्बल, हूँ बड़ी बलवान रे भैया।
गोवर्धन उठाने वाली, सहयोग का पाठ पढ़ाने वाली,
मत बनो अनजान रे भैया। हूँ मैं बड़ी महान रे भैया।
(सभी को सुनने के बाद राजा सोच मुद्रा में डूब जाते हैं)

सभी का इकट्ठा स्वर- महाराज, शीघ्र निर्णय दीजिए। हमें आपका निर्णय स्वीकार है।

राजा- सचमुच हैं तो आप सभी गुणवान! मैं आपकी योग्यता को स्वीकार करता हूँ पर मैं अपना निर्णय दूँ, उससे पूर्व आप को एक कार्य करना होगा। सभी समवेत स्वर में-कैसा कार्य? आप आज्ञा दीजिए महाराज, हम हर कार्य को करने को तैयार हैं।

(राजा, मंत्री को इशारे से बुलाता है, कुछ मंत्रणा करता है। मंत्री बाहर जाता है। थोड़ी देर के पश्चात् रुमाल से ढ़का बड़ा थाल लेकर अन्दर आता है और राजा के सामने रख देता है। सभी अंगुलियाँ आपस में फुसफुसाने लगती हैं, उत्सुकता दिखाती हैं, उचक-उचक कर देखने का प्रयास करती हैं)

राजा- (मंत्री को आदेश देते हुए) यह रुमाल हटाइए।

(मंत्री रुमाल उठा देता है)

राजा- (अंगुलियों की ओर इशार करके) आपके सामने यह बूंदी से भरा थाल है। आप सभी को इस बूँदी से एक-एक लड्डू बनाना होगा। जो लड्डू बनाने में समर्थ होगा वही बड़ा कहलाएगा।

(गर्व के साथ इठलाता हुआ अंगूठा सर्वप्रथम आगे आता है, प्रयास करता है)

अंगूठा- महाराज यह तो बड़ा कठिन कार्य है। मैं न कर सकूँगा।

प्रथम अँगुली- मैं भी लड्डू नहीं बना सकी।

दूसरी अँगुली- बड़ा मुश्किल है।

तीसरी अँगुली- असम्भव कार्य हैं।

छोटी अँगुली-ओहो!

(सभी अपने-अपने प्रयास में असफल होकर, गर्दन झुकाकर, उदास-हताश खड़े हो जाते हैं)

राजा- उदास न हों, आप सभी गुणवान हैं। आप यह कार्य कर सकते हैं पर एक शर्त हैं।

सभी का इकट्ठा स्वर- कौन-सी शर्त महाराज?

राजा-आप सब मिल जाइये फिर लड्डू बनाइए।

(सभी एक साथ मिलकर प्रयास करते हैं। तुरन्त एक सुन्दर लड्डू बन जाता है।)

सभी- (उमंग-उत्साह एवं जोश भरे स्वर में) बन गया! बन गया! अरे! यह तो बड़ी आसानी से बन गया। मेहनत भी कम और समय भी कम लगा। (प्रसन्नता भरी दृष्टि की ओर देखते हुए) राजन, आपने तो हमारी आँखें ही खोल दीं।

(नेपथ्य से स्वर गूँजता है)

सत्य है, न कोई बड़ा है, न छोटा। गुण बड़ा है सहयोग का, बड़ा संगठन का। सचमुच, संगठन ही प्रगति एवं सफलता का आधार है। व्यक्ति विशेषज्ञ तो हो सकता है, सर्वज्ञ नहीं।

एक अकेला भया अलबेला, मिलकर कदम बढ़ाना।
मद, मोह में फँस न जाना, मिलकर चलते जाना।

बात का बतंगड़

एक गाँव में एक ब्राह्मण था जो पंडिताई के द्वारा जैसे-तैसे भरण-पोषण करता था। उसकी पत्नी बहुत भोली-भाली महिला थी जो बातों को बमुश्किल ही मन में छुपा पाती थी। एक दिन ब्राह्मण ने रोजी के लिए शहर जाने की इच्छा जताई तो ब्राह्मणी ने हाँ में हाँ मिली दी और अगली सुबह ब्राह्मण महाराज के भोजन की व्यवस्था कर उसे विदा किया। चलते-चलते एक छायादार जगह देखकर वह रूका, भोजन की पोटली खोली और जैसे ही रोटी का टुकड़ा मुँह में डाला, ऊपर से उड़ते हुए एक बगुले का पंख भोजन पर गिर गया। उन्होंने मन में कहा- ''राम-राम, छीःछीः, बड़ा अनर्थ हो गया, सारा भोजन अपवित्र हो गया, मैं भी अशुद्ध हो गया, अब मुझे घर को लौटना पड़ेगा।'' पति को घर में आया देख पत्नी ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। पंडितजी ने बहुत टालने की कोशिश की किन्तु ब्राह्मणी की जिद्द के आगे हार गए पर उससे वचन ले लिया कि मेरी बताई यह बात किसी अन्य से नहीं कहेगी। ब्राह्मणी ने वायदा कर लिया। परन्तु अगले दिन जब वह कुएँ पर पानी भरने गई तो एक धोबिन ने बातों-बातों में सारा राज उससे उगलवा लिया। ब्राह्मणी ने बता दिया कि पंडितजी के भोजन में बगुले का पंख गिर गया था इसलिए वे वापस लौट आए थे, राम-राम, छीःछी, बड़ा अनर्थ हो गया।

धोबिन ने इस बात को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत करते हुए अपनी सहेली से कहा- '' क्या तूने सुना कि कल पंडितजी के मुख में एक बगुला घुस गया, गजब हो गया।'' यह बात उसकी सहेली ने दूसरी सहेली से इस प्रकार कहा- '' बड़ा आश्चर्य! पंडितजी के मुँह में तो बगुले आते और जाते हैं।'' बात बढ़ते-बढ़ते सारे गाँव में और आस-पास के गाँवों में भी फैल गई कि पंडितजी बड़े करिश्माई हैं, उनके मुख से जादुई शक्ति से तरह-तरह के पक्षी निकलते हैं।

एक दिन कई गाँवों के लोग इकट्ठे हुए और ग्राम पंचायत के सामने यह आग्रह रखा कि पंडितजी चमत्कार दिखाएँ। पंडितजी बड़े असमंजस में थे। वे समझ गए थे कि उनकी भोली पत्नी के मुख से फिसली बात को लोगों ने बतंगड़ बना लिया है पर अब करते भी क्या? पंचायत में हाजिर होना ही पड़ा। उन्होंने पीछा छुड़ाने के लिए यह डर दिखाया कि जो भी मेरे मुख से निकलते पंख देखेगा, वह पक्षी बन जाएगा। यह सुनकर सभी के होश उड़ गए और सभी भाग खड़े हुए। किसी-किसी ने यह भी कहना शुरु कर दिया कि पंडितजी मानव को पक्षी बनाने में माहिर हैं।

गर्व न कीजिये

एक साधारण पढ़ा-लिखा परन्तु निर्धन व्यक्ति था। नौकरी की तलाश में कलकत्ता पहुँचा और एक सेठ जी के यहाँ झाड़ू देने पर नौकर

हो गया। प्रात:काल आता, लम्बी-चौड़ी दुकान में झाड़ू देता, दिन में कई बार करता और जब भी खाली समय मिलता तो पढ़ता रहता था। उसकी लिखावट बहुत सुन्दर थी। सेठ ने देखा तो पूछा- तू लिखना भी जानता है? वह बोला थोड़ा बहुत लिख लेता हूँ। सेठ जी ने उसे चिट्ठियाँ लिखने पर लगा दिया। कभी हिसाब-किताब की बात आती तो उसे बहुत समझ-सावधानी से देखता था। सेठ जी ने एक दिन एक ऐसा पत्र देखा तो बोले-अरे, तू हिसाब- किताब भी जानता है? उसने कहा- थोड़ा बहुत जानता हूँ। सेठ जी उसे मुनीम के काम पर लगा दिया। थोड़े दिनों में उसके कार्य से प्रसन्न होकर उसे मुख्य मुनीम बना दिया। अब दूसरे मुनीम जलने लगे और सेठ जी के कान भरने लगे। वह दो कमरों वाले एक मकान में रहता था। एक कमरा खुला रहता था, दूसरा बन्द। प्रतिदिन दुकान जाने से पूर्व वह बन्द कमरे में जरुर जाता था। थोड़ी देर अन्दर रहता था फिर ताला बन्द कर देता था और दुकान पर चला जाता था। उसका काम बहुत अच्छा था, और न किसी संदेह की गुंजाइश थी। ईर्ष्या करने वालों को यही सन्देह होता था कि वह बंद कमरे में क्यों जाता है? इसे बन्द क्यों रखता है?

उन्होंने सेठ जी के कान भरे कि मुख्य मुनीम बेईमान है, रुपया खाता है और एक दिन वह आपका दिवाला निकाल देगा। मुख्य मुनीम जब अपने कमरे को खोल कर अन्दर गया तो और मुनीम मिलकर सेठजी को ले गये और बोले कि चोर पकड़ा गया, बन्द कमरे में रुपये गिन रहा है। सेठजी तेजी के साथ पहुँचे। कमरा अन्दर से बन्द था, गुस्से में सेठजी बोले- जल्दी दरवाजा खोलो, अन्दर क्या कर रहे हो? मुनीम ने कहा- थोड़ी देर में खोल देता हूँ। सेठजी चिल्लाये- अभी दरवाजा खोलो, नहीं तो हम दरवाजा तोड़ देंगे। सभी मुनीम बड़े प्रसन्न थे। मुनीम ने दरवाजा खोल दिया, सभी अन्दर गये। देखा कि वहाँ साधरण सन्दूक के अलावा कुछ नहीं था। सेठ जी ने कहा- इस सन्दूक में क्या है? वह हाथ जोड़कर बोला-सेठ जी, सन्दूक बन्द ही रहने दो। सभी मुनीम बोले कि इसी में तो सब-कुछ है, इसलिए ही तो खोलता नहीं हैं। सेठ जी ने कहा हट जा, हम खोलते हैं, हम इसे अवश्य देखेंगे। बड़े मुनीम की आँखों में आँसू आ गये। सेठ जी ने अपने हाथ से सन्दूक खोला और आश्चर्य से देखता ही रह गया। उसमें थी एक फटी धोती, एक मैला कुर्त्ता और एक पुराना टूटा हुआ जूतों का जोड़ा। कोई भी इसका अर्थ नहीं समझ पाये। बड़े मुनीम ने हाथ जोड़ कर कहा महाराज, ये वे वस्त्र हैं जिन्हें पहन कर मैं आपके पास आया था, आज आपने मुझे बड़ा मुनीम बनाकर सब सुख-सुविधायें दी हैं परन्तु मैं

अपनी वास्तविकता भूल न जाऊँ, मेरे मन में अभिमान न आ जाये इसलिए प्रतिदिन इन्हें देखता हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अभिमान से बचाते रहना। सेठ जी के आँसू बह चले और बड़े मुनीम को गले लगा लिया, फिर बोले-धन्य हो तुम! तुम्हारी तरह दुनियाँ में सब लोग करें तो दुनियाँ से सब पाप नाश हो जायें क्योकि अभिमान ही पाप का मूल है। कबीर जी ने कहा है –

कबीरा गरब न कीजिए,ऊँचा देख आवास!
काल्ह परे भुई लेटना, ऊपर जमनी घास।।

कला! ईश्वर की अमूल्य देन

एक राजा ने अपने राज्य में ढिंढोरा पिटवाया कि जो शिल्पी अपनी शिल्पकला से हमें भूलभुलैया में डाल देगा उसे मुँह माँगा ईनाम देंगे और अगर ऐसा नहीं कर पायेगा तो मृत्युदण्ड मिलेगा। एक युवा शिल्पी तैयार हो गया। उसे 30 दिन की अवधि दी गई। शिल्पी पुरूषार्थ में लग गया। दिन बीतने लगे। आखिर निश्चित दिन आ पहुँचा परन्तु शिल्पी की ओर से राजा को कोई समाचार नहीं मिला। क्रोधित राजा हाथ में खुली तलवार लेकर शिल्पी के घर जा पहुँचा। ठोकर मारकर घर का द्वार खोला तो देखा कि सामने शिल्पी गहरी नींद में सोया हुआ था। राजा का गुस्सा चरम सीमा पर पहुँच गया। वह शिल्पी को मारने दौड़ा। तभी द्वार के पीछे छिपे युवा शिल्पी ने सामने आकर कहा- ‘‘ जहाँपनाह! सजा देनी ही है तो मैं तो यहाँ हूँ, यह तो मेरे द्वारा बनाई गयी मेरी प्रतिमा है।‘‘

राजा शर्मिंदा भी हुआ और युवा शिल्पी को मुँह माँगा ईनाम भी दिया। यह है शिल्पी की अद्वितीय साधना का फल। पिकासो नाम के सुविख्यात चित्रकार के गुलाब-पुष्प के चित्र पर भ्रमर चूसने के लिए इकट्ठे हो जाते थे और उसके बनाए बिल्ली के चित्र को कुत्ता घूरता रहता था। कलाएँ आत्माओं में आज भी मौजूद हैं, जरुरत है स्व को पहचानने की।

संतोषम् परम् सुखम्

एक विदेशी पर्यटक गर्मी के दिनों में भारत आया। उसने फलों की दुकान पर देखा कि विक्रेता दोपहर में आराम से बैठा था। न तो ग्राहक ही आ रहे थे और न ही ग्राहकों को बुलाने की चेष्टा ही कर रहा था। विदेशी को आश्चर्य हुआ। उसने कहा- ऐसे तुम्हारे फल कैसे बिकेंगे?

दुकानदार बोला- साहब, दुकान का तो सबको पता ही है। आवाज क्या लगाना जिसको आना होगा वह आयेगा।

विदेशी- ऐसे कैसे आयेंगे, आवाज दोगे तो माल अधिक बिकेगा।

दुकानदार ने पूछा- फिर...।

विदेशी- फिर तुम्हारी अच्छी कमाई होगी उससे और अधिक माल ला सकोगे, तुम्हारी दुकान बड़ी हो जायेगी।

दुकानदार प्रश्न करता गया- फिर..।

विदेशी ने कहा कि फिर तुम अपने साथ एक और सहायक रखना इसमें मजदूरों की भी मदद ले सकते हो। अच्छी कमाई से तुम साहूकार बन जाओगे। उसके चुप होते ही दुकानदार ने फिर वही प्रश्न किया-फिर..।

विदेशी- फिर तुम आलीशान मकान बना लेना, गाड़ियाँ खरीद लेना, ड्राईवर रखना..।

दुकानदार अभी भी पूछता रहा तो विदेशी ने कहा- फिर तुम आराम से मजे की जिन्दगी जी सकोगे।

दुकानदार बोला- साहब, वह तो मैं अभी से आराम से, मजे से बैठा हूँ। इतना घूम-फिर कर आने की क्या जरुरत है! विदेशी निरुत्तर था। वह व्यर्थ की भागदौड़ में उसे फँसा नहीं सका।

संतोषं परम सुखम्

संतोष सभी गुणों का राजा है। इसे सर्वोतम धन भी कहा जाता है।

'जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान'।

भारतीय संस्कृति का यह आदर्श रहा है कि जो भी मिला है उसे ईश्वरीय देन समझ, अपने निर्धारित भाग्य का हिस्सा मान, उसी में राजी रहा जाये।

साईं इतना दीजिये, जामे कुटुम्ब समाय।
आप भी भूखा न रह, साधु ना भूखा जाय।।

ऐसी वाणी बोलिये (युक्ति से मुक्ति)

एक राजा का सबसे प्रिय हाथी बिल्कुल बूढ़ा हो चला था। गाँव के कुछ प्रमुख लोंगों को बुलाकर राजा ने वह हाथी उनको सौंप दिया और कहा कि इसकी अच्छी तरह से सम्भाल करना। हाथी का हाल-समाचार रोज हमें बताते रहना। लेकिन जो भी व्यक्ति इस हाथी के मरने की खबर लेकर आयेगा उसे मौत की सजा दी जायेगी। कुछ दिनों के पश्चात् वह हाथी मर गया। अब सब गाँव के लोगों के सामने समस्या थी कि यह खबर लेकर राजा के पास कौन जाये। उसी गाँव में एक गरीब बूढ़ा रहता था, जो बहुत बुद्धिवान था। उसने सुना तो वह बोला कि मैं यह खबर लेकर राजा के पास जाऊँगा, आप लोग चिन्ता छोड़ दो, मुझे कुछ भी नहीं होगा। दूसरे दिन वह सवेरे दरबार में राजा के पास पहुँचा और हाथ जोड़ कर बोला- अन्नदाता, आपने हम सबको सम्भालने के लिए जो हाथी दिया

था वह कल दोपहर से न तो श्वांस ले रहा है, न कुछ खा रहा है, न करवटें बदल रहा है,जैसे लेटा था वैसे ही लेटा है और न ही पानी पी रहा है। राजा ने तुरन्त पूछा -क्या वह मर गया? वह बोला- महाराज! हम यह कैसे कहें? ऐसा सुनकर राजा उसकी विवेकशीलता पर बहुत खुश हुआ और उसे अपने सभासदों के साथ ही रख दिया, साथ में बहुत सारे उपहार भी दिये। उस बुद्धिवान बुजुर्ग की तरह हम भी अपने सकारात्मक बोल से सभी का दिल जीत सकते हैं, सर्व के प्रिय बन सकते हैं। जितना हम स्वयं और सर्व के प्रति सकारात्मक होंगे उतना हमारा दृष्टिकोण सकारात्मक होगा। अत: हमें सर्व के प्रति सदा शुभभावना और शुभकामना रख सकारात्मक बोल ही बोलने चाहिये।

महान आत्माओं के बोल महावाक्य होते हैं, जो किसी भी आत्मा के जीवन को महान बना सकते हैं। अत: हमें कोई भी बोल बोलने के पहले सौ बार अवश्य सोच लेना चाहिए कि इस बोल का उस आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ेगा। विद्वानों ने कहा है- पहले तोलो, फिर बोलो। हमें यह शब्द सदा याद रखना चाहिए-

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोए।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होये।।

समय पर कार्य का महत्व

एक जंगल में वट का वृक्ष था जिस पर एक बन्दर और उसकी बन्दरिया रहती थी। एक दिन अचानक वहाँ तोता-मैना आकर उसी वृक्ष की डाली पर बैठे। बन्दर और बन्दरिया की जोड़ी को देखते हुए मैना ने तोते से कहा-'' यह समय इतना श्रेष्ठ और बलवान है, यह घड़ी इतनी उत्तम है कि इस वक्त यह बन्दर और बन्दरिया डाली से कूद पड़े तो जमीन पर गिरते ही राजकुमार और राजकुमारी में परिवर्तित हो जायेंगे।'' बन्दरिया मैना की बात सुन रही थी सो उसने सारी बात बन्दर को कह सुनायी और तुरन्त एक साथ जमीन पर कूद पड़ने का आग्रह किया। लेकिन देह-अभिमान में चूर बन्दर ने उसकी बात न मानी और बोला-'' जा तू ही पटरानी बन, मैं तो यूँ ही ठीक हूँ। ''बन्दरिया समझदार थी। वह जानती थी कि समय जब हाथ से निकल जाता है तो केवल विस्मय अर्थात् निराशा ही हाथ लगती है। वह कूद पड़ी और जमीन पर गिरते ही राजकुमारी बन गई। जब बन्दर ने उसे राजकुमारी बनते हुए देखा तो वह भी कूद पड़ा। लेकिन तब तक समय परिवर्तन हो चुका था। इसलिये परिणाम यह हुआ कि गिरते ही बन्दर की टाँगे टूट गईं। वह रोने और पछताने लगा। उसे स्वयं से आत्म-ग्लानि हो रही थी। वह मैना की बात न मानने के कारण पश्चाताप् में तड़पने लगा। वह कभी राजकुमारी की समझ को सराहता तो कभी टूटी टाँग देखकर फड़फड़ाता। इतने में वहाँ से एक

घुड़सवार राजकुमारी और एक मदारी गुजर रहे थे। राजकुमार ने राजकुमारी को अपने घोड़े पर बिठाया और अपने राज्य की ओर चला गया तथा मदारी ने बन्दर को दो डंडे मारे और शहर में नचाने के लिए ले गया।

तो हे भाग्यविधाता के अनन्य रत्नों और ईश्वर प्रेमियों! यह तो आप भली-भाँति जानते हो कि दुनियाँ एक वीरान रेगिस्तान की झाड़ियों के समान हो चुकी है। आज संसार काँटों का जंगल बन चुका है। इसमें रहने वाले हर नर-नारी का स्वभाव बन्दरों के समान ही है अर्थात् आज के मानव को आप चाहे कितनी भी बड़ी प्राप्ति कराना चाहो लेकिन वह देह-अभिमान की डाली से उतरकर कुछ भी सुनना नहीं चाहता।

बनो रुहानी दर्पण

एक बार महात्मा बुद्ध अपने शिष्यों को शिक्षा दे रहे थे। शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जब सभी शिष्य चले गए तो एक शिष्य बैठा रह गया। तब बुद्ध ने उससे पूछा कि तुम क्या चाहते हो? तब उस शिष्य ने कहा - यदि भगवन् मुझे आज्ञा दें तो मैं इस देश में घूमना चाहता हूँ। तब बुद्ध ने कहा कि बुरे लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे और गालियाँ देंगे, तब तुम्हें कैसा लगेगा? तब शिष्य ने कहा कि मैं समझ लूँगा कि उन्होंने मुझ पर धूल नहीं फेंकी या पत्थर नहीं मारे, तो यह लोग भले हैं। बुद्ध ने कहा कि कुछ लोग धूल भी फेंक सकते हैं, पत्थर भी मार सकते हैं, तब क्या करोगे? शिष्य ने कहा कि मैं इसमें भी भला समझूँगा कि उन्होंने मुझे हथियारों से नहीं मारा। इसके बाद महात्मा बुद्ध ने फिर कहा कि इस देश में तो लुटेरों , ठगों, डाकुओं का भी निवास हैं, वे तुम्हें हथियारों से भी मार सकते हैं। ऐसा सुनकर शिष्य बोला कि वे लोग मुझे दयालु जान पड़ेंगे क्योंकि उन्होंने मुझे जीवित तो छोड़ा। क्योंकि यह संसार दु:ख स्वरुप है। इसमें बहुत दिन जिन्दा रहने से दु:ख अधिक मिलते हैं। आत्महत्या तो पाप है, यदि कोई दूसरा मार दे तो यह उसकी दया है। ऐसा सुनकर महात्मा बुद्ध बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उस शिष्य को यह कहते हुए कि साधु वही है जो किसी को बुरा नहीं कहता, देशभर में घूमने की अनुमति दे दी।

वास्तव में शिवबाबा हमें ऐसा ही रुहानी दर्पण बनाते हैं जिसमें कि किसी का कैसा भी रुप आए लेकिन उस रुप की, चाहे वह भयानक विकारी हो या फिर अच्छा, तो उसकी अच्छाई और बुराई उसे स्वत: दिखाई दें लेकिन हमारे ऊपर उनका कोई भी प्रभाव न पड़े। तो हे प्रभु प्रिय आत्माओं! अब ऐसा दर्पण बनो।

सच्चा मित्र..‘कर्म‘

एक व्यक्ति था। उसके तीन मित्र थे। एक मित्र ऐसा था जो सदैव साथ देता था। एक पल, एक क्षण भी बिछुड़ता नहीं था। दूसरा मित्र ऐसा जो सुबह शाम मिलता था। और तीसरा मित्र जो बहुत दिनों में जब तब मिलता था। एक दिन उस व्यक्ति को कोर्ट में जाना था और किसी कार्यवश और किसी को गवाह बनाकर साथ ले जाना था। तो वह व्यक्ति अपने सबसे पहले मित्र के पास गया और बोला- मित्र क्या तुम मेरे साथ कोर्ट में गवाह बनकर चल सकते हो? तो वह बोला- माफ करो दोस्त, मुझे तो आज फुर्सत ही नहीं है। उस व्यक्ति ने सोचा कि यह मित्र मेरा हमेशा साथ देता था। आज समय पड़ने पर इसने मुझे इन्कार कर दिया तो दूसरे मित्र की मुझे क्या आशा है। फिर भी हिम्मत रखकर दूसरे मित्र के पास गया और अपनी समस्या सुनाई तो दूसरे मित्र ने कहा कि मेरी एक शर्त है कि मैं सिर्फ कोर्ट के दरवाजे तक जाऊँगा, अन्दर तक नहीं। तो वह बोला कि बाहर के लिये तो मैं ही बहुत हूँ मुझे तो अन्दर के लिये गवाह चाहिये। फिर वह तीसरे मित्र के पास गया तो तीसरा मित्र तुरन्त उसके साथ चल दिया।

इसी प्रकार हर व्यक्ति के तीन मित्र हैं। सबसे पहला मित्र है उसका ‘शरीर‘। आप जहाँ भी जायेंगे, शरीर रुपी पहला मित्र आपके साथ चलता है। एक पल, एक क्षण भी आपसे दूर नहीं होता। दूसरा मित्र हैं शरीर के सम्बन्धी जैसे-माता-पिता, भाई-बहन, मामा-चाचा इत्यादि जिनके साथ रहते, जो सुबह-दोपहर शाम मिलते हैं। और तीसरा मित्र है- कर्म जो सदा ही साथ जाते हैं।

अब आप देखिये कि आत्मा जब शरीर छोड़कर धर्मराजपुरी में अर्थात् कोर्ट में जाती है, उस समय शरीर रुपी पहला मित्र एक कदम भी आगे चलकर साथ नहीं देता, जैसेकि उस पहले मित्र ने साथ नहीं दिया। दूसरा मित्र-सम्बन्धी श्मशान घाट तक अर्थात् कोर्ट के दरवाजे तक राम नाम सत्य है कहते हुए जाते हैं तथा वहाँ से फिर वापिस लौट आते हैं। और तीसरा मित्र आपके कर्म हैं जो सदा ही साथ जाते हैं चाहे अच्छे हो या बुरे।

प्यार बाँटते चलो

एक बार खलीफा हजरत उमर ने एक व्यक्ति को किसी प्रदेश का गर्वनर नियुक्त किया। नियुक्ति पत्र देने से पहले उन्होंने उसे आवश्यक बातें भी समझा दीं। उसी समय एक बालक उनके पास आ पहुँचा। हजरत उमर ने बच्चे को प्रेम से गोद में उठा लिया और तरह-तरह की आवाजें कर और बातें सुनाकर रिझाने लगे। यह देखकर वह व्यक्ति बोला कि ‘‘खलीफा साहब, मेरे यहाँ तो चार बच्चे हैं लेकिन मैंने कभी भी उनके प्रति ऐसा स्नेह नहीं जताया।‘‘

ऐसा सुनकर हजरत उमर एकदम गम्भीर हो गये। उन्होंने उस व्यक्ति का नियुक्ति पत्र उससे वापस ले लिया और उसके टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा कि मैंने तुम्हारी नियुक्ति की इसका मुझे अफसोस है। जब तुम बच्चों के साथ प्यार या स्नेह नहीं कर सकते तब तुम प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करोगे। तुम्हारे हृदय में प्रेम का पवित्र झरना सूख चुका है। अब तुम इस पद के योग्य नहीं हो।

वर्तमान समय भी इस कलियुगी संसार में सच्चा आत्मिक स्नेह तो जरा भी नहीं रहा। यदि स्नेह नजर आता है तो वह भी अल्पकाल का स्वार्थी या फिर मोह, काम आदि विकारों के वशीभूत।

सम्पूर्ण समर्पण

दर्शनाभिलाषी एक राजा महात्मा बुद्ध के दर्शन करने गया। महात्मा बुद्ध के लिये उसके मन में अपार श्रद्धा और प्रेम था। इसीलिये वह एक हार,जो अति विशिष्ट हीरे-मोतियों से बनी एक अद्‌भुत कलाकृति थी, उसे एक हाथ में लिये तथा दूसरे में एक सुन्दर गुलाब का पुष्प लिये महात्मा बुद्ध को अर्पित करने उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। जैसे ही राजा ने वह बहुमूल्य हार महात्मा बुद्ध को अर्पित करने के लिये अपना हाथ आगे बढ़ाया तत्क्षण महात्मा बुद्ध बोले-राजन! इसे गिरा दो। एक आघात सा लगा राजा को। क्योंकि उसे इस प्रत्युत्तर की अपेक्षा नहीं थी अपने श्रद्धेय से। लेकिन उसने आदेशानुसार उस हार को गिरा दिया।

राजा ने अपने मन में सोचा-''शायद लौकिक सम्पदा से बुद्ध को क्या लेना? चलो, यह गुलाब का पुष्प ही भेंट कर दें। क्योंकि यह तो थोड़ा अलौकिक हैं।'' लेकिन जैसे ही राजा ने गुलाब के उस पुष्प को भेंट करने हेतु अपना दाहिना हाथ बढ़ाया महात्मा बुद्ध ने फिर कहा- इसे भी गिरा दो। राजा की परेशानी तो तब और अधिक बढ़ गई क्योंकि अब भेंट करने के लिय पुष्प के अतिरिक्त उसके पास और कुछ भी नहीं था। लेकिन महात्मा बुद्ध के कहने पर उसने उस सुन्दर गुलाब को भी गिरा दिया।

राजा को अचानक अपने ''मैं का ख्याल आया। उसने सोचा- '' क्यों न मैं अपने को ही समर्पित कर दूँ। और वह अपने दोनों खाली हाथ जोड़कर महात्मा बुद्ध के सामने झुक गया। बुद्ध ने फिर कहा- इसे भी गिरा दो। महात्मा बुद्ध के सभी शिष्य जो वहाँ उपस्थित थे, यह सुनकर हंसने लगे। तभी राजा को यह बोध हुआ कि यह कहना भी कि मैं अपने को समर्पित करता हूँ, यह भी अहंकार का एक हिस्सा है। इस 'मैं' के अहंकार को भी गिरा देना है और उसने अपने को सम्पूर्ण रुप से महात्मा बुद्ध के चरणों पर गिरा दिया। महात्मा बुद्ध मुस्कराये और बोले- राजन, तुम्हारी समझ अच्छी है।

पहले तोलो, फिर बोलो

कोयल की मीठी आवाज सुनने के लिये सभी लालायित रहते हैं, मगर कौवे की नहीं। क्यों? एक बार एक कौवा बड़ी तेजी से उड़ा जा रहा था। कोयल ने देखा कौवा बड़ी तेजी से जा रहा है। कोयल ने पूछा- ''भैया, इतने उतावले होकर कहाँ जा रहे हो? क्या बात है? कौवा बोला- '' बहन, मैं जहाँ जाता हूँ मुझे भगा दिया जाता है, मुझे अपमान मिलता है, सत्कार नहीं। इसलिये यहाँ से कहीं दूर, दूसरे देश में चला जा रहा हूँ। वहाँ तो अपरिचित ही रहूँगा। तो सभी मुझे सम्मान की दृष्टि से देखेंगे।''

कोयल ने कहा- ''भैया, बात तो ठीक है। लेकिन अपनी बोली बदलते जाना। काँव-काँव को बदल देना। अगर इनको नहीं बदला तो वहाँ भी आदर सत्कार नहीं मिलेगा। यह जो तुम्हारे प्रति घृणा है वह इस वाणी के कारण है। इस कर्कश और सूखी बोली को बदल दो, फिर कहीं भी चले जाओ सभी जगह सम्मान होगा''।

कौवा ध्यान से सुन रहा था। उसकी नजर कोयल के गले में पड़े हार पर पड़ी, उसका मन ललचा गया कौवे ने पूछा- यह उपहार तुम्हें कहाँ से मिला है? कोयल ने कहा- '' मैं स्वर्गलोक गई थी वहाँ मैंने गाना सुनाया। मेरे गाने को सुनकर इन्द्र प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे हार उपहार में दिया।'' कौवे ने भी सोचा कि सिर्फ गाना सुनाने से यदि हार मिलता है तो मैं भी स्वर्ग मे जाकर गाना सुनाऊँगा और हार ले आऊँगा। वह उड़ा स्वर्गलोक गया इन्द्र से बोला-''मैं भू-लोक से आया हूँ। गाना सुनाना चाहता हूँ। पहले मेरे बहन आई थी, अब मैं आया हूँ।'' इंद्र ने सोचा -''भाई और बहन का रंग-रुप तो मिलता है। बहन का कण्ठ तो बड़ा सुरीला था। इसका भी सुरीला होगा। अब इसका भी सुन लें।'' इंद्र ने सारे देवताओं को भी सुनने के लिए आमंत्रित किया। सभागार सभी देवताओं से भर गया। अब इसका भी सुन लें-अच्छा, अब आप अपना गाना सुनाओ। कौवे ने गाना शुरु किया। कुछ ही क्षण में सभी चिल्ला उठे बन्द करो, बन्द करो। हमारे कान फटे जा रहे हैं इन्द्र ने कहा- हे भू-लोक वासी! बन्द करो अपना काँव-काँव करना और चले जाओ यहाँ से। कौवा सकपका गया और सोचने लगा- हार तो नहीं मिला, तिरस्कार ही मिला। कोयल ने ठीक ही कहा था कि बोली को बदले बिना जहाँ भी जाओगे निकाल दिये जाओगे। आदर नहीं मिलेगा। इसलिए संसार में भी बोल का ही महत्व है। आज की दुनियाँ में भी अगर कोई व्यक्ति कर्कश और रुखे बोल बोलता है तो सुनने का कोई तैयार नहीं। कड़वे,कटाक्ष और कर्कश बोल वाले से प्रत्येक व्यक्ति दूर ही रहता है। लेकिन सुमधुर, मीठे, आदरयुक्त बोल वाले का सभी सम्मान करते हैं। कहा भी गया है- बोल के घाव तीर और तलवार से भी तीखे होते हैं। इतिहास इसका साक्षी है कि कृष्ण के मधुर वचन सुनकर अर्जुन का मोह समाप्त हो

गया और दूसरी ओर द्रौपदी के कटाक्ष के दो बोल से महाभारत हो गया। मन्थरा ने अपने कड़वे बोल से कैकेई के अन्दर राम के प्रति भावना ही बदल दी। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं।

तजो बुराई, करो बड़ाई

दो बड़े विद्वान जो कि आपस में दोस्त थे, किसी यजमान के निमंत्रण पर उसके घर पूजा-पाठ के लिए गये। वहाँ उन दोनों का काफी आदर-सत्कार हुआ। दूसरे दिन सुबह उनमें से एक विद्वान हवन करने गया हुआ था तो यजमान ने दूसरे विद्वान से कहा- ''महाराज, आपके दोस्त तो बहुत बड़े ही नेक इन्सान हैं।'' यह सुनते ही वह तपाक से बोला- ''अरे! वह तो निरा बैल है। कुछ भी जानता नहीं हैं। वह तो मेरे साथ रहता है, इसलिये उसकी थोड़ी-बहुत इज्जत होती है, नहीं तो उसे कौन जानता है। वह तो यहाँ मेरे साथ आया हुआ है मेरी सेवा के लिये!''

उसी प्रकार अगले दिन जब दूसरा विद्वान हवन करने गया तो उस यजमान ने पहले वाले से कहा- ''महाराज! आपके दोस्त तो बहुत नेक इन्सान तथा विद्वान हैं।'' यह सुनते ही पहले वाले विद्वान ने कहा- '' वह तो निरा गधा है गधा। वह तो मेरे साथ मेरा सामान ढोने के लिए तथा मेरी सेवा के लिए आया है।''

जब दोनों विद्वान पूजा समाप्त करके खाना खाने के लिए आये तो यजमान ने दोनों के सामने हरी घास रख दी तथा बोले-''महाराज! भोजन स्वीकार कीजिए।' दोनों विद्वान आग-बबूला हो गये। क्रोध तथा आवेश में वे यजमान से बोले-''मूर्ख, तूने हमारा अपमान किया है। हम तुम्हें इसके लिये अभिशाप देंगे।''   मगर महाराज! मेरा अपराध क्या है? सरलता से यजमान ने प्रश्न किया। '' क्या हम लोग घास खायेंगे? क्या हम जानवर है? गुस्से में दोनों विद्वानों ने पूछा।

यजमान ने तुरन्त हाथ जोड़कर बड़े आदर से कहा-''महाराज! आप दोनों ने ही एक दूसरे को बैल तथा गधा बताया है और मेरे विचार से दोनों ही जानवरों का प्रिय भोजन घास है। अत: मैंने तो आपके कथनानुसार ही आपका प्रिय भोजन आपके सामने रखा है। फिर भी यदि मेरे से कोई गलती हो गई हो तो कृपया मुझे क्षमा करें।''

आज यह वास्तविकता प्राय: हम देख सकते हैं। व्यक्ति हमेशा अपनी तारीफ तथा दूसरों की बुराई ही करता है। जहॉं वह चाहता है कि मेरा सम्मान हो, मेरा नाम हो, लोग मेरी तारीफ करें, मुझे सलाम करें, ठीक उसके विपरीत वह यह भी चाहता है कि लोग उसके साथी की बुराई करें, निन्दा करें तथा उसे नीचा दिखायें। भगवान कहते हैं- दूसरों के गुणों को तथा अपने अवगुणों को देखो तो गुणवान बन जाओगे। परन्तु मनुष्य सोचता है कि दूसरों के अवगुण तथा अपने गुणों को देखने से वह

स्वयं गुणवान बन जायेगा। यही वह कारण है जिसके कारण मनुष्य को अपने जीवन में बार-बार घास (ठोकर) खानी पड़ती है।

रात और दिन

सूर्य अस्त होते ही अंधेरा होने लगा। कुछ ही समय में अंधकार छा गया और 'रात्रि का पहर' शुरु हो गया। तब बुढ़िया ने अपनी झोपड़ी में 'दीया' जला लिया, और उसके पड़ोसियों ने भी अपने-अपने 'दीपक' और 'लालटेन' जला लिए, पहरेदारों ने टार्च निकाल लिए। गाँव तथा पटरी के दुकानदारों ने 'गैस' जला दिये, शहरों में, रास्तों, घरों, दुकानों और फैक्ट्रियों मे बिजली के अनेकों बल्ब अथवा ट्यूब जल उठे। मतलब यह कि सबने कुछ न कुछ रोशनी का साधन कर लिया ताकि रात्रि में कुछ-कुछ कार्य व्यवहार चल सके।

कुछ बत्तियाँ तो रात्रि के पहर में ही मनुष्यों के सो जाने पर अथवा तेल- ईंधन समाप्त होने पर बुझ गई। परन्तु सूर्योदय होने पर सभी बत्तियाँ बुझा दी गई। यदि दिन में किसी व्यक्ति की बत्ती भूल से जली रह भी गई तो उसके हितैषी सज्जनों ने उसे जतलाया कि ''भाई, आप की बत्ती जलती रह गई है, दिन निकल आया, अब इसे बुझा दीजिये।'' ठीक इसी रीति, इस बेहद सृष्टि-चक्र में सतयुग और त्रेतायुग (ब्रह्मा का दिन) 2500 वर्ष में पूरा हुआ, भारतवासी देवी-देवता पुण्य क्षीण होने पर वाम-मार्गीय बने। उनमें माया (काम, क्रोध आदि विकारों) की प्रवेशता हो गई और द्वापरयुग तथा कलियुग रुपी 2500 वर्ष की 'ब्रह्मा की रात्रि' का पहर शुरु हो गया- तब भारतवासी पूज्य देवता स्वयं ही पुजारी बन गये। वे 'हिन्दू' कहलाने लगे और उन्होंने पूजा करना आरम्भ कर दिया और मनुष्यों ने वेद-शास्त्र बनाये और उन्हें पढ़ने लगे। अन्य कई सन्यासी बन गये, उन्होंने गृहस्थ-व्यवहार को छोड़ दिया। जप, तप, दान, पुण्य आदि अनेक प्रकार के कर्म-कांड प्रचलित हो गये, मनुष्यों ने पाप धोने के लिए गंगा आदि पानी की नदियों को पतित-पावनी मानकर स्नान करना शुरु कर दिया। कई मनुष्यों ने अन्य मनुष्यों को ही 'सद्गुरु' माना और उनके शिष्य बन गये। मतलब यह कि सबने कुछ न कुछ साधन अपनाये, ताकि कुछ न कुछ अल्पकाल के लिए ही सही, शांति और सुख की प्राप्ति होती रहे। कई तो विकारों से लिप्त होकर माया की कुम्भकर्णी निंद्रा में पूरी तरह ही सो गये। अन्य कई भक्ति द्वारा कुछ प्राप्ति होती न देख श्रद्वा खो बैठे। परन्तु कलियुग के अन्त में तो भक्तिमार्ग को पूरा होना ही है क्योंकि तब 'ब्रह्मा की रात्रि' का समय पूरा होने पर, पाप का घड़ा भर जाने पर, ज्ञान सूर्य परमात्मा 'शिव' प्रजापिता ब्रह्मा के शरीर रुपी रथ में अवतरित होकर गीता-ज्ञान सुनाकर, मनुष्यात्माओं को योग-युक्त करके, पुन: सतयुग की स्थापना करते हैं।

सच्चा सुख सन्तुष्टता में

एक सेठ अथाह सम्पत्ति का मालिक था। उसके पास इतनी सम्पत्ति थी कि उसकी 10 पीढ़ियाँ बैठकर खा सकती थीं। परन्तु फिर भी वह सेठ हमेशा चिन्ताग्रस्त रहता था और चिन्ता का कारण यह था कि मेरी 11वीं पीढ़ी का क्या होगा? उनके लिये तो मैंने कुछ भी नहीं जमा किया। इसी चिन्ता ने उसे रोगग्रस्त कर दिया और दिन-प्रतिदिन उसकी सेहत बिगड़ती चली गई। उसकी बिगड़ती सेहत को देखकर उसका एक शुभ-चिन्तक उसके पास आया और उसे सलाह दी कि पास के जंगल में एक साधु जी रहते हैं आप उनके पास जायें वे आपकी चिन्ता के निवारण अर्थ कोई न कोई उपाय जरुर करेंगे। यह सुनकर सेठ के मन में आशा की एक किरण जगी। अगले ही दिन वह साधु के दर्शन के लिये चल दिया। वैसे तो सेठ बहुत कंजूस था परन्तु कुछ प्राप्ति की आशा थी इसलिये अपने साथ एक फल की टोकरी ले गया था।

जब वो सेठ साधु के पास गया तो उस समय साधु जी ध्यान में मग्न थे। सेठ ने बड़ी श्रद्धा से साधु को प्रणाम किया और फल की टोकरी आगे बढ़ाते हुए बोला-'' महाराज! मेरी ये छोटी सी भेंट स्वीकार कीजिये। साधु ने आँखें खोली, फल की टोकरी तथा सेठ को देखा और कुटिया के दूसरे कोने में रखी फल की टोकरी की तरफ इशारा करते हुए बोले-''बेटा, दाता (भगवान्) ने मेरे लिये भोजन भेज दिया है। अब इसकी आवश्यकता नहीं हैं। हाँ, तुम अपनी समस्या मुझे बताओ। यदि सम्भव हुआ तो मैं उसका समाधान तुम्हें बताऊँगा।''

साधु का उत्तर सुनकर सेठ के मन में चेतना जागृत हुई। उसने देखा साधु के पास एक टोकरा फल का है तो वह दूसरे की कामना ही नहीं रखता। परन्तु मेरे पास अथाह सम्पत्ति होते हुए भी मैं और सम्पत्ति की कामनाओं में खोया रहता हूँ तथा दु:खी होता रहता हूँ। वह साधु के चरणों में गिर पड़ा तथा बोला-महाराज, मेरे सवालों का जवाब मुझे मिल गया है। आज मुझे मालूम हुआ है कि सच्चा सुख सन्तुष्टता में है न कि कामनाओं का विस्तार करने से।' वास्तव में आज मनुष्य अपनी इच्छाओं के पीछे भागता जा रहा है और ये इच्छायें मृगतृष्णा समान हैं। लालच व्यक्ति को अंधा बना देता है।

कथनी-करनी एक समान हो

किसी सत्संग में महात्मा जी ज्ञानोपदेश कर रहे थे- '' बस, राम नाम की माला जपते रहो। राम नाम मो भवसागर तारक है। सच्चे मन से राम का नाम लो, वह नाव का काम करेगी।'' श्रोताओं में

एक परम श्रद्धालु भी था। सत्संग में आने के लिए उसे प्रतिदिन नदी पार करनी पड़ती थी। गुरु जी की वाणी उसके लिए राम-बाण बन गयी। वह सच्चे मन से प्रभु-स्तुति कर ईश्वरीय अनुकम्पा से नदी पार करता था। उसने एक बार सहृदयता से उपकृत होकर महात्मा जी को अपने घर में आमंत्रित किया। जब महात्मा जी नदी के किनारे पहुँचे तब कोई नाव न देख बोले-''वत्स, नाव कहाँ है? इसे पार कैसे किया जाये?'' भक्त ने कहा- ''महात्मा जी, आप ही तो कहा करते हैं कि राम का नाम लो तो सहज ही पार हो जायेंगे। मैं जब ईश्वर-स्मरण करता हूँ तो सम्मुख नाव और नाविक उपस्थित हो जाते हैं। देखिये, हाथ कंगन को आरसी क्या।'' ऐसा कर करके उसने ईश्वर-स्मरण किया। सहसा सम्मुख नाव वा नाविक को देख महात्मा जी आत्मग्लानि से विह्वल हो गये। उन्हें उस चमत्कार को देख अपनी कथनी-करनी में असमानता पर बड़ी ही लज्जा का अनुभव हुआ।

'परिश्रम'-सच्ची पूँजी

दीनू दुधिया स्वभाव से आलसी और निकम्मा था। वह बैठे-बैठे सपने देखता कि एक दिन अवश्य ही वह धनवान हो जायेगा। और धनवान बनने से जो सुख उसे मिल सकते हैं उनका मन ही मन अनुभव कर वह खुश हो लेता। इस तरह धनवान बनने का उसे शौक जरुर था लेकिन काम वह कुछ नहीं करता। दीनू की पत्नी रमा समझदार और स्वावलम्बी महिला थी। उसने दो गायें पाल रखी थीं जिनकी वह खूब देखभाल करती। गायों का दूध दुहकर बेच आती। इसी से उसके परिवार का गुजारा भी चलता। दीनू के दो बेटे थे जो अपनी माँ के काम में हाथ बँटाते। लेकिन दीनू दिन-रात सपनों में ही खोया रहता।

एक दिन गाँव में किसी स्वामी ने धूनी रमाई। गाँव भर के लोग संध्या के समय स्वामी जी के पास आते और घंटों बैठे रहते। स्वामी जी को गाँव वालों के जरिये दीनू दुधिया के बारे में सबकुछ मालूम हो गया।

दीनू को जब स्वामी जी के बारे में पता चला तो वह सीधा उनके पास चला आया। उसने स्वामी जी को प्रणाम करते हुए कहा, ''मुझे वरदान दो स्वामी जी, मैं धनवान बनना चाहता हूँ। गरीबी से मैं उकता गया हूँ।'' स्वामी जी उसकी बात सुनकर मन ही मन हंसे। वे जानते थे कि यह काम तो धेले भर का भी नहीं करता। खाली बैठा हुआ ही धनवान बनना चाहता है। दीनू से मिलकर उन्हें यह अनुभव हुआ कि उसमें छल,कपट जरा भी नहीं था। उन्होंने सोचा कि इसकी मदद करनी चाहिए। वे बोले -'' मैं तुम्हें वरदान दे सकता हूँ, लेकिन उसके साथ शर्ते भी जुड़ी हुई हैं। शर्तो का पालन नहीं किया तो वरदान स्वत: समाप्त हो जायेगा।'' ''आपका आदेश सिर आँखों पर। आप जैसा कहेंगे, मैं

वहीं करुँगा।'' दीनू ने प्रसन्नता से जवाब दिया। अब स्वामी जी ने कहना शुरु किया-'' मैं तुम्हें एक मंत्र देता हूँ। उसके बारे में किसी को कुछ भी मत बताना और मन ही मन मंत्र का जाप करना। मंत्र है- आलस छोड़ो! जागो! उठो! शर्त यह है कि तुम सवेरे जल्दी उठोगे और रात्रि दस बजे से पहले कभी सोओगे नहीं। एक-एक क्षण का तुम्हें उपयोग करना होगा।'' दीनू हाथ जोड़े 'हाँ-हाँ करता रहा और सारी बात ध्यान से सुनता रहा। उसे धनवान बनने का मंत्र जो मिल रहा था। स्वामी जी ने फिर कहा- ''काम करने से जो भी आय हो उसमें से जितना हो सके बचाकर रखना और सोच समझकर पत्नी की सलाह से ही खर्च करना। उस मंत्र को कभी मत भूलना। जाओ, आज से ही काम करना शुरु कर दो।''

दीनू में जैसे नये जोश का संचार हो गया था। ''आलस छोड़ो! जागो! उठो!- यह मंत्र गुनगुनाते हुआ वह घर पहुँचा। उस दिन गायों का दूध वह स्वयं बेच आया। वापस आकर पास ही जंगल से बहुत सी लकड़ियाँ भी काट लाया। सवेरे अपनी गायों के साथ दूसरों के पशु भी चरा आता। वह रोज ही जंगल से लकड़ियाँ काटकर लाने लगा और शहर में बेच आता। दूसरों के पशु चराने के बदले उसे कुछ रुपये मिल जाते। इस तरह दीनू अपने एक-एक पल का उपयोग करने लगा। दीनू में आये इस बदलाव को देखकर गाँव भर के लोगों को आश्चर्य हुआ। कई लोगों ने पूछा भी लेकिन दीनू ने इतना ही कहा, '' काम तो करना ही चाहिए, इसलिए करता हूँ।'' दीनू की पत्नी इस बदलाव से बहुत खुश थी।

दीनू को लकड़ियाँ बेचने और गायें चराने से जो धन मिलता उसे वह बचा लेता। इन्हीं पैसों से वह एक-एक कर गायें और भैंस खरीदता रहा जिससे दूध भी उसके यहाँ खूब होने लगा। धीरे-धीरे दीनू के दूध का कारोबार बढ़ता गया। जानवर भी बहुत हो गये थे उसके पास। इसके बाद भी वह लकड़ी काटता और शहर में बेच देता। वह काम में ऐसा जुट गया कि उसे याद ही न रहा कि वह धनवान बनने चला था। हाँ, मंत्र उसे अब भी याद था।

साल-दर-साल बीतते रहे। वह दिन भी आया जब उसके पास सौ से अधिक दुधारु पशु हो गये। उसने गाँव के पास ही दो बड़े-बड़े खेत भी खरीद लिए, जहाँ बड़ी मात्रा में अनाज पैदा होने लगा। उसके बेटे भी युवा हो गये थे जो अब पिता के काम में पूरा हाथ बँटाने लगे। इस तरह दीनू दूधिया अपने गाँव का जमींदार बन गया। वह अब भी एक-एक पल का पूरा उपयोग करता। जब भी उसे फुर्सत मिलती तब उसे मंत्र याद आ जाता लेकिन वह पुन: काम में जुट जाता।

एक दिन दीनू अपने घोड़े पर सवार होकर अपने खेतों की निगरानी कर रहा था। तभी उसे एक महात्मा जी आते हुए दिखाई दिये। उसने उन्हें तुरन्त पहचान लिया। वह उनके पास गया और प्रणाम्

कर बोला, '' मुझे पहचाना स्वामी जी, मैं दीनू दूधिया। आपने मुझे वरदान दिया था जो सच साबित हुआ।''

स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने मुस्कराते हुए कहा,'' मैंने तो तुम्हें कोई वरदान नहीं दिया। मैंने तो तुम्हें मेहनत का पाठ पढ़ाया था। जिसे तुमने अचूक मंत्र की तरह याद रखा। बेटे, मेहनत का कोई विकल्प नहीं होता। मनुष्य के श्रम में ही सबसे बड़ा वरदान छिपा होता है। तुम अपनी मेहनत और सूझबूझ से ही धनवान बन सके हो।''

दीनू यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। वह स्वामी जी को घर ले गया और अपने करोबार के बारे में सारी जानकारी दी, फिर जलपान करवा कर उन्हें सादर विदा किया। अत: किसी ने सच ही कहा है-

जिन खोजा तिन पाइयाँ,गहरे पानी पैठ।
वो बावरी क्या पाइयाँ,जो रहे किनारे बैठ।।

'' निंदा हमारी जो करे, मित्र हमारा सो होय''

एक बार की बात है कलकत्ता में 'विश्वमित्र' नामक अखबार निकला था, उसमें बाबा के सम्बन्ध में लिखा था कि ये दादा पहले साईकिल का काम करता था और अभी स्वयं को भगवान कहने लगा है आदि आदि। बाबा की लौकिक पुत्री निर्मलशान्ता कलकत्ता में ही रहती थी। अखबार में ऐसी खबर पढ़ते ही उसे जोश आया। उसने जोश में पत्र बाबा को लिखा कि बाबा इस सम्पादक ने एकदम गलत बातें अखबर में छपवाई हैं इस पर केस करना चाहिए। लेकिन बाबा पत्र एकदम साक्षी और न्यारा होकर पढ़ रहे थे चेहरे से लग रहा था कि जैसे उसके प्रति कुछ है ही नहीं और साथ-साथ ऐसे बच्चे पर स्नेह भी दिखलाया कि फिर भी मेरा बच्चा है, कैसा भी बच्चा हो, लेकिन बाप का तो है ना। बाप बच्चे के ऊपर कैसे केस कर सकता है। बाबा ने बच्ची को लिखा- जैसे अखबार का नाम विश्वमित्र है, तो यह आपका मित्र ही है, आप क्यों समझती हो कि इसने आपकी ग्लानि की है, उसने तो बिना पैसे आपका प्रचार प्रसार किया है। उल्टा बोर्ड तो आजकल जल्दी प्रचार प्रसार करता है। सुल्टा तो सभी लगाते हैं, लेकिन उल्टे बोर्ड पर सभी की नजर जाती है और उस बात को जानने की और भी जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसलिए 'निन्दा हमारी जो करें, मित्र हमारा सो होय''-यह पाठ पक्का करो और सहनशील बनो।

जीवन का अंतिम लक्ष्य
आत्मस्वरूप की अनुभूति

महान् राजा भर्तृहरी के सम्बन्ध में एक बड़ी ही प्रीतिकर और शोधपूर्ण कहानी है। कहते हैं कि वह अपने अपार धन, वैभव, राजपाट को त्याग कर तपस्या के लिए जंगल चला गया। उनके जीवन में त्याग सिद्धान्त के रुप में नहीं परन्तु जीवन में भोग और सम्पत्ति की व्यर्थता के अनुभव से फलित हुआ था। एक दिन वे पेड़ की शीतल छाया में प्रभु की याद में ध्यान-मग्न बैठे थे। अचानक उनकी आंखें खुलीं। वृक्ष के पास से एक छोटी पगडंडी गुजर रही थी। थोड़ी दूर उस पगडंडी पर सूर्य की रोशनी में एक अभुत और बड़ा हीरे का टुकड़ा पड़ा चमक रहा था। ऐसा हीरा उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसके मन में कामना जगी कि इसे उठा लूँ। अचानक उस बेहोशी के क्षण में वे अपने ध्यान के केन्द्र से च्युत हो गये। शरीर तो अब भी सिद्धासन में अचल था परन्तु मन तो उस हीरे को पाने की चाहत में चल पड़ा। ध्यान वहाँ नहीं है। अब तो मात्र मृत शरीर है। भर्तृहरी हिल भी पाते, उससे पहले उन्होंने देखा-वहाँ दो व्यक्ति घोड़े पर सवार हो अलग-अलग दिशाओं से वहाँ आये। उन दोनों की नजर भी उसी चमकते हीरे पर पड़ी। दोनों ने हीरा पहले देखने का दावा कर तलवारें खींच ली। निर्णय का तो और कोई उपाय वहाँ नहीं था, वे आपस में जूझ पड़े। दोनों ने एक-दूसरे को समाप्त कर दिया। अब उस हीरे के पास दो लाशे पड़ी थी। भर्तृहरी ने देखा, हंसा और अपनी आंखे बंद कर ली और प्रभु-स्मरण में पुन: खो गया।

क्या हुआ? भर्तृहरी को सम्पत्ति की व्यर्थता का बोध हुआ। और उन दो व्यक्तियों का क्या हुआ? हीरा उनके जीवन से भी अधिक कीमती हो गया। इसीलिये जब भी कामना होती है, हम अपने से दूर चले जाते हैं। ये कामनायें हमें आत्म-घात की ओर ले जाती हैं। कामना के वशीभूत हम अपनी सुधबुध खो देते हैं। क्षण भर के लिए राजा को जो संयम के अनुभव का आत्म केन्द्र था वह खो गया। एक हीरा अधिक शक्तिशाली हो गया और वे कमजोर हो अपने केन्द्र से हट कर उस हीरे की ओर खिंचते चले गये। लेकिन फिर व्यर्थता के अनुभव ने उन्हें आत्म केन्द्रित कर दिया और उन्होंने अपनी आंखें बंद कर लीं।

निर्णय का आधार शब्द नहीं शब्दार्थ हो।

एक सेठजी थे जिनका नाम था धनपतराय। वे बहुत धनी-मानी व्यक्ति थे। बहुत धनवान होने के कारण वे बहुत शान-शौकत से रहते थे। सारे शहर के लोग भी उनको उसी निगाह से देखते व इज्जत

करते थे। सेठजी का बेटा अब विवाह-योग्य हो चुका था। सेठ धनपतराय ने अपने पुत्र के लिए कोई योग्य-वधू की खोज प्रारम्भ कर दी और आखिर वह दिन आ गया जब उन्हें अच्छे कुल की एक कन्या की जानकारी मिली और उन्होंने अपने इकलौते पुत्र का विवाह बहुत ही धूमधाम से सम्पन्न किया और बाजे बजवाते अपनी पुत्र-वधू को खुशी-खुशी अपने घर ले आए। सेठजी अपनी पुत्र-वधू को देख खुशी से फूले नहीं समाते थे। बहू भी बहुत ही समझदार, आज्ञाकारी तथा हर कार्य में कुशल थी इसलिए सेठजी भी उससे बहुत प्रसन्न थे।

अभी विवाह को कुछ ही दिन बीते थे, एक दिन एक भिखारी भीख माँगता, आवाज लगाता हुआ सेठजी के मकान के आगे खड़ा हुआ। वह कह रहा था- 'तीन जन्म का भूखा हूँ, कोई रोटी का टुकड़ा दे दे। बहू ने ऊपर से ही आवाज लगाते हुए कहा- 'बासी टुकड़े खाते हैं, कल उपवास करेंगे।' सेठजी के कानों में जब ये शब्द गये तो उन्हें बहुत गुस्सा आ गया। वे सोचने लगे कि कमाल है, इस बहू को मैं हर चीज बढ़िया-से बढ़िया लाकर देता हूँ-पूड़ी, कचौड़ी, हलवा, खीर, मालपुए अनेक प्रकार के व्यंजनों से इसको भरपूर रखता हूँ- यह फिर भी कहती है कि 'बासी टुकड़े खाते हैं, कल उपवास करेंगे।' आखिर मैंने क्या कमी रखी है इसको! यह बहू तो मेरी इज्जत ही मिट्टी में मिला देगी। सोचते-सोचते उनके क्रोध का ज्वर बढ़ता गया और उन्होंने तय कर लिया कि अब तो इसे वापस इसके मायके में भेजना ही पड़ेगा।

सेठ जी बड़े तेज कदमों-से अपने घर के आँगन से बाहर निकले और उन्होंने पंचायत बिठाई। वधू के पिता को भी बुलवाया गया और सेठजी ने सारी कहानी उन्हें सुनाते हुए कहा कि '' ले जाइए अपनी बेटी को अपने साथ! इसने तो हमें कहीं का नहीं छोड़ा।'' पंचायत के मुखिया ने सेठजी के इस बात को सुनते हुए कहा-सेठजी, उतावलेपन में फैसला कर लेना उचित नहीं। आप तो स्वयं ही कहते थे कि आपकी बहू बहुत समझदार हैं, आप उसे बुलाकर पूछिए तो सही कि उसने ऐसा क्यों कहा? अवश्य ही उसका कोई अर्थ होगा। सेठ जी को भी उनकी बात जँच गई। उन्होंने अपनी बहू को बुलवा भेजा। बहू बड़े आदर-भाव से आकर वहाँ बैठ गई। उससे सेठ जी ने पूछा कि बहू, तुम यह तो बताओ कि भिखारी के यह कहने पर 'तीन जन्म का भूखा हूँ, कोई रोटी का टुकड़ा दे दे' तुमने यह क्यों कहा कि 'बासी टुकड़े खाते हैं, कल उपवास करेंगे? क्या तुम बासी टुकड़ों पर गुजारा कर रही हो? इतनी समझदार होते हुए भी तुमने ऐसा क्यों कहा? बहू ने कहा- ससुर जी, मैं कुछ गलत कहूँ तो क्षमाकर दीजिएगा। बात यह है कि भिखारी का यह कहना कि 'तीन जन्म का भूखा हूँ.. इसका अर्थ यह कि पिछले जन्म में वह गरीब था तो वह कुछ दान नहीं कर सका और इसलिए इस जन्म में भिखारी है। इस जन्म में क्योंकि वह गरीब है तो अभी भी वह दान नहीं कर सकता और इसलिए अगले जन्म में भी यह गरीब और भूखा ही रहेगा और इसलिए वह कहता है कि तीन जन्म का भूखा हूँ..। और इस पर

मैंने जो उसे जवाब दिया, उसका भाव यह है कि हमने पिछले जन्म में जो दानपुण्य किया था, उसकी प्रालब्ध रुप में हमें यह सब धन-धान्य मिला। यह हमारे पिछले जन्मों मे किए गए कर्म का फल है तभी मैंने कहा कि बासी टुकड़े खाते हैं, परन्तु ससुर जी, इस जन्म में हमारे इस घर में तो दान करने की प्रथा ही नहीं है तो अगले जन्म में जरुर भूखा ही रहना पड़ेगा अर्थात् उपवास ही रखना पड़ेगा। मेरा यह कहने का भावार्थ यही था। सेठ जी बहू की यह बात सुनकर कुछ लज्जित भी हुए और मन-ही-मन उन्होंने दृढ़ संकल्प भी किया कि आज से लेकर वे सुपात्र को अवश्य ही दान करेंगे। शब्दों का सही भावार्थ न समझने के कारण कैसे अर्थ का अनर्थ हो जाता है और अगर सही भाव समझ में आ जाए तो वही शब्द जीवन को परिवर्तन करने वाले सिद्ध हो सकते है। जैसे सेठ जी का जीवन बदल गया। अत: कभी भी किसी के शब्दों पर न जाकर उसके भावों को समझने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

विवेकयुक्त भावना कल्याणकारी

एक पवित्र सुन्दर स्थान पर आश्रम था। वहाँ श्रेष्ठ दिव्य-चरित्र निर्माण की शिक्षा दी जाती थी। एक गुरुजी अपने शिष्यों को वहाँ शिक्षा देते थे। एक दिन गुरुजी कहीं लम्बे समय के लिए विदेश-भ्रमण पर जाने वाले थे। अपने शिष्यों की परीक्षा का उचित समय था। उन्होंने अपने मुख्य दोनों शिष्यों को बुलाकर कुछ अनाज के दाने दिये। '' मीठे-मीठे बच्चों! मैं कुछ समय के लिए बाहर यात्रा पर जा रहा हूँ। मैंने जो अनाज के बीज दिये हैं इन्हें अपनी इच्छानुसार सदुपयोग में लाना। बहुत प्यार-से रहना और आश्रम की देखभाल ध्यान-से करना '' दोनों शिष्यों ने अपने गुरुवर की बात को ध्यान से सुना और बोले आप किसी प्रकार की चिंता न करें। हम भली प्रकार आश्रम की देखभाल करेंगे। वे गुरुजी को बहुत प्यार से दूर तक विदा देने आये। दोनों शिष्यों ने आदर सहित प्रणाम किया और लौट गये। समय पंख लगाकर उड़ने लगा। दिन महीना यहां तक एक वर्ष बीत गया परन्तु गुरुजी नहीं लौटे। पूरे पाँच वर्ष बीत गये। छठे वर्ष में गुरुजी लौटे। दोनों शिष्य अपने गुरुजी को आया देख आनंद विभोर हो उठे। आदर सहित आश्रम में ले आये।

आश्रम पहुँचने पर गुरुजी ने दोनों शिष्यों को अपने पास बुलाया। दोनों शिष्य उनके पास पहुँचे। सबसे पहले बड़े शिष्य से पूछा, '' बच्चे यात्रा पर जाते वक्त मैंने तुम्हें कुछ अनाज के दाने दिये थे उनका तुमने क्या किया? '' गुरुजी आप क्षणिक ठहरें मैं अभी आता हूँ।'' इतना कहकर वह खुशी से अपने कमरे की ओर गया और एक संदूक उठा लाया। जिस पर लाल रंग का कपड़ा लिपटा हुआ था। अगरबत्ती की खुशबू से महक रहा था वह छोटा सा संदूक। वह संदूक को अपने गुरु के सामने

रखकर बोला- गुरुदेव, यह आपका दिया हुआ प्रसाद था। अतः इसकी बड़ी श्रद्धा-भावना से पूजा करता था। अगरबत्ती लगाता था। आपको भी अगरबत्ती की खूशबू आ रही होगी संदूक से।

गुरुजी ने संदूक खोला तो क्या देखते हैं कि सारा अनाज सड़ गया है। एक भी अन्न कण काम का न रहा। सब कीड़े खा गये हैं। यह देख गुरुजी को बड़ा अफसोस हुआ। फिर दूसरे-से मुड़कर पूछा- बच्चे, तुमने अनाज क्या किया? '' शिष्य ने गुरुजी को अपने साथ चलने को कहा। गुरुजी उसके पीछे- पीछे चल दिये। एक सुन्दर कुँए की ओर इशारा करके बोला-'' गुरुजी आप जो यह नया मीठे पानी कुँआ देख रहे हैं। उधर वह बहुत सुन्दर धर्मशाला है ना! और इधर आश्रम के पास सुन्दर फूलों का बगीचा। नया आश्रम जो बना है। यह सबकुछ आप-देख रहे हैं। यही वह आपके बीज का फल है। यह सब देखकर गुरुजी बड़े विस्मित हुए। उन्होंने पूछा -बच्चे यह कैसे हुआ? जरा बताओ! शिष्य बोला-गुरुजी आपके दिये बीज को मैंने उसी वर्ष आश्रम के पास की उपजाऊ भूमि में बो दिया। धरती माँ ने एक का सौ गुना करके दिया। एक वर्ष में इतना अनाज हो गया था कि मैं बहुत जमीन में बीज बो सकता था। दूसरे वर्ष काफी जमीन में अनाज बोया। अध्ययन करने के बाद मेरे पास जो समय बचता मैं मेहनत करता था। मेहनत का फल भगवान अवश्य देते है। इस वर्ष बहुत अनाज हुआ। इससे मैंने काफी अनाज प्राप्त किया। क्योंकि यह आपकी अमानत थी। मैंने आश्रम को बहुत अच्छा बनाया धन प्राप्त करके। नया आश्रम, सुन्दर मीठे पानी का कुँआ भी खुदवाया।''

यह सब देख अपने विवेकशील शिष्य को अपने गले से लगा लिया। बेचारा बड़ा शिष्य तो काटो तो खून नही वह तो शर्म के मारे झुक गया। गुरुजी बोले, '' बच्चों! श्रद्धा तो जीवन में होनी ही चाहिए। परन्तु विवेक भी साथ में चाहिए। बिना श्रद्धा भावना के विवेक शून्य बनकर रह जाता है। और बिना विवेक के भावना सुन्दर नही लगती। जहाँ भावना जीवन की मिठास है वहाँ विवेक जीवन का नमक है। एक जीवन को मधुर बनाता है वहाँ दूसरा जीवन को सुरक्षित रखता है।

बड़ा कौन? स्थूल धन या ज्ञान धन

एक प्रभु प्रेमी, प्रभु-प्रीति में लवलीन हुआ नगर से कुछ दूर बैठा अपनी साधना करता रहता था। इधर नगर में एक सेठ को सदा अधिकाधिक धन पाने की लालसा लगी रहती थी। उस धन्ना सेठ को शहर में कहीं से भनक पड़ी कि जंगल में कहीं कोई काफी बड़ा खजाना दबा हुआ है परन्तु वह कहाँ है, इसके बारे में किसी को पता नहीं। धन्ना सेठ अपनी किस्मत आजमाने वन की ओर चल पड़ा। जब नगर का मार्ग समाप्त हो गया और वन शुरु हो कर घना-सा होने लगा तब वहाँ उसने एक व्यक्ति को पालथी मार कर मनन-चिन्तन करते हुए देखा। उसके चेहरे पर शान्ति और सन्तोष के चिह्न थे और

वह बिल्कुल निश्चिन्त सा दिखाई देता था। वह कायिक रुप से तो शहर से दूर बैठा ही था परन्तु लगता था कि उसका मन भी शहर के हाय-हल्ला से दूर कहीं, एकान्त में बस रहा है। धन्ना सेठ ने उसके पास पहुँच कर प्रणाम किया और उसे इन शब्दों से सम्बोधित किया- ''महाराज, अपके दर्शन पाकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ। आप तो विरक्त हैं परन्तु मैं एक गृहस्थी आदमी हूँ। आपकी कृपा और आपसे वरदान की एक कामना करता हूँ। यदि आप को मुझ पर करुणा हो तो कृपया यह बताने का कष्ट करें कि वन में कोई एक बड़ा खजाना कहाँ दबा हुआ है?''

प्रभु-प्रेमी-'' परन्तु मेरी तो इन बातों मे रुचि नहीं और मैं तो यह कहूँगा कि कमाई करने से जो धन प्राप्त होता है, उसी में ही सन्तोष करना अच्छा हैं।''

धन्ना सेठ- '' मैं मानता हूँ कि आपको इन सांसारिक धन-वैभवों से कोई प्रीति नहीं परन्तु मुझ पर आपकी यह कृपा हो- यह मेरी याचना है।''

प्रभु-प्रेमी- '' अच्छा, तो जाओ। उत्तर दिशा की ओर आगे बढ़ते चलो। जब लगभग 400 कदम चल चुके होंगे तो वहाँ एक पीपल का पेड़ दिखाई देगा। उस पेड़ की तीन मोटी-मोटी रगें पृथ्वी में धँसती हुई दिखाई देंगी। उनमें से जो मध्यवर्ती रग है और उसके दाहिने ओर जो रग है, उनके बीच के स्थान पर यदि 4 फुट गहरा खोदोगे तो तीन स्वर्ण कलश मिलेंगे जो अपार धन से भरपूर हैं। जाओ, अगर धन की ही कामना है और वह भी बिना कमाई वाले धन की, तो जाकर वे कलश निकाल लो।''

यह कहते हुए प्रभु-प्रेमी धन्ना सेठ को दया की दृष्टि से देखने लगा और साथ-साथ मुस्कारने भी लगा। उस प्रभु-प्रेमी से बात करके धन्ना सेठ की मनोवृत्ति पर कुछ अलौकिक प्रभाव पड़ा परन्तु फिर भी धन की लालसा से खिंचा हुआ-सा वह उत्तर दिशा में बढ़ने को उद्यत हुआ और उस प्रभु-प्रेमी को प्रणाम तथा धन्यवाद करके आगे को निकल पड़ा। कदम गिनते-गिनते 400 कदमों के फासले पर पहुँचा तो वहाँ उसने पीपल के पेड़ की तीन रगें देखीं। उस प्रभु-प्रेमी की मार्ग दर्शना के अनुसार उसने उस स्थान को 4 फुट गहरा खोदा तो यह देखकर उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा कि वहाँ तीन स्वर्ण कलश दबे थे। उनको उसने जब खोला तो उसमें हीरे, अशर्फियाँ वगैरह देखकर दंग रह गया और उसे बेहद खुशी हुई। परन्तु इस विचार ने उसे सोच में डाल दिया कि प्रभु-प्रेमी को जब इस खजाने का पता था तो यह खजाना उसने स्वयं अपने लिए क्यों नहीं ले लिया। इसलिए इस जिज्ञासा को लेकर वह फिर से उस प्रभु-प्रेमी के पास गया और बोला ''महाराज, आपकी कृपा से खजाना तो मिल गया परन्तु अब उस खजाने के प्रति मेरा कुछ विशेष आकर्षण नही है। मेरे मन में यह प्रश्न उठता है कि जब आपको उस खजाने का पता था तो आपने स्वयं ही वह खजाना क्यों नहीं ले लिया। अवश्य

ही आपको उससे भी कोई ऊँची प्राप्ति हुई होगी कि जिससे आपको उस खजाने के प्रति कोई आकर्षण नहीं है।

प्रभु-प्रेमी चुप होकर बैठा रहा और उसकी ओर देखता रहा। इसका उस धन्ना सेठ पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि धन के प्रति जो उसकी उत्कृष्ट लालसा बनी रहती थी, वह अब मन में नहीं रही। उसी क्षण उस प्रभु-प्रेमी के मुख से यह शब्द निकले- '' भाई, आप यही धन माँगते थे, इसलिए आपको उसका रास्ता बता दिया पर सर्वोपरि धन तो ज्ञान धन है। वह धन अविनाशी है और शरीर के नाश होने के बाद भी आत्मा के साथ रहता है और उसे शाश्वत सुख देता है।'' यह सुनकर वह धन्ना सेठ अब ज्ञानधन अर्जित करने की ओर प्रवृत्त हुआ।

अंर्तमन का दरवाजा खोलो

एक दरवाजे के पास तीन आदमी आपस में वार्तालाप कर रहे थे। वहीं से गुजरते हुए किसी महात्मा ने जब उनकी बातें सुनीं, तो वह पल भर के लिए वहीं ठहरकर उस दृश्य को देखने लगे। उन तीनो में से पहला बोल रहा था- ''मैं दरवाजे को खुलवाने के लिए जोर से आवाज दूंगा।'' दूसरे ने जवाब दिया-'' मैं तो पूरे जोर से दरवाजे को दस्तक दूँगा।'' तब तीसरे ने कहा–'' मैं तो पूरे जोर से दरवाजे को दस्तक दूँगा।'' तब तीसरे ने कहा- '' मैं तो बलपूर्वक धक्का लगाकर ही दरवाजा खोल दूँगा।''

तत्क्षण, ये सुनकर पास में खड़े महात्मा जी मुक्त मन से हंस पड़े। कोई अपरिचित व्यक्ति की उपस्थिति महसूस करते हुये तीनों एक ही स्वर में महात्मा जी से पूछ बैठे- ''कौन हैं आप? कृपया ये बताने का कष्ट करें कि आपको हमारी बातें सुनकर हंसी क्यों आयी'? महात्मा जी का प्रत्युत्तर था-'' मैं तो राहगीर हूँ। हंसी तो मैं आप सबकी चेष्टा देखकर न रोक पाया।'' ''लेकिन आपको इसमे हंसने जैसे क्या बात दिखाई दी?''भाइयों! दरवाजा तो खुला ही पड़ा है।'' महात्मा ने रहस्योद्‌घाटन किया। पुन: तीनों एक स्वर में बोल पड़े- '' तो खोलना क्या है? महात्मा जी कह रहे थे-'' खोलना है सिर्फ आप तीनो की आँखों पर बंधी ये पट्टियों को।

गुण ही व्यक्ति की वास्तविक सुन्दरता है।

राजा जनक के दरबार में एक विद्वान पंडित रहते थे जिनका नाम बंदी था, उन्हें अपनी विद्वता पर इतना घमण्ड था कि जो उनसे शास्त्रार्थ में हार जाता, उसे नदी में डुबो दिया जाता था। इसी कारण काहोद नाम के एक ऋषि को अपने प्राण गंवाने पड़े थे। काहोद का छोटा-सा एक बच्चा था, जो बहुत

ही भद्दी सूरत का लूला-लंगड़ा था। उसका नाम अष्टवक्र था यानि उसका शरीर आठ जगह से तुड़ा-मुड़ा हुआ था। भगवान ने अष्टवक्र को अद्‌भुत प्रतिभा दी थी। जिस बात को वह एक बार सुन लेता वह उसे याद हो जाती थी। याद करने की शक्ति के साथ-साथ उसमें कल्पना और तर्क करने की अद्‌भुत शक्ति थी। होश संभालने के थोड़े दिन बाद से ही अष्टवक्र अध्ययन के लिए जुट गया, ऐसी कोई विद्या न थी जिसका अध्ययन उसने न किया हो। थोड़ी-सी उम्र से सब विद्याएं सीख बालक अष्टवक्र राजनगर लौट रहा था। राजनगर सड़क पर चल रहा था। पीछे से सिपाही 'हटो-हटो' कहते सबसे रास्ता साफ करा रहे थे। पर अष्टवक्र अपनी धुन में चला जा रहा था। रास्ते से हट नहीं रहा था। सिपाहियों ने उसे डांटा तो वह जोर से बोला-'' रास्ता केवल अपाहिजों और बोझा ढ़ोने वालों के लिए छोड़ा जाता है। तुम्हारे लिए रास्ता क्यों छोड़ूँ?'' बालक की ज्ञान भरी बातें सुनकर सब अचम्भे में रह गये। चलते-चलते वह राजमहल के पास पहुँचा। संतरियों ने उसे छोटा समझकर अन्दर न जाने दिया, तो वह बोला- '' मैं छोटा नहीं बड़ी उम्र का हूँ। क्योंकि बड़ों की तरह मैंने सब विद्यायें सीखी है, लम्बाई-चौड़ाई या ऊँचाई आदमी के बड़े होने का प्रमाण नहीं हैं, उसकी बुद्धि ही बड़प्पन को जताती है।'' सिपाहियों ने तब भी उसे महल में न घुसने दिया तो अष्टवक्र को गुस्सा आ गया। बोला- ''हमें नहीं मालूम था कि दरबार में कोई छोटा-बड़ा होता है। छोटे-बड़े की कसौटी धन-धौलत नहीं, विद्या से होती है।'' सिपाहियों ने उसकी बात हंसी में टाल दी तो राजा जनक ने अन्दर बुलवाया और नाराजगी का कारण पूछा। अष्टवक्र ने जवाब दिया-''राजा जनक, मैं आपके पंडित बंदी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारता हूँ। आप उन्हें सभा में बुलवाइए।'' सभा जुड़ी। एक तरफ सुडौल शरीर वाले विद्वान् पंडित बंदी बैठे थे और दूसरी तरफ टेढ़े-मेढ़े शरीर वाला लूला-लंगड़ा बालक अष्टवक्र। दरबार के चारो कोनो से अष्टवक्र की विचित्र सूरत को देखकर हंसी के ठहाके गूँज रहे थे। छोटी-सी एक गठरी के सामन वह एक ऊँचे आसन पर बैठा था। सभी उसकी हंसी उड़ा रहे थे। जब हंसी बन्द हुई, तो लोग चुपचाप अष्टवक्र की तरफ देखने लगे। अष्टवक्र ने सिंह की गर्जना के समान ऊँची आवाज में हंसना शुरु कर दिया। उसकी हंसी का स्वर इतना ऊँचा और मर्मभेदी था कि सारी सभा स्तब्ध रह गई।

राजा जनक ने विनयपूर्वक पूछा-''आपकी हंसी का क्या कारण है?'' अष्टवक्र ने कड़कती आवाज में कहा-''राजा जनक! बहुत दिनों से आपकी विद्वत सभा की तारीफ सुनता आ रहा था। लेकिन मालूम पड़ता है तुम्हारे दरबार में सभी हाड़-मांस का मोल करने वाले व्यापारी हैं। बुद्धि का सौदागर कोई नहीं। मैं अपनी मूर्खता पर हंस रहा था कि ऐसी मूर्खो की सभा में इतना कष्ट उठाकर क्यों आया? अष्टवक्र की इस एक बात ने ही सभा में सन्नाटा पैदा कर दिया। सब एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। सामने बैठे पंडित बंदी भी अष्टवक्र की बातों से हैरान रह गये। शस्त्रार्थ शुरु हुआ।

दरबारी आश्चर्य से दांतों तले उंगली दबाए बैठे रहे और देखते रहे कि यह बदसूरत लड़का कितना बड़ा विद्वान हैं। कितनी बुद्धिमता से विद्वान् पंडित को उत्तर दे रहा है। शास्त्रार्थ चलता रहा, अष्टवक्र का तो जवाब ही न था। एक से बढ़कर एक जवाब दे रहा था। बंदी ढीले पड़ते जा रहे थे, वह ठीक से जवाब नहीं दे पा रहे थे। जब बंदी से अष्टवक्र के प्रश्नों का उत्तर देते न बन पड़ा तो लाचार होकर उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली। सारी सभा हैरान रह गई। दरबारियों ने जो अष्टवक्र से जलते थे और उसे अपमानित करना चाहते थे, वे चुप होकर बैठ गए। इस तरह मनुष्य की सुन्दरता शरीर नहीं गुण हैं। अष्टवक्र शरीर से कुरुप था लेकिन अद्‌भुत बुद्धिमत्ता के कारण सबको उसके सामने नत-मस्तक होना पड़ा। इसी तरह गुण पूज्यनीय हैं, शरीर कितना भी सुडौल, सुन्दर हो यदि उसमें कोई भी ज्ञान न हो नम्रता आदि गुण न हों, समझ न हो तो उसे ज्ञान नेत्रहीन ही कहा जायेगा। अवगुणों से सम्पन्न हो तो उसे कुरुप ही कहा जायेगा।

एक वह भी जमाना था

एक गाँव में एक बच्चा एक बहुत छोटी-सी दुकान लगाए हुए था जिसमें दियासलाई की डिब्बियाँ अर्थात् माचिस मोमबत्तियाँ, बच्चों के लिए टिकिया, चने, मुरमुरे आदि छोटी-मोटी चीजें बिकती थी। बच्चा भोला-भाला और सीधा-साधा था और हर ग्राहक से इज्जत से बात करता था। इसलिए लोग भी उसे प्यार की निगाह से देखते थे। थोड़ा-बहुत समान बेचकर वह अपने व अपनी माताजी तथा भाई-बहन के लिए गुजारे का साधन जुटा लिया करता था।

एक दिन एक सेठ जी उसकी दुकान के आगे से गुजरे और उन्होंने उस बच्चे से माचिस की एक डिब्बी खरीदी और आगे बढ़ गए। वे अपनी बग्घी में सवार थे और देखते ही देखते उनकी बग्घी बहुत दूर निकल गई। दूसरे दिन फिर सेठ जी उस बग्घी में सवार होकर उस दुकान के आगे से गुजरे परन्तु जब तक उस बच्चे की निगाह सेठ जी पर पड़ती तब तक उनकी बग्घी आगे निकल गई। लेकिन फासले का ख्याल न करते हुए बच्चा बड़ी तेजी से उस बग्घी के पीछे भागा और जोर-जोर से आवाजें लगाने लगा— बग्घी रोको,‘‘ ‘‘ सेठ जी रुकिये,‘‘ ‘‘सेइ जी, बग्घी रोकिये,‘‘ – रूको , रूको‘‘!

बच्चे की आवाज सेठ जी के कानों में पड़ी और उन्होंने बग्घी रूकवा दी। वे हैरान थे कि यह बच्चा उनकी बग्घी के पीछे क्यों भागा आ रहा है। जब बच्चा नजदीक पहुँचा तो उन्होंने कहा-‘‘ बोलो बच्चे, क्या बात है? क्या चाहते हो?‘‘ सेठ जी ने पहचान लिया कि यह वही दुकान वाला बच्चा है जिससे कल माचिस ली थी। यह किसी कष्ट में होगा और शायद कोई मदद चाहता होगा-उन्होंने सोचा।

बच्चा हाँफ रहा था और हाँफते-हाँफते टूटे-टूटे वाक्यों में कहने लगा-सेठ जी, सेठ जी, यह लो अपनी अठन्नी। सेठ जी हैरान थे कि यह बच्चा इतनी दूर से भागकर कैसी अठन्नी देने आया है। इसलिए उन्होंने पूछा-''कैसी अठन्नी?'' बच्चे ने उत्तर दिया-''सेठजी, कल आपने माचिस ली थी न।''

सेठ जी-'' हाँ, ली तो थी। उसके पैसे तो दिये थे।''

बच्चा- '' जी हाँ, आपने एक पैसे की बजाय अठन्नी दी थी। कुछ अन्धेरा था, इसलिए देखा मैंने भी नहीं। बाद में जब मैंने देखा तो आप जा चुके थे। आज जब आप आगे से निकल कर गए तो मुझे ख्याल आया कि आपके पैसे आपको लौटा दिये जायें। इसलिए यह लीजिए अपनी अठन्नी और इसकी बजाय मुझे माचिस की कीमत एक पैसा दे दीजिए।''

सेठ जी- ''कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, रहने दो।''

बच्चा- ''नहीं, नहीं, यह अठन्नी आपकी है, आप ही इसे लीजिए। मैं तो अपनी कमाई के पैसे अपने पास रखता हूँ।''

सेठ जी-''बच्चे, यह तुमने कोई चोरी थोड़े ही की है। मैं अपनी खुशी से ही इसे दे रहा हूँ।''

बच्चा-परन्तु दूसरे की कमाई -मेरे लिए वह भी चोरी के बराबर है। उस पर मेरा कोई हक नहीं। मुझे पिताजी ने कहा था कि अपनी कमाई चाहे थोड़ी हो, उसमें ही बरकत होती है। इसलिए आप इसे वापस ले लीजिए और मुझे माचिस का केवल एक पैसा दे दीजिए।

सेठ जी बच्चे की ऐसी मीठी-मीठी बातें सुन कर बड़े आश्चर्यचकित हुए। वे सोचने लगे कि बच्चा तो छोटा है परन्तु बात बड़ी ऊँची और ठीक कहता है। वास्तव में यह मेरे लिए नसीहत है। मैं जो उल्टे कामों से पैसा इकट्ठा करता हूँ, अब उस आदत को छोड़ दूँगा।

एक जमाना ऐसा भी था कि किसी के पास भूल-चूक से किसी के अधिक पैसे आ जायें तो भी वह उन्हें वापस कर देता था। दूसरे के आग्रह करने पर भी वह उसे यह कहता था कि यह उसकी कमाई नहीं है, इस पर उसका कोई अधिकार नहीं है, इसलिए वह उसे अपने पास नहीं रखेगा। परन्तु अब जमाना ही बदल गया है लेकिन हाँ, अब शिव बाबा उस युग की स्थापना कर रहे हैं जिसे सतयुग कहते हैं। उस युग में सब लोग नैतिकता का पालन करते हैं। अतः अब हमें दिव्य गुणों को धारण करना चाहिए।

शरणार्थी की रक्षा

एक बार एक राजा बगीचे में बैठे हुए अपनी राजधानी के बारे में, राज-काज के बारे में मंत्रियों से बातें कर रहे थे। अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि आकाश से किसी पक्षी की करूण ध्वनि सबके कानों में गूँज गई। सबका ध्यान बरबस ऊपर चला गया। देखते हैं एक घायल कबूतर उड़ता हुआ आ रहा था उन्हीं की ओर। उसके पंख लड़खड़ा रहे थे, लग ऐसा रहा था मानो यह गिर पड़ेगा। सारा शरीर रक्त से भीगा था।

वह उड़ता हुआ नीचे उतरा एवं धीरे से केवल राजा की ही गोद में जाकर गिर पड़ा। इतने में थोड़ी ही देर बाद एक भयंकर बाज उड़ता आया। जब उसने अपने शिकार को राजा की गोद में देखा तो तेजी से उसने एक झपट्‌टा मारा, कबूतर को दबोचने के लिए। परन्तु कबूतर तो राजा की गोद में ऐसे छिप गया था जैसे एक अबोध शिशु माँ की गोद में जाने के बाद निश्चिन्त हो जाता है। बाज उड़ता हुआ बगीचे में एक वृक्ष पर जा बैठा। बाज देखकर उड़ा एवं राजा के सर से होकर गुजरा। ऐसा लगा माना वह राजा को अपनी हुक जैसे पैनी चोंच मार देगा। एवं दूसरे वृक्ष पर जा बैठा।

यह सब थोड़ी ही देर में घटित हो गया। सभी इस खेल को कौतूहल पूर्वक देख रहे थे। यह समझते देर न लगी कि यह कबूतर इस बाज का शिकार है। एक मंत्री बोला-

मंत्री-राजन यह कबूतर इस बाज का भोजन है। इसे आप छोड़ दें, नहीं तो यह बाज हमारा पीछा छोड़ने वाला नहीं है।

राजा- नहीं! मैं इस शरण में आये कबूतर को नहीं छोडूँगा। इस भोले पक्षी ने किसी का क्या बिगाड़ा। इस छोटे प्राणी ने मुझ पर विश्वास किया। अपने को मेरे समर्पण किया है आखिर क्यों? पक्षी तो इन्सानों से डरते हैं। परन्तु इसने अपने को मेरे हवाले किया है। इसके प्राणों की रक्षा करना मेरा धर्म है।

दूसरा मंत्री- परन्तु महाराज! एक की रक्षा दूसरे की हत्या, यह कैसा न्याय?

राजा- वह कैसे ? इससे दूसरे की हत्या कैसे?

मन्त्री- वह इस प्रकार कि आप कबूतर की रक्षा तो कर लेंगे परन्तु उस बाज की रक्षा कौन करेगा? क्योंकि यह उसका भोजन है। अत: वह मरेगा या नहीं?

राजा- ठीक है। मैं उसके लिए उसका भोजन मंगवा देता हूँ। इससे दोनों की रक्षा होगी। यह कहकर राजा ने बाज के लिए तरह तरह के माँस मंगवाये। माँस डाले गये बाज के सामने, परन्तु बाज ने उसकी ओर देखा तक नहीं। वह तो टकटकी बाँधे कबूतर को देख रहा था।

तीसरा मंत्री- महाराज। इस कबूतर को आप छोड़ेंगे तभी यह दुष्ट बाज जायेगा अन्यथा नहीं। यह तो कबूतर को ही मारकर खाना चाहता है।

राजा- नहीं, मैं इस कबूतर को किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ूँगा। चाहे इसके लिए मुझे अपना माँस ही बाज को क्यों ना देना पड़े। यह कहकर राजा ने अपनी तलवार से अपनी जाँघ का माँस काटकर बाज के सामने डाल दिया। सारे दरबारी घबरा उठे एवं बाज भी अब शायद राजा का इरादा समझ गया था, अब वह उड़ गया। उस दयालू राजा ने केवल एक पक्षी के समर्पण भाव को देखकर ही अपनी जान जोखिम में डाली एवं उस समर्पित हुए पक्षी की रक्षा की।

क्षमाशीलता

एक राजा स्वभाव से ही न्याायकारी था और क्षमाशील भी। वह अपराधियों को दण्ड भी देता था। परन्तु किसी की स्थिति और परिस्थिति को देखकर उसके दण्ड को हल्का भी कर देता या उसे क्षमा भी कर देता था। इस प्रकार प्रजा उस राजा के गुणों और कर्तव्यों से सन्तुष्ट थी और स्वयं को सौभाग्यशाली मानती थी कि उन्हें एक ऐसे राजा की छत्रछाया प्राप्त हुई है।

एक बार राजा के कोषाध्यक्ष और लेखाधिकारी ने जब पिछले हिसाब-किताब की जाँच की तो उन्हें मालूम हुआ कि एक कर्मचारी ने 1000 रुपये का ऋण लिया हुआ है जो उसने अभी तक चुकता नहीं किया जबकि चुकता करने की अवधि समाप्त हो चुकी है। कर्तव्य परायण और वफादार लेखाधिकारी ने राजा को इस बात का समाचार देने से पहले यह सोचा कि पहले वह स्वयं उस कर्मचारी से यह रकम वसूल करने की कोशिश करे। इस विचार से उसने कर्मचारी को अपने पास बुलवाकर उससे रकम माँगी और उसे बताया कि यदि वह अब भी ऋण नहीं चुकाएगा तो इसकी खबर राजा को दी जाएगी और तब उस न्यायकारी राजा के सामने उसे पेश होना पड़ेगा और उसकी नौकरी भी छूट जाएगी तथा वह दण्डित भी होगा। कर्मचारी ने सारी बात को सुना और यह भी समझा कि ऋण न चुकाने से उसे कारावास में जाना पड़ सकता है। परन्तु वर्तमान परिस्थिति में वह यह रकम लौटाने में असमर्थ था। अत: उसके पास जब कोई दूसरा उपाय ही नहीं था तो उसने लेखाधिकारी को अपनी कठिनाई से अवगत कर दिया। लेखाधिकारी भी क्या कर सकता था। अब तो उसका यही कर्तव्य था कि वह उसे राजा के सामने पेश करे। अत: निश्चित दिन और निश्चित समय वह उसे राजा के पास ले गया और उसने बाअदब राजा को सारी बात कह सुनाई। जब वह राजा से यह किस्सा कह रहा था, तब वह कर्मचारी गर्दन नीचे झुकाए, आँखें धरती पर गाड़े चुपचाप खड़ा रहा। एक ओर तो उसे लज्जा आ रही थी कि आज वह अपने पैसे नहीं चुका सकता, दूसरी ओर वह अपनी विवशता के कारण मायूस था, तीसरी ओर वह इस भय से आक्रान्त था कि न जाने अब महाराज क्या दण्ड सुनायेंगे।

जब लेखाधिकारी सारा किस्सा सुना रहा था तब राजा उस कर्मचारी के हाव-भाव और उसकी रुप-रेखा को ध्यान से देख रहा था। राजा को ऐसा महसूस हुआ कि यह कर्मचारी लाचार है, यह बाल-बच्चेदार आदमी है, कोई दु:ख की घड़ी आने पर इसने ऋण तो ले लिया परन्तु वेतन से बचत न रहने पर यह उतने समय में पैसे नहीं चुका पाया जितने समय में चुकाने की इससे आशा की थी। इस सारी स्थिति को भांपकर राजा ने यह हुक्म दिया कि यह कर्मचारी पैसा चुकाने में असमर्थ मालूम होता है वर्ना इसकी नीयत में दोष नहीं है। अत: इसे माफ किया जाता है और जो रकम इसने ली थी, उसे ऋण की बजाय राज दरबार से सहायता के रुप में शुमार किया जाए और इसके बाद इस किस्से को समाप्त किया जाए। राजा के ऐसा हुक्म सुनाने के बाद ऐसा लग रहा था कि जैसे उस कर्मचारी में फिर से जान आ गई हो। अब उसके चेहरे पर खुशी व शुक्रिया की रेखाएँ उभर आई थी और उसने वहाँ से प्रस्थान किया। वहाँ से छूटने के बाद वह कर्मचारी सीधे ही एक ऐसे व्यक्ति के पास गया जिसने 100 रुपया उस कर्मचारी से उधार लिया था। उस व्यक्ति के पास पहुँचकर कर्मचारी ने उसे अपने आने का प्रयोजन बताया। उसने उस व्यक्ति को कहा कि वह उसका 100 रुपया वापस कर दे। उस व्यक्ति ने कहा कि उसकी पत्नी बीमार है और कि इस परिस्थिति में वह उसका ऋण चुकाने में असमर्थ है। उसने बड़े अनुनय-विनय से क्षमा याचना की और यह भी कहा कि वह पैसे जल्दी लौटाने की कोशिश करेगा। परन्तु इस समय जब उसके पास है ही नहीं तब वह 100 रुपये तो क्या उसका थोड़ा अंश भी नहीं लौटा सकेगा! उस व्यक्ति ने कर्मचारी को यह भी बताया कि न लौटा सकने के कारण वह शर्मिन्दा है। परन्तु कर्मचारी हठ पर उतर आया था। उसने उस व्यक्ति की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया और कहा कि तुम्हें पैसे देने ही होंगे, चाहे तुम्हें कहीं से भी लाने पड़े। जब कर्मचारी ने देखा की वह व्यक्ति पैसे नहीं देता और चुप होकर गर्दन झुकाये मायूस बैठा है तो भी उसने उस व्यक्ति पर प्रहार किया ताकि वह डरकर कहीं से भी पैसों का इन्तजाम करके उसे दे दे।

इस प्रहार के परिणाम स्वरुप वह ऋणी व्यक्ति चिल्ला उठा। उसे चोटें आई और आखिर यह किस्सा राजा के पास पहुँचा । जब उस कर्मचारी को राजा के सामने पेश किया गया- तब राजा ने उसे कहा कि मैंने तो तुम पर दया करके तुम्हारे 1000 रुपये माफ कर दिये थे, तुम ऐसे निर्दयी निकले कि तुम अपने ऋणी को 100 रुपये भी माफ नहीं कर सके। अब मैं यदि तुम पर 1000 रुपये का दण्ड लगाऊँ और कारावास में कड़ा दण्ड भी दूँ, तब तुम्हारा क्या हाल होगा? यह सुनकर उस कर्मचारी के लज्जा से पसीने छूट गए और उसे अपने कर्म पर बहुत अफसोस हुआ। हम देखते हैं कि इस कलियुग में प्राय: हरेक मनुष्य का दूसरों से ऐसा ही व्यवहार है। परमपिता परमात्मा न्यायकारी भी हैं और क्षमाशील भी। वह गुणवान भी हैं और सन्तुष्टकारी भी। मनुष्य पर अपने कर्मो का भारी ऋण चढ़ा हुआ है और यदि सच्ची नीयत से , मौन भाव से वह प्रायश्चित करता है तो दयालु परमात्मा उसका

कुछ अंश उसे क्षमा भी कर सकते हैं परन्तु अफसोस है कि वह अपनी तो 1000 भूलों को क्षमा कराना चाहता है और दूसरे किसी की एक भूल भी माफ नहीं करना चाहता।

छोड़ो तो छूटो

एक बार एक व्यक्ति एक महात्मा की कुटिया पर पहुँचा और उनसे याचना की कि कोई ऐसा सरल उपाय बतायें जो शराब की बुरी लत छूट जाये। महात्मा जी ने कुछ सोचकर उस व्यक्ति को दूसरे दिन आने को कहा। दूसरे दिन जब वह व्यक्ति निर्धारित समय पर महात्मा जी के निवास स्थान पर पहुँचा तो देखा महात्मा जी एक वृक्ष को दोनों बाहों से पकड़े खड़े है। शायद यह कोई योग की विधि होगी ऐसा समझ वह व्यक्ति वहीं बैठ महात्मा जी के अपने आसन पर लौटने का इन्तजार करने लगा। जब काफी समय बीत जाने पर भी महात्मा जी वैसे ही वृक्ष को बाँधे खड़े रहे तो वह व्यक्ति महात्मा जी के निकट आया और विनम्रता से बोला महात्मा जी आज आपने मुझे समय दिया था। महात्मा जी ने उस व्यक्ति की ओर देखा और बड़ी विवशता से बोले कि क्या करुँ भाई मैं तो स्वयं ही बहुत देर से आपके पास आना चाह रहा हूँ लेकिन यह वृक्ष मुझे छोड़ता ही नहीं हैं। बहुत ही आश्चर्य में वह व्यक्ति महात्मा जी को देखता रहा और बोला महात्मा जी यह आप क्या कर रहे हैं। वृक्ष को तो आपने पकड़ रखा है। आप छोड़ देंगे तो छूट जायेंगे। यह सुनते ही महात्मा जी वृक्ष को छोड़ मुस्कराते हुए अपने आसन पर विराजे और उस व्यक्ति से कहा भाई, आप भी तो मेरी तरह शराब को पकड़े हुए हैं। शराब ने तो आपको नहीं पकड़ रखा है। आप भी अगर शराब को छोड़ देंगे तो छूट जायेगा। बात उस व्यक्ति के लग गई और सहज पुरुषार्थ से ही उसने उस दिन से शराब छोड़ दी।

सेवा ही सर्वोत्तम

कहते हैं एक बार अकबर ने अपने राज दरबार में निम्नलिखित तीन प्रश्न किये और कहा कि जो इनका ठीक उत्तर देगा उसको काफी बड़ा इनाम मिलेगा।

1. सबसे अच्छा फूल कौन सा है?
2. सबसे बड़ा राजा कौन सा है?
3. सबसे अच्छा बेटा किसका है?

दरबार में जो बुद्धिमान लोग थे, उन्होंने उत्तर देने की कोशिश की। किसी ने कहा कि सबसे अच्छा फूल गुलाब का है, किसी अन्य ने कहा कमल का फूल सबसे अच्छा है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में

सबने कहा कि अकबर ही सबसे बड़े और अच्छे राजा हैं क्योंकि वे चाहते थे कि महाराजा अकबर उनसे खुश हों। उन्हें यह डर भी था कि अगर वे अकबर को सबसे बड़ा और अच्छा राजा घोषित नहीं करेंगे तो वे उनसे नाराज भी हो जायेंगे।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में भी लगभग सभी ने यह उत्तर दिया कि महाराज अकबर के सुपुत्र ही सबसे अच्छे हैं। क्योंकि उन्हें डर था कि अगर युवराज को मालूम हुआ कि अमुक व्यक्ति ने उनका नाम अच्छे राजकुमार के रुप में नहीं लिया तो वे उनके खिलाफ हो जायेंगे और समय आने पर सिंहासनरुढ़ होने पर पर शायद दुश्मनी भी निकाल लें।

राजा इन उत्तरों से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने समझ लिया कि ये प्रशंसा करने के लिए ही सामान्य उत्तर दे रहें हैं जिनमें न तो कुछ नवीनता है और न कुछ विचार ही उत्तमता। इस प्रकार जब उन्होंने देखा कि उनके प्रश्नों का अभिप्राय तो पूरा ही नहीं हो रहा तब मुस्कराते हुए उन्होंने बीरबल की तरफ देखा और कहा कि अब महाराज सुनना चाहेंगे कि इन प्रश्नों के बारे में बीरबल के क्या विचार है? स्वाभाविक था कि अब सभी का ध्यान बीरबल की ओर केन्द्रित हो गया।

बीरबल ने मर्यादा और शिष्टाचार पूर्वक महाराजा को सम्बोधित करके कहा, महाराज! यों तो गुलाब व कमल अपनी-अपनी जगह पर सभी फूलों में अच्छे भी हैं और बड़े भी परन्तु मेरे विचार में सबसे बड़े व अच्छे फूल रुई के फूल हैं क्योंकि उनसे जो हमें रुई मिलती है और उससे जो कपड़े बनते हैं, उन्हें पहनकर एक व्यक्ति न केवल स्वयं को सर्दी-गर्मी से बचाता है बल्कि एक सुसभ्य इन्सान दिखाई देता है। उनके बिना तो आम इन्सान हैवान की तरह नंग-धड़ंग दिखाई देता है। आपका जो दूसरा प्रश्न है, उसके विषय में मेरा मन्तव्य है कि राजाओं में सबसे बड़े इन्द्र हैं क्योंकि वे वर्षा करते हैं। यदि वे वर्षा न करें तो खेती नहीं होगी। खेती न होने से अनाज नहीं होगा और अनाज न मिलने से जनता भूखों मरेगी। अब रहा आपका तीसरा प्रश्न अर्थात् यह प्रश्न कि सबसे अच्छा बेटा किसका है? मेरे विचार में सबसे अच्छा बेटा गाय का होता है क्योंकि वह हल न चलाए तो खेती नही होगी। बेचारा घास और भूसा खाता है और वह भी अपनी पैदावार में से और मेहनत करके प्रजा का पेट भरने की सेवा करता है। बीरबल के इन उत्तरों को सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और राज दरबार के अन्य सदस्यों को भी ये बातें बहुत अच्छी लगी। इस कहानी के निष्कर्ष पर हम पहुँचते हैं कि सेवा करने वाला ही सबसे बड़ा और अच्छा होता है।

कर्म अनुसार प्राप्ति

एक बार एक राजा एक व्यक्ति के काम से बहुत खुश हुआ। उसने उस व्यक्ति को अपने पास बुलाकर कहा कि तेरी मेहनत, वफादारी व हिम्मत से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए मैं आज तुझे कुछ इनाम देना चाहता हूॅं। फिर उसने कहा कि काम तो चाहे तुमने लगभग 500 रुपये जितना किया है पर मैं तुम्हें कुछ इससे अधिक देना चाहता हूॅ। वह व्यक्ति बहुत खुश हो रहा था।

राजा ने उससे कहा, '' आज की रात तुम मेरे व्यक्तिगत कमरे में ही गुजारना। वहाँ सब प्रकार का कीमती सामान है, तुम्हें जो चाहिए, वह उसमें से ले लेना परन्तु सुबह 7.00 बजे कमरा खाली कर देना।'' उस व्यक्ति की तो खुशी का ठिकाना न रहा। वह अपने भाग्य को सराहने लगा और सोचने लगा कि सचमुच, भगवान जब देता है तो छप्पर फाड़कर ही देता है।

रात के ठीक 9.00 बजे उसने राजा के कमरे में प्रवेश किया। अनेक प्रकार की आलीशान वस्तुओं, कीमती सामान को देख कर उसकी आँखें चमक उठी। वह एक-एक चीज को बड़े ध्यान से देखता और मन में सोच लेता कि वह यह चीज भी अपने साथ ले जाएगा, दूसरी चीज भी ले जाएगा और इस प्रकार उसने कई वस्तुओं को अपने साथ ले जाने की योजना बना ली। और फिर मन-ही-मन मुस्कराते हुए सामने बिछे हुए नरम-नरम गद्दों वाले बिस्तर की ओर चल दिया। उसने सोचा कि सारा दिन बहुत काम करके वह थक गया हूॅ तो क्यों न कुछ देर सुस्ता ही लिया जाए (और फिर ऐसा नरम-नरम बिस्तर उसे और कहाँ मिलना था) और उसके बाद वह यह सब सामान इकट्ठा कर लेगा और सुबह होते ही सामान सहित कमरे से बाहर आ जाएगा।

यह सोचकर वह उस पलंग पर जाकर चैन से लेट गया। थका हुआ तो था ही, कुछ ही क्षणों में उसे निद्रा देवी ने घेर लिया। वह सोया रहा, सोया रहा और इतना सोया रहा कि सुबह के 7.00 बज गए। उसी वक्त राजा के नौकर ने आकर दरवाजा खटखटाया। वह व्यक्ति आँखें मलता हुआ हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसने जल्दी से बिस्तरे से उठ कर दरवाजा खोला। नौकर ने कहा-''बाहर चलो, समय पूरा हो गया है''। उस व्यक्ति ने घबराकर घड़ी की ओर देखा और कमरे से बाहर निकलते वक्त एक टेबल लैम्प को ही खींचता हुआ ले गया। पूछने पर मालूम हुआ कि उस लैम्प की कीमत कुल 500रुपये ही है। जितना उस व्यक्ति ने काम किया था, उसको उतनी ही प्राप्ति भी हो गई।

सारा कमरा, वह कीमती सामान, आलीशान वस्तुएँ उस व्यक्ति के सामने थीं, वह उसमें से जितना चाहता उतना ले सकता था परन्तु तकदीर के बिना मनुष्य को कुछ भी प्राप्त नही होता। चाहे उसमें निमित्त कारण विघ्न रुप कुछ भी हो जैसे इस कहानी में उस व्यक्ति की नींद। परन्तु याद रखना तकदीर भी अपने ही कर्मो से बनती है। श्रेष्ठ कर्म करने वालों की ही श्रेष्ठ तकदीर बनती है। और निकृष्ट कर्म अथवा खोटे कर्म करने वाले की खोटी तकदीर। जैसे उस व्यक्ति ने 500 रुपये का काम

किया था और 500 रुपये की ही उसको चीज मिल गई। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने कर्मो पर ध्यान दे।

उन्नति में विघ्न रूप ईर्ष्या

किसी मोहल्ले में कुछ बच्चे छोटे-छोटे शीशे के मर्तबान लेकर बैठे थे। सभी मर्तबानों पर ढक्कन भी लगा हुआ था और हरेक बच्चे ने अपने-अपने मर्तबान में कोई-न-कोई छोटा मोटा जन्तु, कीड़ा, मच्छर कैद कर रखा था। वे देख रहे थे कि किस प्रकार ये जन्तु उछल-उछल कर मर्तबान से बाहर निकलने की कोशिश करते थे परन्तु ढक्कन बन्द होने के कारण निकल नहीं पाते थे। ज्यों ही वे जरा सा ढक्कन ऊपर करते, तत्क्षण ही वे उछल कर बाहर निकल आते और वे बच्चे फिर उसे पकड़ कर अन्दर बन्द कर देते। इस प्रकार ये बच्चे खेल में मस्त थे।

परन्तु इन्हीं बच्चों के साथ एक बच्चा ऐसा भी था जिसके पास मर्तबान तो था परन्तु उसका ढक्कन हीं था। उसके मर्तबान में दो केकड़े थे। केकड़े मर्तबान के बीच में उछलते भी थे परन्तु ढक्कन न होने पर भी उस मर्तबान से बाहर नहीं आ पाते थे। सभी बच्चे इस दृश्य को देख बहुत हैरान हो रहे थे। वे सोच रहे थे कि उनके मर्तबान का ज्यों ही ढक्कन उठता है, तो मर्तबान में पड़ा जन्तु फौरन उछल कर बाहर आ जाता है परन्तु इसके मर्तबान पर तो ढक्कन भी नहीं है। फिर भी इसके केकड़े बाहर क्यों नहीं आ रहे। वे आपस में खुसर-पुसर करने लगे और कहने लगे कि ये केकड़े जरुर कमजोर होंगे तभी तो ढक्कन खुला होने पर भी ये बाहर नहीं आ रहे। आखिर उन में से एक बच्चे ने उस बच्चे से पूछ ही लिया-'' क्या तुम्हारे ये केकड़े कमजोर हैं जो मर्तबान पर ढक्कन न लगा होने पर भी ये उससे बाहर नहीं आ पाते?'' उसने जवाब दिया- '' अरे नहीं, ये तो बहुत बलवान है। परन्तु इनके बाहर न आ पाने का भी एक राज है।''

''वह क्या राज है?- सभी बच्चे एक आवाज में बोल उठे। उसने कहा-'' बात यह है कि ये दोनों केकड़े एक-दूसरे से बढ़कर ताकतवर है। परन्तु जब एक बाहर निकलने के लिए उछलता है तो दूसरा केकड़ा उसकी टाँग खींच लेता है और जब दूसरा केकड़ा छलाँग लगाता है तो पहला उसकी टाँग खींच लेता है। और इस प्रकार दोनों ही एक-दूसरे की टाँग खींचते रहते हैं और दोनों में से कोई भी बाहर नहीं आ पाता।''

इस राज को सुनकर सभी खिलखिला कर हंस पड़े। ठीक ऐसी ही हालत आज के संसार की है। इस संसार में कई मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें आगे बढ़ने का मौका ही नहीं मिलता मानो कि उनका ढक्कन बन्द है। अगर उन्हें मौका मिले तो वे बहुत जल्दी ही उन्नति प्राप्त कर सकते हैं परन्तु चाहे कोई भी

वजह हो, उन्हें मौका नहीं मिलता है, वे उसके लिए प्रयास भी करते हैं परन्तु कुछ अन्य ईर्ष्यालु व्यक्ति उनकी टाँग खींच लेते हैं अर्थात् उनके प्रयास में वे कोई-न-कोई विघ्न डाल देते हैं। इससे न वे खुद आगे बढ़ पाते हैं न औरों को ही बढ़ने देते हैं।

प्यक्ति की पहचान, बोल

एक बार एक जंगल में राजा, मंत्री तथा दरबान रास्ता भूल गये। तीनों ही एक दूसरे से बिछड़ गये। तीनों ही एक दूसरे से बिछड़ गये थे। एक पेड़ के नीचे एक फकीर को बैठा देख कर (जो कि अन्धा था) राजा ने फकीर से पूछा हे प्रज्ञाचक्षु क्या यह रास्ता नगर की तरफ जायेगा? हाँ राजन- यह रास्ता नगर की तरफ जायेगा। थोड़ी देर बाद मंत्री उसी जगह पर आया और फकीर से पूछा हे सूरदास क्या यह रास्ता नगर की ओर जायेगा। हाँ मंत्रीश्वर, थोड़ी देर पहले ही राजा भी यहाँ से ही निकले हैं। थोड़े समय बाद दरबान वहाँ से आया और रोब से पूछा अबे ओ अन्धे, क्या यहाँ से कोई आगे गया है? हाँ दरबान जी, राजा जी तथा मंत्री जी इसी रास्ते से आगे गये हैं। थोड़ी देर पश्चात् राजा, मंत्री तथा दरबान तीनों इकट्ठे मिले। हरेक ने उस अन्धे फकीर के साथ हुई बात के बारे में एक-दूसरे को बताया। बिना आँखों के उसने कैसे पहचान लिया कि कौन राजा, कौन मंत्री तथा कौन दरबान? तब तीनों मिलकर फकीर के पास गये और अपना प्रश्न पूछा। तब फकीर ने कहा आप तीनों की वाणी तथा शब्दों से मैंने पहचान लिया कि कौन कौन है? 'प्रज्ञाचक्षु' जैसा कर्ण मधुर शब्द राजा के मुख पर ही हो सकता है। सूरदास' इतना मधुर नहीं तो इतना कठोर भी नहीं इसलिए मंत्री हो सकता है और अन्धे के सम्बोधन से तथा रोब से दरबान जी भी तुरन्त पहचाने गये।

नाक, कान, हाथ-पाँव पर से मनुष्य जितनी जल्दी नहीं पहचाना जा सकता लेकिन भाषा व्यक्ति की परख देती है। इसीलिए किसी ने कहा है-

''वाणी ऐसी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरों को शीतल कर, आपे ही शीतल होय।।''

युक्ति से मुक्ति

एक बार पागलखाने में एक पागल किसी तरह अपने कमरे से बाहर निकल गया और तीसरी मंजिल के कमरों के बाहर छत का जो हिस्सा थोड़ा बाहर निकला था, उस छज्जे पर जा खड़ा हुआ। अचानक हस्पताल के वार्डन ने जब देखा कि वह पागल अपने कमरे में नहीं है तो उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते

उसका ध्यान तीसरी मंजिल के बाहर की छज्जे पर गया। उसने सोचा कि अगर यह रोगी वहाँ से छलाँग लगा देगा या पागलपन में इस पर बेपरवाही से घूमेगा तो यह मर जायेगा। इसलिये कुछ अधिक सोचे बिना वह भागा और स्वयं भी वहाँ छज्जे पर पर जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने पागल से कहा- ''सुनाओ भाई, क्या हालचाल है? यहाँ क्या कर रहे हो?'' पागल बड़ी मस्ती से बोला-''सोच रहा था कि जैसे पंक्षी पंख फैला कर उड़ते हुए नीचे उतरता है, मैं भी आज पक्षी की तरह फर्श पर उतरुँ।'' ऐसा कहते हुए पागल ने मुँह को भी नीचे की ओर झुकाया और अपनी दोनों भुजाओं तथा हथेलियों को पीठ के पीछे ले जाकर पंख की तरह रुप दिया।

वार्डन डर गया और चौंका। उसने पागल को एक हाथ से तो थपथपाया और दूसरे हाथ से उसके हाथ को पकड़ लिया ताकि वह कहीं नीचे छलाँग न लगा दे। परन्तु उसने देखा कि पागल में बल बहुत है और वह उसे पकड़ कर रोक नहीं सकेगा। उसे यह भी डर था कि अगर वह पागल को जबरदस्ती रोकेगा तो पागल कहीं उसे ही नीचे धक्का न दे दे। परन्तु मिनटों में ही कुछ हो जाने वाला था, इसलिये जल्दी ही कुछ करना था।

अचानक वार्डन को एक 'युक्ति' सूझी। उसने मुस्कराते हुए और दोस्ताना तरीके से पागल को कहा-''वाह भाई वाह, आप जो करना चाहते हो वह कोई बड़ी बात तो है नहीं। आप तो कोई बड़ा काम करके दिखाओ। और, मुझे विश्वास है कि आप विशेष काम कर सकते है!

पागल ने कहा-''अच्छा, सुनाओ दोस्त, अगर यह बड़ा काम नहीं है तो और क्या चाहते हो? वार्डन ने कहा-''नीचे चलकर, फर्श से अर्श की ओर एक पक्षी की तरह उड़ कर दिखाओ। पंख तो आपको लगे हुए ही हैं। चलो आओ, हम दोनों एक-साथ नीचे से ऊपर की ओर उड़ेंगे।'' यह कहते हुए वह पागल की अंगुली प्यार से पकड़ते हुए उसे कमरे के रास्ते से नीचे ले चला। इस प्रकार उसने पागल की भी जान बचाई और अपना कर्तव्य भी निभाया। अगर वह पागल से जोर-जबरदस्ती या हाथापाई करता तो दोनों ही धड़ाम से धराशायी होते। तो सच है कि युक्ति से ही दोनों की(मौत के मुँह से) मुक्ति हुई।

प्रभु स्नेह! सर्व दु:खों से छुटकारा

शंकराचार्य घर-बार छोड़ कर धर्म का प्रचार करना चाहते थे। परन्तु उनकी माँ उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती थी। शंकराचार्य ने आखिर एक युक्ति सोची। वह एक बार अपनी माँ के साथ नहाने नदी पर गये। कपड़े किनारे पर रखकर शंकराचार्य ने माँ को किनारे पर बैठने को कहा। अचानक ही नहाते-नहाते शंकराचार्य जोर-जोर से चिल्लाने लगे। ''माँ-माँ ..माँ , ओ मैं मरा! मगरमच्छ ने मेरा पाँव पकड़ लिया! रे कोई बचाओ..बचाओ..।'' माँ घबरा गयी और हाय-हल्ला

करने लगी। शंकराचार्य ने कहा-''माँ, एक भगवान ही बचा सकते हैं वरना आज मैं मरा, हाय मरा, अरे मगरमच्छ, माँ मैं मरा.. कह दो मैंने अपना बच्चा भगवान को दिया। जल्दी कह दो माँ, एक सर्वशक्तिवान भगवान ही गज को ग्राह से बचाने की भाँति मुझे बचा सकते हैं..हाय.. मरा, जल्दी करो माँ..! जल्दी के कारण माँ ने कुछ सोचा नहीं गया। उसे तो बच्चे का जीवन प्यारा था। उसने तुरन्त कह दिया-''मैंने यह बच्चा भगवान को दिया''। फिर वह कहने लगी-''बचाओ भगवान बचाओ! अब यह आप की ही शरण में है, यह आप ही का बच्चा है!

शंकराचार्य तट की ओर बढ़ने लगे। माँ ने सोचा कि शायद मगरमच्छ ढीला छोड़ता जा रहा है। उसकी आशा बँध गयी। वह फिर दोहराने लगी-''बचाओ भगवन्! हे प्रभु बचाओ, यह आप का ही बच्चा है, इसे मैंने आपकी शरण में सौंपा है।'' इस तरह शंकराचार्य तट पर आ पहुँचे और बोले-''माँ, तूने अच्छा किया, मुझे भगवान् के हवाले कर दिया, वर्ना तो आज बचने की कोई आशा नहीं थी। तूने बचा लिया मुझे, माँ....।'' माँ बोली- ''मैंने नहीं, भगवान ने तुझे बचाया हैं शंकर, इस बात को कभी मत भूलना।'' शंकराचार्य बोले-''ठीक कहती हो माँ! तो अब से मेरा यह जीवन भगवान के ही हवाले है तुमने तो उसे सौंप दिया था ना, माँ? उसी ने बचाया है न मुझे? माँ ने अब समझा कि शंकराचार्य किस अर्थ में उसे यह कह रहा है। धार्मिक स्वभाव की एवं श्रद्धालु माता होने के कारण उसने कह दिया-''हाँ, हो तो तुम भगवान् के ही। परन्तु क्या मुझे छोड़ जाओगे? तब शंकराचार्य ने कहा-''माँ, मैं छोड़ने की भावना से नहीं जा रहा, धर्म का प्रचार करने जा रहा हूँ, जिस भगवान् ने मुझे बचाया है, नया जीवन दिया है, उसकी महिमा करने जा रहा हूँ।''

सम्बन्धों से स्नेह होता है।

एक नव-विवाहित वर और वधू गाड़ी में यात्रा कर रहे थे। रास्ते में उनके साथ उनके पिताजी को भी शामिल होकर आगे की यात्रा करनी थी। जब गाड़ी उस स्टेशन पर आई तो वर का पिता भी वहाँ प्लेटफार्म पर आया हुआ था। गाड़ी रुकते ही वर तो सुराही लेकर पानी भरने चला गया। उसका पिता उस डिब्बे को ढूंढ़ रहा था जहाँ उसका बेटा और उसकी बहू बैठे थे। उसे बेटा तो दिखाई दिया नहीं तथा गाड़ी चलने का समय भी नजदीक आता जा रहा था, इसलिये उसने एक डिब्बे में घुसपैठ करने की कोशिश की। परन्तु अपने ससुर को पहचानती नहीं थी। बूढ़ा भी बहू को नहीं पहचानता था क्योंकि बहू उसकी उपस्थिति में घूँघट करती थी। पहचान न होने के कारण बहू ने उस वृद्ध व्यक्ति को अन्दर प्रवेश नहीं करने दिया। डिब्बे के भीतर से दरवाजे की चिटखनी बन्द करते हुए वह कड़क कर बोली-'' यह बूढ़ा घुसता चला आ रहा है, इसे दीखता नहीं है कि यहाँ पहले ही जगह नहीं हैं जा दूसरे

डिब्बे में कहीं घुस जा।'' बूढ़ा भी उस नारी के कटु शब्द सुनकर अशान्त हुआ। वह बोला-''मालूम नहीं, यह किस मूर्ख की बहू है, यह तो बोलना ही नहीं जानती।'' इस प्रकार कहासुनी हो रही थी कि इतने में बेटा (वर) पानी की सुराही भर कर आ पहुँचा। अपने पिता को देख कर वह उनके सामने झुका और उसने नमस्कार किया और झगड़ा देखकर दु:खी भी हुआ और शर्मिन्दा भी। उसने अपनी पत्नी से कहा–जानती नहीं हो यह मेरे पिताजी, अर्थात् तुम्हारे ससुर साहब है..। ओहो, तुमने इन्हें बैठने के लिए न कर दी! यह तो बहुत पाप कर दिया है..तब बेटे ने पिता से क्षमा माँगी और उस बहू ने भी पश्चाताप् प्रगट किया। वृद्ध महोदय भीतर बैठ गये, अब उनके लिये जगह भी बन गयी थी। वह झगड़ा भी निपट गया तथा अब शान्ति, सम्मान और प्रेम की बातें होने लगी क्योंकि अब सम्बन्धों का ज्ञान हो गया था।

अभिमान का अस्त

एक बार की बात है कि एक छोटे-से मच्छर का शेर से सामना हो गया। शेर गुर्राने लगा। वह मच्छर पर झपटने लगा। परन्तु मच्छर घबराया नहीं। वह शेर को चुनौती देकर बोला-'' भले ही तुम शेर हो परन्तु मैं ''सवा सेर '' हूँ। मैं तुम्हें ऐसा पाठ पढ़ाऊँगा कि सदा याद करोगे। मैं हूँ तो छोटा-सा पर तुम्हें तुम्हारी नानी याद दिला दूँगा। मैं वह कमाल करके दिखाऊँगा कि तुम सोचते ही रह जाओगे।

यह सुनकर शेर को बहुत गुस्सा आ गया। वह मच्छर पर बार-बार झपटता परन्तु मच्छर सदा उड़ कर उसकी पीठ की ओर हो जाता और बार-बार शेर पर आक्रमण करता। वह शेर को काटता-जिससे शेर को बड़ी बेचैनी होती। शेर उछल पड़ता और मच्छर को आघात पहुँचाने का यत्न करता परन्तु मच्छर उसकी पकड़ में ही न आता। वह कभी उसके मुँह पर बैठ कर काटता तो शेर मच्छर को मारने के लिए अपना पंजा अपने मुँह पर मारता। परन्तु मच्छर उड़ जाता और शेर का पंजा लगने के कारण शेर का अपना मुँह ही लहू-लुहान हो जाता। इस प्रकार शेर और मच्छर की लड़ाई में मच्छर ने शेर को कुछ मिनटों में परास्त कर दिया। शेर थक कर और जख्मी होकर एक ओर पड़ा रहा।

अब इस मच्छर को बहुत अभिमान आ गया कि ''मैं ही शेर-ए-हिन्द'' हूँ। शेर को अपने प्रहार से ढेर कर देने वाला मैं '' रुस्तम-ए-जहाँ'' हूँ। वह इधर-उधर ऐसे उड़ने लगा कि जैसे वही विश्व का राष्ट्रपति हो। परन्तु कहा गया है कि अभिमान को आखिर उसका अभिमान अस्त कर देता है। मचल-मचल कर उड़ता हुआ आ रहा मच्छर बिना देखे समझे मकड़ी के जाल में घुस गया। ऐसा घुसा कि अब उसका निकलना ही उसके लिए सम्भव न रहा। वह जाले के जाल में ही पकड़ा गया अथवा उलझ गया। उसे वहाँ पतले-पतले धागों की कैद में बन्दी बना देख मकड़ी वहाँ आई और उसने मच्छर

को दबोच लिया। बस, फिर क्या था कि मकड़ी ने उसको काल का ग्रास बना लिया। जो मच्छर शेर के सामने गुर्राता फिरता था उसे मकड़ी साबुत ही निगल गयी। उस दिन से यह कहावत चली आती है कि ‘‘शेर से तो बाजी जीत ली परन्तु मकड़ी से मारा गया।‘‘

सेवा का फल- मेवा

एक बार एक महात्मा जी निर्जन वन में भगवद्‌चिंतन के लिए जा रहे थे। तो उन्हें एक व्यक्ति ने रोक लिया। वह व्यक्ति अत्यन्त गरीब था। बड़ी मुश्किल से दो वक्त की रोटी जुटा पाता था। उस व्यक्ति ने महात्मा से कहा-‘‘महात्मा जी, आप परमात्मा को जानते हैं, उनसे बातें करते हैं। अब यदि परमात्मा से मिलें तो उनसे कहियेगा कि मुझे सारी उम्र में जितनी दौलत मिलनी है, कृपया वह एक साथ ही मिल जाये ताकि कुछ दिन तो चैन से जी सकूँ। महात्मा ने उसे समझाया- मैं तुम्हारी दु:ख भरी कहानी परमात्मा को सुनाऊँगा लेकिन तुम जरा खुद भी सोचो, यदि भाग्य की सारी दौलत एक साथ मिल जाएगी तो आगे की जिन्दगी कैसे गुजारोगे?‘ किन्तु वह व्यक्ति अपनी बात पर अडिग रहा। महात्मा उस व्यक्ति को आशान्वित कर आगे बढ़ा।

इन्हीं दिनों में उसे ईश्वरीय ज्ञान मिल चुका था। महात्मा जी ने उस व्यक्ति के लिए अर्जी डाली। परमात्मा की कृपा से कुछ दिनों बाद उस व्यक्ति को काफी धन-दौलत मिल गई। जब धन-दौलत मिल गई तो उसने सोचा-‘‘मैंने अब तक गरीबी के दिन काटे हैं, ईश्वरीय सेवा कुछ भी नहीं कर पाया। अब मुझे भाग्य की सारी दौलत एक साथ मिली है। क्यों न इसे ईश्वरीय सेवा में लगाऊँ क्योंकि इसके बाद मुझे दौलत मिलने वाली नहीं।‘‘ ऐसा सोचकर उसने लगभग सारी दौलत ईश्वरीय सेवा में लगा दी।

समय गुजरता गया। लगभग दो वर्ष पश्चात् महात्मा जी उधर से गुजरे तो उन्हें उस व्यक्ति की याद हो आयी। महात्मा जी सोचने लगे-‘‘वह व्यक्ति जरुर आर्थिक तंगी में होगा क्योंकि उसने सारी दौलत एक साथ पायी थी। और कुछ भी उसे प्राप्त होगा नहीं।‘‘ यह सोचते-सोचते महात्मा जी उसके घर के सामने पहुँचे। लेकिन यह क्या! झोपड़ी की जगह महल खड़ा था! जैसे ही उस व्यक्ति की नजर महात्मा जी पर पड़ी, महात्मा जी उसका वैभव देखकर आश्चर्यचकित हो गये। भाग्य की सारी दौलत कैसे बढ़ गई? वह व्यक्ति नम्रता से बोला, ‘‘महात्माजी, मुझे जो दौलत मिली थी, वह मैंने चन्द दिनों में ही ईश्वरीय सेवा में लगा दी थी। उसके बाद दौलत कहाँ से आई- मैं नहीं जानता। इसका जवाब तो परमात्मा ही दे सकता है‘‘

महात्मा जी वहाँ से चले आये। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर ध्यान मग्न हुए। उन्होंने परमात्मा से पूछा- यह सब कैसे हुआ? महात्मा जी को आवाज सुनाई दी: –

'किसी की चोर ले जाये, किसी की आग जलाये
धन उसी का सफल हो जो ईश्वर अर्थ लगाये।''

सत्यता की जीत

एक बार एक काफिला कहीं जा रहा था। उस काफिले में एक बालक था जिसका नाम था- विवेक। चलते-चलते रास्ते में उस काफिले को लुटेरों ने घेर लिया। लुटेरे सबकी तलाशी ले रहे थे- छीन रहे थे- लूट रहे थे। एक डाकू ने विवेक से पूछा-''तेरे पास तो कुछ नहीं हैं रे..?'' '' क्यों नहीं है? मेरे पास चालिस मुहरें हैं।''-लड़के ने कहा। '' कहाँ है?'' '' मेरी सदरी में'' ''किधर?'' ''अन्दर सिल रखी है मेरी माँ ने।''

दूसरा डाकू पास आ गया। दोनों को उसने यही बात, इसी प्रकार बतायी। डाकुओं का सरदार भी उनके पास आ गया। लड़के ने तब भी यही कहा। सरदार ने अपने साथियों को आदेश दिया कि बालक की सदरी फाड़कर मुहरें निकाल कर देखें यह सच बोलता है झूठ।

सदरी फाड़ दी गई। चालिस मुहरें निकलीं। डाकू सरदार आश्चर्य से बालक का मुँह देखने लगा। उसने बालक से पूछा- तुमने हमें क्यों बताया था कि तुम्हारे पास चालिस मुहरें है! झूठ बोलकर उन्हें बचा भी सकते थे।

जी नहीं-बालक ने कहा- ''मेरी माँ ने चलते समय कहा था कि मैं किसी भी परिस्थिति में झूठ नहीं बोलूँ। मैं अपनी माँ की आज्ञा को नहीं टाल सकता।'' डाकू सरदार बालक का मुख देखता रहा गया। वह लज्जित हो गया। उसने कहा- सचमुच तुम बड़े महान हो बालक! अपनी माँ की आज्ञा का तुम्हें इतना ध्यान है जबकि मैं तो खुदा के हुक्म को भी भुला बैठा हूँ, तुमने मेरी आँखें दी हैं। और उस बालक ने उस डाकू की आँखें खोल दी। उसी दिन से उसने डाके और लूट छोड़ दी और एक अच्छा आदमी बन गया। उसने बालक से ही प्रेरणा ग्रहण की। यह सत्य का प्रभाव था। सत्य की शक्ति थी। सत्य का तेज था।

स्मृति विजय का और
विस्मृति हार का प्रतीक है

एक राजा था उसने अपने राज्य में ऐलान किया कि एक बहुत बड़ा पत्थर है और जो उस पत्थर को एक हथोड़े की चोट से तोड़ेगा उसी को मैं अपना आधा राज्य दे दूँगा। अनेक साहसी पुरुष आये, वीर बलवान पुरुष आये। बहुत कोशिश की एक धक से तोड़ने की लेकिन वह पत्थर नहीं टूटा। अब राजा ने सोचा शायद इसे कोई भी नहीं तोड़ सकेगा। इनमें ही एक दुबला-पतला सा व्यक्ति आया उसे विश्वास था कि मैं यह पत्थर तोड़ सकूँगा। राजा ने जब उसे देखा तो सोचा ये क्या पत्थर तोड़ेगा, इसके पास तो ताकत ही नहीं है। लेकिन उस व्यकित ने एक शर्त रखी कि यह पत्थर मैं तोडूँगा पर तोड़ते समय मेरे कान में कोई कुछ कहेगा। शर्त तो इतनी ही थी कि पत्थर को उसे एक धक से तोड़ना है। राजा ने उसकी शर्त मान ली और जैसे ही उसने हथौड़ा उठाया, उस समय एक व्यक्ति ने उसके कान में कुछ कहा और उस व्यक्ति में शक्ति आ गई और देखते ही देखते इतना साहस आ गया कि उसने एक चोट से ही पत्थर तोड़ दिया। तब राजा ने उस व्यक्ति से पूछा कि आपको दूसरे व्यक्ति ने कान में क्या कहा? क्या कोई मंत्र दिया? तब पत्थर तोड़ने वाले व्यक्ति ने बताया, कि मुझे इतना ही कहा गया देखो तुम राजपूत हो, राजपूत कभी हार नहीं खाते। तुम्हारे पूर्वजों ने कभी हार नहीं खाई। तुम विजयी हो और तुम्हे इस बार भी विजय प्राप्त करनी ही है। तुम हार नहीं खा सकते हो। केवल यही स्मृति मुझे दिलाई। इस स्मृति से मेरे अन्दर साहस आ गया। मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि मुझे जीतना ही है फलस्वरुप मैंने एक ही चोट से यह पत्थर तोड़ दिया। अगर कोई व्यक्ति केवल शारीरिक बल से ही मजबूत है, परन्तु उसमें आध्यात्मिक साहस या नैतिक बल नहीं है, तो और अनुकूल परिस्थितियाँ भी प्रतिकूल बन जाती है। जिसमें केवल शारीरिक बल है और नैतिक साहस नहीं है, उसमें कभी-कभी अभिमान का अंश भी आ जाता है।

राजऋषि

एक फकीर, घने जंगल में तपस्या कर रहा था। राजा उससे बड़ा प्रभावित हुआ और उससे महल में चलकर सुखपूर्वक रहने का आग्रह किया। पहले तो फकीर ने मना किया परन्तु जब राजा ने बहुत आग्रह किया तो फकीर साथ हो लिया। राजा ने अपने महल के एक सुन्दर कमरे को उसका निवास बना दिया। लगभग 7 मास गुजरने पर एक दिन राजा को ख्याल आया कि सन्यासी तो जंगल को याद ही नहीं करता, शायद महल के भोगों में रम गया है। ऐसा सोचकर राजा ने सन्यासी से मुलाकात की और प्रश्न पूछा-महाराज, राजा और सन्यासी में क्या अन्तर होता है? सन्यासी ने अपना कमण्डल राजा के हाथ में दिया और कहा-मेरे पीछे-पीछे आओगे तो प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा।

राजा पीछे-पीछे चला पर थोड़ी दूर जाने के बाद बोला- मेरे प्रश्न का उत्तर तो मिला नहीं। सन्यासी ने कहा-थोड़ी दूर और चलो, ऐसे कहते-कहते वह राजा को शहर से काफी दूर ले आया। राजा के धैर्य का बाँध टूट गया। कमण्डल सन्यासी को देकर बोला-अब मैं तो वापस चला। सन्यासी ने कहा- राजन, राजा और सन्यासी में यही अन्तर है। सन्यासी को न महलों से राग होता है, न कुटिया से नफरत होती है। हम जंगल में रहें या महल में, सबको साधना के अनुकूल बना लेते हैं। जंगल में भी साधना साथ थी, पर जंगल को एक धक से छोड़ दिया और महल में भी साधना साथ थी, महल को भी एक धक से छोड़ दिया। राजा को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया और फकीर हरे-भरे जंगल में विलीन हो गया।

अहंकार रहित व्यक्ति ही महान होता है

महाभारत का एक अनूठा प्रसंग है। अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा ''भगवान, मैं ही आपका सबसे बड़ा सेवक, भक्त और दानी हूँ।'' श्री कृष्ण को आभास हो गया कि अर्जुन को इन गुणों का अहंकार हो गया है। यह प्रसंग उस समय का है जब महाभारत का अन्तिम दौर था। कौरव सेना धराशायी हो गई थी। युद्ध भूमि में कुछ योद्धा अन्तिम सांस लेने के लिए छटपटा रहे थे। श्री कृष्ण और अर्जुन ने साधु का वेश बनाया। घायल अवस्था में पड़े कर्ण के पास गए और उससे कहा- ''हे कर्ण! हम तुम्हारे पास कुछ दान लेने के लिए आए हैं।'' कर्ण ने कहा ''महाराज, मैं तो इस समय आपको कुछ नहीं दे सकता। मैं तो यहाँ युद्ध भूमि में अन्तिम सांस ले रहा हूँ।'' ''अच्छा बच्चा, क्या साधु तुम्हारे द्वार से खाली जाएगा।

कर्ण ने कुछ विचार कर कहा-''महाराज मेरे पास एक सोने का दाँत है, मैं उसे तोड़ कर आपको समर्पित करता हूँ। ''जब दाँत तोड़ कर साधु की तरफ बढ़ाया तो वह रक्त-रंजित था जिसे देखकर साधु ने कहा-''छिःछिः हम ऐसा दान नहीं लेते। साधु किसी का खून नहीं करता''। दानवीर कर्ण ने अपना आखरी तीर छोड़ा और वह बाण दनदनाता हुआ मेघाच्छादित आसमान को चीरता चला गया। पानी की धार बह निकली। दाँत को धो दिया और साधु ने उसे स्वीकार कर लिया। अर्जुन का अहंकार दूर हो गया और श्री कृष्ण से क्षमा माँगी। इस प्रसंग से हमें अपने कई गुणों की कमी को दूर करने की प्रेरणा मिलती है।

''न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी''

शंकर और पार्वती साधु का वेश धारण कर एक लोटा दूध माँगने निकले। एक बहुत बड़े डेरी वाले के पास गए जिसकी सैकड़ों की तादाद में भैंसें थीं। उसने दूध माँगने पर टका सा जवाब दिया '' अरे मोट्टे, जा तेरे जैसे निठल्ले को एक लोटा दूध देने लगा तो मेरी डेरी तो चल ली।''

साधु ने आर्शीवाद दिया कि बाबा तुझे और ज्यादा भैंसों का मालिक बनाए। इसके पश्चात् शंकर एक साधु की कुटिया में गए और कहा '' साधु महाराज एक लोटा दूध का सवाल है।'' भगवान की याद में तल्लीन साधु उठा और ताजा दूध निकाल कर प्रेमपूर्वक सारा दूध साधू को दे दिया। शंकर भोले ने एक कदम आगे बढ़ते हुए कहा-'' बाबा करे तेरी एक गाय मर जाए।''

पार्वती ने पूछा ''महाराज आप का यह कैसा वरदान और अभिशाप है। '' हे पार्वती, उस डेरी वाले को तो बाबा की याद आती ही नहीं और कभी-कभी कुछ क्षण मिलते भी होंगे तो अब उसे बाबा का नाम लेने का अवसर ही नहीं मिलेगा। और साधु जब बाबा की याद में बैठता है तो उसे बीच-बीच में गाय के दूध, चारे या गाय के बच्चे की याद आती है। जब गाय नहीं रहेगी तो वह निरन्तर याद में मस्त रहेगा। इसे कहतें है, '' न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।''

नीयत का प्रभाव

एक राजा अपने मन्त्री के साथ शिकार पर निकला। शिकारी की खोज में वे दोनों जंगल में आगे की ओर बढ़ते जा रहे थे। इतने में राजा को एक शिकार दिखाई पड़ा। और उस शिकार के पीछे भागते-भागते राजा बहुत आगे निकल गया और मन्त्री का घोड़ा थोड़ा बिदक जाने के कारण पीछे रह गया। मन्त्री को सख्त प्यास लगी थी। प्यास बुझाने के लिये वह इधर-उधर देखने लगा कि कहीं से उसकी प्यास बुझ सके। थोड़ी ही देर के पश्चात् उसे एक कुटिया दिखाई पड़ी। वह कुटिया एक किसान की थी। जिसने कि अपने आस-पास की जमीन पर खेत की हुई थी, जहाँ बहुत ही सुन्दर भरपूर हरियाली वाले वृक्ष लगे हुए थे और उन वृक्षों पर बहुत ही सुन्दर दिखने वाले पौष्टिक और रसीले फल लगे हुए थे, जिसको देखते ही खाने का मन हो आता था। मन्त्री जी अपनी प्यास बुझाने के लिए उस कुटिया के दरवाजे पर पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही उन्होंने दस्तक दी, जिसे सुनकर उस कुटिया का मालिक वह किसान बाहर आया और आगन्तुक की तरफ देखते हुए बोला कहो महाराज, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? मन्त्री जी ने कहा अभी तो मुझे केवल बहुत जोर से प्यास लगी है, अगर आप जल पिला दें तो बड़ी राहत मिलेगी। वह किसान अपने बाग में गया और वहाँ से रस निकला कर बड़े ही आदर भाव उसने आगन्तुक को वह फलों का स्वादिष्ट रस भेंट किया। मन्त्री बहुत

ही प्रसन्न हुए क्योंकि एक तरफ तो उनकी प्यास बुझी दूसरी तरफ, रसीले तथा पौष्टिक पदार्थ भी खाने को मिले।

परन्तु, क्योंकि वह मन्त्री थोड़ा लोभवृत्ति वाला व्यक्ति था इसलिए उसकी वृत्ति में उन फलों को देख लोभ भर गया। उसने किसान को धन्यवाद किया और वहाँ से चल पड़ा। मन्त्री का यह स्वभाव था कि वह सदा पैसा इकट्ठा करने की उधेड़बुन में लगा रहता था। ताकि राजा खजाना भरपूर देख कर उसे बहुत महत्व दे। इसलिए उसे रास्ते में विचार आया कि यह फल तो बहुत अच्छे थे। बहुत रसीले, मीठे, पौष्टिक थे। स्वादिष्ट भी बहुत थे। उसने सोचा इस देश की धरती की पैदावार तो बहुत अच्छी है, इसलिए यहाँ की धरती पर काफी 'कर' लगाना चाहिए।

जब मन्त्री वापस महल में पहुँचा और राजा की कुशलपूर्वक पहुँच के बारे में समाचार लेने के लिए उनसे मिला तो उसने सारा किस्सा राजा को कह सुनाया कि रास्ते में वह एक किसान की कुटिया में पानी पीने के लिए रूका था, किसान ने पानी की बजाए जो फलों का रस पिलाया था, उनकी महिमा करते हुए कि वह फल कितने पौष्टिक, कितनी अच्छी नस्ल के थे, ये बताते हुए उसने राजा से कहा कि महाराज, ये मैं इसलिए सुना रहा हूँ क्योंकि इसके विषय में मेरा एक सुझाव है, अगर हुजूर उसे पसन्द करें तो हुक्मनामा जारी कर दें।

राजा बोला! मन्त्री जी आपकी राय, सलाह और सुझाव सदा ही अच्छे होते है उनसे सरकार को सदा फायदा ही होता है। अवश्य ही अब भी कोई लाभकारी राय ही होगी। कहिये! क्या कहना चाहते है?

मन्त्री बोला, '' महाराज मेरा ऐसा विचार है कि जिस धरती से इतना स्वादिष्ट, रसीले, पौष्टिक, लुभावने फल उगते हैं तो जरुर किसान उनकी बिक्री से अच्छा आर्थिक लाभ लेता होगा। अत: मैं ऐसा समझता हूँ कि यहाँ की धरती पर 'कर' अथवा लगान की रकम बढ़ा देनी चाहिए।''

राजा बोला, ''मन्त्री जी, आपने जो बात कही है वो मुझे भी उचित लगती है और हमें पसन्द है, इसलिये दरबार का हुक्म है कि ऐसा ही किया जाये।'' राजा की स्वीकृति प्राप्त होते ही मन्त्री ने हुक्मनामा जारी कर दिया।

इस तरह से समय बीतता जा रहा था। कुछ वर्ष पश्चात् मन्त्री जी राजा के साथ फिर से उसी कुटिया के सामने आ रूके अपनी प्यास बुझाने के लिये। किसान ने आगन्तुकों को आते देख अपने स्वभाव के अनुसार उन दोनों का आतिथ्य किया। वह बाग में गया और एक छोटी-सी टोकरी में फल भर कर ले आया और उन फलों से रस निकालने लगा परन्तु इस बार इतने सारे फलों से थोड़ा ही रस निकला। वह रस भी न तो पीने में स्वादिष्ट था और न ही पौष्टिक। मन्त्री जी को फलों के रस से इस बार आनन्द नहीं आया। मन्त्री जी देख रहे थे कि फल सूखे-सूखे से हैं, और न ही स्वादिष्ट थे।

आखिर मन्त्री जी से न रहा गया। उन्होंने उस किसान से पूछ ही लिया। मन्त्री जी ने कहा, ''जमींदार जी शायद आपको याद नहीं, पिछली बार जब मैं आया था तब भी आपने मुझे रस पिलाया था परन्तु उन फलों के रस में और इन फलों के रस में तो रात-दिन का अन्तर हैं। समझ में नहीं आया वही खेत, वही बीज हैं, उनका संरक्षण करने वाले आप भी वही हैं, फिर इनमें इतना अन्तर क्यों पड़ गया?''

किसान ने दोनों की तरफ देखा और कहा, '' महाराज, मुझे आपका परिचय नहीं है कि वास्तव में आप कौन हैं? इसलिये सच्ची बात बनाने में मुझे कुछ संकोच हो रहा है।'' मन्त्री बोला, ''जमींदार जी, इसमें संकोच करने की बात नहीं है। आप नि:संकोच बताइये कि क्या बात हैं? किसान ने कहा सच बतलाऊँ महाराज, हमारे राजा की नीयत बदल गयी है जिसके कारण ही यह सब हुआ। अच्छी फसल, अच्छी पैदावार देख राजा ने जमीन का लगान बढ़ा दिया। उसकी इस लोभवृत्ति के परिणाम स्वरुप यह सब हुआ। राजा ने जब यह सुना तो उसके पैरों तले से जमीन निकल गयी। मन्त्री जी भी खिसियाई नजरों से राजा की तरफ देख रहे थे। दोनों की बुद्धि में वास्तविकता समझ में आ गयी थी।

ईमानदार बनो तो नौजवान की तरह

एक पेड़ पर चातक पक्षी अपने पिता के साथ रहते थे। एकदिन चातक पुत्र को प्यास लगी उसने पिता के सामने कहीं से भी पानी पी लेने की जिद्द की। पिता ने उसे बहुत समझाया परन्तु पुत्र जिद्द पर अड़ा रहा। आखिरकार पिता ने उसे सागर का जल पी लेने की छुट्टी दे दी। चातक ने हिन्द महासागर की ओर उड़ान भरी। रात्रि हुई तो रास्ते में एक घर के आँगन में नीम के पेड़ पर विश्राम करने लगा। कुछ देर बाद एक नौजवान ने लगभग 11.30 बजे उस घर में प्रवेश किया। पेड़ के नीचे लेटे वृद्ध पिता की देरी से आने का कारण बताते हुए उसने कहा कि रास्ते में पैसों से भरा एक बटुआ मुझे मिला जिसे बैलगाड़ी में बैठे एक सज्जन तक पहुँचाने में चार घण्टे दौड़ना पड़ा। घटना सुनकर वृद्ध की आँखों से आँसू बहने लगे उसने पुत्र की पीठ थपथपाते हुए रूँधे गले से कहा-शाबास बेटा, आज तूने मेरा सिर उँचा कर दिया, चाहे जान चली जाये पर तुम अपनी ईमानदारी कभी भी मत छोड़ना जैसेकि चातक पक्षी मेघ के जल के अलावा कोई बूँद गले में नहीं उतारता। इसके बाद दोनों ने प्यार से भोजन किया और आँगन में ही सो गये। सारी घटना को साक्षी हो सुनने वाले चातक-पुत्र की आँखों की नींद उड़ गयी। उसके कानों में बार-बार वृद्ध के शब्द गूँज रहे थे-जैसे कि चातक पक्षी मेघ के जल के........।' सुबह हुई और चातक-पुत्र उड़ चला, समुद्र की ओर नहीं वरन् अपने पिता के कोटर की ओर। जब उनके पिता ने अपने पुत्र से पूछा तो उसने सारी घटना सुना दी। इस प्रकार हम सभी को भी उस नौजवान और चातक पक्षी की तरह बनकर रहना है।

मृत्यु से मित्रता

एक चतुर व्यक्ति को काल से बहुत डर लगता था। एक दिन उसे चतुराई सूझी और काल को अपना मित्र बना लिया। उससे कहा- मित्र , तुम किसी को भी नहीं छोड़ते हो, किसी दिन मुझे भी गाल में धर लोगे। काल ने कहा- सृष्टि नाटक का यह शाश्वत नियम हैं इसलिए मैं मजबूर हूँ। आप मेरे मित्र हैं मैं आपकी जितनी सेवा कर सकता हूँ करूँगा ही, आप मुझसे क्या आशा रखते है बताइये। चतुर व्यक्ति ने कहा- मैं इतना ही चाहता हूँ कि आप मुझे लेने पधारने के कुछ दिन पहले एक पत्र अवश्य लिख देना ताकि मैं बाल-बच्चों को अपने कारोबार की सभी बातें अच्छी तरह से समझा दूँ और स्वयं भी भगवान के भजन में लग जाऊँ। काल ने प्रेम से कहा- यह कौन से बड़ी बात है मैं एक नहीं आपको चार पत्र भेज दूँगा। मनुष्य बड़ा प्रसन्न हुआ सोचने लगा कि आज से मेरे मन से काल का भय भी निकल गया, मै जाने से पूर्व अपने सभी कार्य पूर्ण करके जाऊँगा तो देवता भी मेरा स्वागत करेंगे।

दिन बीतते गये आखिर मृत्यु की घड़ी आ पहुँची। काल अपने दूतों सहित उस चतुर व्यक्ति के समीप आकर कहने लगा- आपके नाम का वारंट मेरे पास है मित्र चलिए, मैं सत्यता और दृढ़तापूर्वक अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करते हुए एक क्षण भी तुम्हें और यहाँ नहीं छोड़ूँगा। मनुष्य के माथे पर बल पड़ गये, भृकुटी तन गयी और कहने लगा धिक्कार है तुम्हारे जैसे मित्रों पर, मेरे साथ विश्वासघात करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुमने मुझे वचन दिया था कि लेने आने से पहले पत्र लिखूँगा। मुझे बड़ा दु:ख है कि तुम बिना किसी सूचना के अचानक दूतों सहित मेरे ऊपर चढ़ आए। मित्रता तो दूर रही तुमने अपने वचनों को भी नहीं निभाया।

काल हँसा और बोला- मित्र इतना झूठ तो न बोलो। मेरे सामने ही मुझे झूठा सिद्ध कर रहे हो। मैंने आपको एक नहीं चार पत्र भेजे। आपने एक का भी उत्तर नहीं दिया। मनुष्य ने चौंककर पूछा- कौन से पत्र? कोई प्रमाण है? मुझे पत्र प्राप्त होने की कोई डाक रसीद आपके पास है तो दिखाओ।

काल ने कहा- मित्र, घबराओ नहीं। मेरे चारों पत्र इस समय आपके पास मौजूद हैं। मेरा पहला पत्र आपके सिर पर चढ़कर बोला, आपके काल सुन्दर बालों को पकड़ कर उन्हें सफेद कर दिया और यह भी कि सावधान हो जाओ, जो करना है कर डालो। नाम , बड़ाई और धन-संग्रह के झंझटों को छोड़कर भजन में लग लाओ पर मेरे पत्र व्क्रा आपके ऊपर जरा भी असर नहीं हुआ। बनावटी रंग लगा कर आपने अपने बालों को फिर से काला कर लिया और पुन: जवान बनने के लिए सपनों में खो गए। आज तक मेरे श्वेत अक्षर आपके सिर पर लिखे हुए हैं। कुछ दिन बाद मैंने दूसरा पत्र आपके

नेत्रों पर प्रति भेजा। नेत्रों की ज्योति मंद होने लगी। फिर भी आँखों पर मोटे शीशे चढ़ा कर आप जगत को देखने का प्रयत्न करने लगे। दो मिनट भी संसार की ओर से आँखें बंद करके, ज्योति स्वरूप प्रभु का ध्यान, मन में नहीं किया। इतने पर भी सावधन नहीं हुए तो मुझे आपकी दीन-दशा पर बहुत तरस आया और मित्रता के नाते मैंने तीसरा पत्र भी भेजा। इस पत्र ने आपके दाँतों को छुआ, हिलाया और तोड़ दिया। उस संदेश का भी परवाह न करके आपने नकली दाँत लगवाये और जबरदस्ती संसार के भौतिक पदार्थो का स्वाद लेने लगे। मुझे बहुत दु:ख हुआ कि मैं सदा इसके भले की सोचता हूँ और यह हर बात एक नया, बनावटी रास्ता अपनाने को तैयार रहता है। अपने अन्तिम पत्र के रूप में मैंने रोग-क्लेश तथा पीड़ाओं को भेजा परन्तु आपने किसी की भी नहीं सुनी। मैंने अनेक विद्वानों द्वारा सन्मार्ग पर चलने का संदेश भेजा परन्तु आपने अहंकार वश सब अनसुना कर दिया।

जब मनुष्य ने काल के भेजे हुए पत्रों को समझा तो फूट-फूट कर रोने लगा और अपने विपरीत कर्मो पर पश्चाताप् करने लगा। उसने स्वीकार किया कि मैंने गफलत में शुभ चेतावनी भरे इन पत्रों को नहीं पढ़ा, मैं सदा यही सोचता रहा कि कल से भगवान का भजन करूँगा। अपनी कमाई अच्छे शुभ कार्यो में लगाऊँगा, पर वह कल नहीं आया। काल ने कहा- आज तक तुमने जो कुछ भी किया, राग-रंग, स्वार्थ और भोगों के लिए किया। जान बूझकर ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन जो करता है, वह अक्षम्य है। मनुष्य को जब बातों से काम बनते हुए नजर नहीं आया तो उसने काल को करोड़ो की सम्पत्ति का लोभ दिखाया।

काल ने हँसकर कहा-यह मेरे लिए धूल है। लोभ संसारी लोगों को वश में कर सकता है, मुझे नहीं। यदि तुम मुझे लुभाना ही चाहते थे तो सच्चाई और शुभ कर्मो का धन संग्रह करते। काल ने जब मनुष्य की एक भी बात नहीं सुनी तो वह हाय-हाय करके रोने लगा और सभी सम्बन्धियों को पुकारा परन्तु काल ने उसके प्राण पकड़ लिए और चल पड़ा अपने गन्तव्य की ओर।

भट्ठी

एक बहन ने सुनार से पूछा- ‘सोना शुद्ध कैसे बनता है?‘ सुनार ने कहा- ‘सोने की भट्ठी में डालना पड़ता है।‘ ‘भगवान भी हमें भट्ठी में सेंकता होगा‘ बहन ने सोचा। फिर पूछा-‘ आपको भी भट्टी की आग लगती होगी? ‘हाँ , लगती है।‘ आप आगे क्या करते हो? ‘छोड़ नहीं देते? ‘ नहीं, छोडूँगा तो गिर जाएगा, खत्म हो जाएगा।‘ ‘फिर आपको कैसे पता चलता है कि सोना शुद्ध हो गया?‘ बड़ी सरल बात है, जब मैं अपना चेहरा सोने में देख सकता हूँ तो समझ लेता हूँ कि यह पवित्र हो गया।‘‘ वाह! भगवान को भी अपना चेहरा हमारे में दिखाई पड़ता होगा‘- बहन का मन आश्चर्यमिश्रित आनन्द से

भर गया। इस वार्तालाप से हमें यह जानने को मिला कि जब तक मन तनावग्रस्त हैं वह शुद्ध और हल्का नहीं हो सकता और उसमें भगवान को भी अपना चेहरा दिखाई नहीं पड़ता अर्थात् तनावग्रस्त मन हो तो हम भगवान के गुणों से साम्य नहीं कर सकते। अत: प्रभु-समान बनने के लिए तनाव से मुक्त रहिए।

एकता से सफलता

एक गरीब परिवार था पर सभी सदस्यों में आपसी एकता बहुत थी। कमाने निकले तो रास्तें में एक पेड़ की छाया में बैठ गए। भूख लगी थी सो भोजन का सामान जुटाने लगे। पिता ने बड़े पुत्र से कहा-'' जाओ, कुछ लकड़ियाँ ले आओ।'' यह सुन छोटा बेटा बोल पड़ा- '' इन्हें मत भेजो, मैं ले आता हूँ।'' पिता ने कहा -''सभी एक-एक कार्य करो। एक लकड़ी लाए, दूसरा पानी, तीसरा पत्थर लाकर चूल्हा बनाए। '' देखते-देखते सब तैयारी हो गई। वृक्ष पर बैठा एक देवदूत यह बस देख रहा था। उसने हँस कर पूछा- ''पकाओगे क्या? खाओगे क्या? बड़े लड़के ने ऊपर देवदूत को देखा तो कहा-'' तुम जो हो।'' देवदूत ने मन में कहा - इन्होंने मुझ पर आस रखी है तो मैं जरूर पूरी करूँगा और उन्हें एक स्थान दिखाया जहाँ बड़ा कोष दबा पड़ा था। उस दौलत को निकाल कर दूसरे दिन वे सभी वापस चले गये और आनन्द से रहने लगे।

पड़ोसी ने उनकी समृद्धि देखी तो पूछा-'' तुम एक ही रात में इतने सम्पत्तिवान कैसे हो गए? उन्होंने सारी बात सुना दी। पड़ोसी भी उनकी नकल करता हुआ सारे परिवार को लेकर उसी वृक्ष के नीचे पहुँचा और भोजन बनाने का प्रयत्न में जुट गया। उसने बड़े पुत्र से कहा– '' जाओ, थोड़ी लकड़ियाँ ले आओ।'' उसने क्रोध से कहा-'' छोटे को क्यों नहीं कहते हो, क्या उसकी टाँग टूटी हुई है? पिता ने छोटे को कहा। वह बोला-'' मैं तो बहुत थक गया हूँ, मुझसे चला नहीं जाता, दूसरो को क्यों नहीं कहते, इनकी टाँगों में पानी तो नही ंभरा है? पिता ने तीसरे पुत्र से कहा परन्तु वह भी नहीं गया। तंग आकर पत्नी ने कहा-'' अच्छा, मैं जाती हूँ।'' इस पर उसने कहा-'' तू कहाँ जायेगी, बैठी रह, ऊँची-नीची जगह में कहीं गिर जायेगी।'' वृक्ष पर बैठा देवतदूत यह सारा तमाशा देखता रहा। फिर बोला- '' तुम विचित्र लोग हो। लकड़ी नहीं, पानी नहीं , खाने का सामान नहीं, तब क्या भूखे रहोगे'' बड़े लड़के ने कहा- तुम जो हो।'' देवदूत ने कहा- '' मैं उनके लिए हूँ जो एक होकर रहते हैं। तुम तो आपस में ही फूटे बैठे हो। तुमको कुछ देने का कोई लाभ नहीं होगा।'' यह कह वह अदृश्य हो गया।

तृष्णा दुःख का कारण

एक गरीब कलाकार की कला पर प्रसन्न होकर राजा ने उसे अशर्फियों से भरे 81/2 घड़े इनाम में दे दिए। कालाकार ने मन में प्रसन्नता तो हुई पर साथ ही एक चाह-सी उठी कि नवाँ घड़ा आधी खाल है, भर जाए तो कितना अच्छा हो! इस विचार ने उसे बेचैन कर दिया और वहा मारा-मारा फिरने लगा कि कहीं से आधा घड़ा अशर्फियाँ मिलें। भरे हुए 8 घड़े उतना सुख नहीं दे पाए जितना दु:ख उसे आधे खाली घड़े को देख कर उत्पन्न हो गया। इसलिए कहा जाता - 'बढ़ता है लोभ अधिक धन के संचय से।' जब तक एक भी घड़ा नहीं था तो चैन से सोता था, इतने मिल गए तो चैन छिन गया । वाह रे इन्सान, तेरी कैसी प्रवृति हैं?

कंजूस

एक व्यक्ति इतना कंजूस था कि एक बार वह कुछ पैसे हाथ में लेकर (गर्मी के दिनो में)बाजार में जा रहा था। हाथ में पसीना आ गया तो उसने पैसों को प्यार किया और बोला कि तुम रोते क्यों हो, मैं तुम्हें खर्च नहीं करूँगा। यह हैं कंजूस की हालत। आज इन्सान पैसे के लिए नारकीय कर्म करने को भी तैयार है।

इच्छाओं को जीतो

सिकन्दर जब भारत में आया तो उसने एक योगी की दिल से सेवा की। योगी के मन में आया कि सिकन्दर को जरूर कोई इच्छा है जिसके कारण यह मेरी इतनी सेवा कर रहा है। उसने राजा सिकन्दर से पूछा-'आप कया चाहते हैं? राजा ने कहा-'मेरा सारे विशव पर राज्य हो जाये। ' योगी ने कहा-'तथास्तु, लेकिन मेरी एक शर्त हैं, यह एक खप्पर है इसे आप अनाज से भर देना। ' सिकन्दर ने कहा-' महाराज जी, आप अनाज की बात कर रहे हैं, मैं तो इसे हीरों से भर दूँगा।' तभी उसने सैनिको से हीरे मँगवायें और लगा भरने। बहुत देर हो गई भरते-भरते लेकिन खप्पर भरने को ही नहीं आया। सिकन्दर थक गया। योगी ने कहा-' यह खप्पर मानव की इच्छाओं का प्रतीक है, यह कभी नहीं भरता। एक इच्छा पूरी होती है तो दूसरी आ जाती है, दूसरी पूरी होती है तो तीसरी आ जाती है। इस तरह मानव की इच्छायें कभी पूरी नहीं होती हैं। आज आप विश्व पर राज्य करना चाह रहे हैं फिर आकाश पर और फिर अन्य ग्रहों पर राज्य करना चाहेंगे। इस तरह सारे विश्व पर राज्य प्राप्त करने के बाद आपकी इच्छायें शान्त होने के बजाये और बढ़ेंगी।'

ट्रस्टीपन

एक राजा वर्षो तक सुखपूर्वक राज्य करता रहा लेकिन कुछ समय बाद देश में समस्यायें बढ़ गयी तो उसकी चिंता भी बढ़ने लगी। उसे न भूख लगती, न नींद आती। वह बहुत परेशान रहने लगा। घबराकर वह अपने गुरू के पास गया, बोला- गुरूदेव, राज-काज में मन नहीं लगता, राज्य में परेशानियाँ बढ़ गयी है, इच्छा होती है, राज-काज छोड़कर कहीं चला जाऊँ। गुरू अनुभवी था, उसने कहा- राज्य का भार पुत्र को सौंप दो और आप निश्चिंत रहो। राजा ने कहा, पुत्र अभी छोटा है। फिर गुरू ने कहा- अपना राज्य मुझे सौंप दो। राजा खुश हो गया। उसने पूरा राज्य गुरू को सौंप दिया और स्वयं वहाँ से जाने लगा। गुरू ने पूछा- कहाँ जा रहे हो? राजा ने उत्तर दिया-किसी दूसरे देश में जाकर धंधा करूँगाा। गुरू ने कहा- इसके लिए धन कहाँ से आयेगा? राजा ने कहा- खजाने में से ले जाऊँगा।

गुरू ने कहा, खजाना आपका है क्या? वह तो आपने मुझ सौंप दिया। राजा ने कहा- गुरूदेव गलती हो गयी, मैं यहाँ से कुछ नहीं ले जाऊँगा। बाहर जाकर किसी के पास नौकरी कर लूँगा। तब गुरू ने कहा- नौकरी ही करना है तो मेरे पास ही कर लो। राजा ने पूछा-काम क्या करना होगा? गुरू ने कहा- जो मैं कहूँ, वही करना होगा। राजा ने गुरू का आदेश स्वीकार कर लिया और उसके यहाँ नौकर हो गया। गुरू ने उसको राज्य की सम्भाल का पूरा काम दे दिया। जो काम राजा पहले करता था वही पुन: उसके हिस्से में आ गया। अन्तर सिर्फ यह रह कि अब वह राज-कार्य भार नहीं रहा बल्कि निमित्त भाव से किया जाने लगा। अब उसे भूख भी लगने लगी, नींद भी आने लगी। कोई भी समस्या नहीं रही।

एक सप्ताह बाद गुरू ने राजा को बुलाकर पूछा- अब क्या स्थिति है! राजा ने कहा- आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा। अब मैं परमानंद में हूँ। वही स्थान, वही कार्य पहले बोझ लगता था, अब खेल लगता है, निश्चिंतता आ गयी है, जिम्मेदारी का बोझा उतर गया है। भगवान भी कहते हैं बच्चे, आपके पास जो भी कुछ है, उसमें से मेरा-पन निकालकर, उसे ईश्वर की अमानत मानकर, श्रीमत प्रमाण सेवा में लगाओ तो आप भी हल्के हो जायेंगे। बोझ सम्बन्धों और चीजों का नहीं होता, मेरेपन का होता है। अत: मेरे-पन को तेरे-पन में बदल दो। ‘ मेरा‘ के स्थान पर ‘तेरा‘ कर दो। मेरा नहीं ‘ठश्वर का‘ यह महावाक्य जीवन का आदर्श बना लो।

शंका दु:ख का कारण

राम और श्याम दो सगे भाई थे। दोनों का आपस में बहुत प्यार था, दोनों की पत्नियाँ भी सुशील और संस्कारी थीं। गृहस्थी बड़े सुन्दर ढ़ंग से चल रही थी। राम यदि कोई भी वस्तु अपनी पत्नी के लिए लाता तो ठीक वैसी ही श्याम की पत्नी के लिए भी लाता था। खुद के लिए लाता तो ठीक वैसी ही अपने छोटे भाई के लिए भी ले अता था। एक बार राम एक जैसी दो साड़ियाँ लाया। उसने अपनी पत्नी से कहा- पहले छोटी बहू को पसन्द की साड़ी दे देना, बची हुई तुम रख लेना। पत्नी ने वैसा ही किया।

एक बार किसी प्रसंग पर दोनों ने वे साड़ियाँ पहनीं। राम की पत्नी की साड़ी की अन्य महिलाओं ने तारीफ की जबकि श्याम की पत्नी की साड़ी का सिर्फ रंग ही अलग था पर किसी ने भी उसकी तारीफ नहीं की। बस, शंका का जन्म हो गया कि जानबूझकर मेरे जेठ ने अलग-अलग रंग की साडियाँ खरीदी हैं। दोनों भाईयों में जो आज तक अपूर्व विश्वास था, सिर्फ एक छोटी-सी शंका ने ऐसा कहर ढा दिया कि उनकी गृहस्थी पूर्णतः नर्क में परिवर्तित हो गयी। अतः शंका को दूर ही रहने देना चाहिए।

बड़ा मूर्ख कौन?

एक कुंभकार था। वह प्रतिदिन जंगल से मिट्टी लेने जाता था। एक दिन रास्ते में, चमचमाते एक गोल छोटे पत्थर पर उसकी नजर पड़ी। उसकी प्रभा से प्रभावित होकर उसने उसे उठाया और अपने प्रिय गधे के गले में बाँध दिया। जब वह वापस लौट रहा था तो एक जौहरी ने गधे के गले में बंध पत्थर को पहचान लिया और लाखों की कीमत वाले उस हीरे को खरीदने की इच्छा व्यक्त की। भोले कुम्भकार ने कहा- एक रूपये में लो परन्तु जौहरी ने कहा- केवल आठ आने दूँगा। कुम्भकार ने आठ आने में देने से मना कर दिया। थोड़ा आगे चलने पर कुम्भकार को दूसरा जौहरी मिला। उसने भी पत्थर को पहचाना और कुम्भकार की इच्छानुसार एक रूपया देकर लाखों का हीरा प्राप्त कर लिया। कुम्भकार ज्योंहि घर पहुँचा, पहला जौहरी भी ढूढ़ँते-ढूढ़ँते उसके घर पहुँच गया। उसने देखा कि गधे के गले में पत्थर नहीं है। पूछने पर जब उसे एक रूपये में बेचने की जानकारी मिली तो कहने लगा- अरे! लाखों के हीरे को सिर्फ एक रूपये में बेचकर तूने बड़ी नादानी की है। कुम्भकार ने कहा-भैया, मैं तो नादान हूँ, परन्तु तुम तो महानादान हो, असली मूल्य का पता होते हुए भी आठ आने के पीछे तुमने लाखों की हीरे को गँवा दिया।

उपरोक्त कहानी हमारे संगमयुगी पुरूषार्थी जीवन की कहानी है। ज्ञान-रहित व्यक्ति हर संकल्प, बोल कर्म, श्वांस , स्थूल धन को व्यर्थ गवायें तो इतना आश्चर्य नहीं क्योंकि वा नादान (अनजान) है। परन्तु ज्ञानी होकर भी इन खजानों को गंवाना तो महानादानी है।

सकारात्मक दृष्टिकोण

जूता बनाने वाली एक प्रसिद्ध कम्पनी ने अफ्रीका के एक देश में दुकानों की श्रृंखला खोलने का विचार किया। सफलता सुनिश्चित करने के लिए कम्पनी प्रबंधन ने अफ्रीका देश के बाजार का गहन सर्वेक्षण करवाया। प्रथम सर्वेक्षण टीम के परिणाम, अधिकारियों को इस प्रकार मिले- उस देश के मूल निवासी असभ्य, बर्बर और जंगली हैं, जो जानवरों के चमड़े और पेड़ो के पत्तों से बने कपड़े और टोपी भी केवल ठंड और बरसात में ही पहनते हैं। ऐसे में जबकि कपड़े भी उनके लिए अनावश्यक हैं तब वहाँ जूते बेचना मूर्खता है। कम्पनी के अध्यक्ष ने इस रिर्पोट को एक तरफ किया और उसी सर्वेक्षण के लिए दूसरी टीम को भेजा। नई टीम ने लिखा -सड़कों के अभाव तथा यातायात के साधनों की कमी के कारण जूते इस देश के नागरिको के लिए वरदान सिद्ध हो सकते हैं। स्थानीय ओझाओं और चिकित्सकों के संदर्भ से यह जानकारी मिली है कि स्थानीय लोगों को सबसे ज्यादा चोट पैरों में लगती है अत: जूतों के व्यापार में सफलता संभव है। अध्यक्ष मे इस रिर्पोट पर पूरा ध्यान दिया और वहाँ तत्काल काम शुरु किया। यह छोटी-सी बात बताती है कि दृष्टिकोण का, परिणाम पर कितना असर पड़ता है।

जैसी दृष्टि-वैसी सृष्टि

एक वृक्ष के नीचे पाँच-सात व्यक्ति विश्राम कर रहे थे, एक नृत्यकार है, एक संगीतकार है, एक उदासनी संत है , एक नौजवान है, जो अभी-अभी घर से लड़कर आया है, बड़ा दु:खी है बहुत बेचैन है। आराम कर रहे इन्हीं मनुष्यों में एक लकड़ी का व्यापारी भी है।

हवा के तेज झौंके से डालियाँ, पत्ते झूमते हैं, हिलोरे लेते हैं। जो नृत्यकार है वह नृत्य की दुनियाँ में खो जाता है। सोचता है मेरे से भी ज्यादा सुन्दर यह वृक्ष नृत्य कर रहा है। इसकी डालियों में कितनी लचक है, इसके पत्ते कितने सुन्दर ढ़ंग से झूम रहे हैं। पेड़ का नृत्य देखकर नृत्यकार विस्माद की दुनिया में खो जाता है। उसको वृक्ष नाचता हुआ प्रतीत होता है।

दूसरा संगीतकार है, जब हवा के तेज झौंके पेड़ से स्पर्श करते हैं, सायं-सायं की आवाज बुलन्द होती है, वह संगीतकार सुर व संगीत की दुनिया में खो जाता है। सोचता है सिर्फ मैं ही नहीं गा रहा हूँ

यह वृक्ष भी गा रहा है। गीत, संगीत इस वृक्ष से भी निकल रहा है। नृत्यकार को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वृक्ष नृत्य कर रहा है, संगीतकार को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पत्ते-पत्ते से संगीत का जन्म हो रहा है।

तीसरा उदासनी महात्मा क्या देखता है, एक सूखा पत्ता हवा के झौंके से डाली से टूट कर जमीन पर आ गिरता है। आँखों में आँसू आ गये सन्त के। मुख से शब्द निकला, एक दिन संसार रुपी वृख से भी ऐसे ही टूटकर गिर जाऊँगा, जैसे पत्ता टूटकर गिर गया। जैसे गिरे हुए पत्ते को पुनः वृक्ष व डालियों से जुड़ता असंभव है, वैसे ही मरे हुए मनुष्य को अपने कुटुम्ब सम्बन्धियों से तथा संसार से जुड़ना बहुत असंभव है, बहुत असंभव। और वैराग की दुनिया में खो गया, स्वयं उपराम हो गया कि यहाँ तो सारे पत्ते झड़ने ही हैं।

चौथा मनुष्य जो आराम कर रहा था वह लकड़ी का व्यापारी है, वह सोचता है कि अगर यह पेड़ मैं खरीद लूँ तो इसमें से इमारती लकड़ी कितनी जलाऊँ, लकड़ी कितनी और उसमें से बाकी मलवा जो है वह कोपला बना सकेगा कि नहीं? मैं कितने का यह वृक्ष खरीदूँ, कितने का बेचूँ, क्या मुझे बचेगा? सोचकार वह व्यापार की दुनिया में खो जाता है।

अब पाँचवां जो आराम कर रहा था वह एक नौजवान था, अभी-अभी घर से लड़कर आया है, हवा के तेज झौंकों से जब शाखा, शाखाओं से टकराती हे, पत्ते-पत्तों से टकराते हैं, वह सोचता है झगड़ा तो यहाँ भी है, शाखा, शाखा से लड़ रही है, पत्ते, पत्तों से लड़ रहे हैं सिर्फ मेरे घर में ही लड़ाई नहीं है, यहाँ वृक्ष में भी बहुत बड़ी लड़ाई है। जैसी-जैसी दृष्टि है मनुष्य की वैसी ही सृष्टि दिखाई देती है अर्थात् जैसी नजर हैं वैसे ही नजारे देखने को मिलते हैं। वृक्ष एक ही है लेकिन सबके अलग-अलग दृष्टिकोण से दिखता है। इन्हीं अलग-अलग दृष्टिकोणों से ही परमात्मा के अनेक नाम रूप प्रचलित हुए।

स्वमान सम्मान देता है

एक सन्यासी अपने गन्तव्य स्थान की ओर लकड़ी का सहारा लिए अंधकारमय पथ के बीचों-बीच बढ़ता जा रहा था। उसे स्पष्ट दिखाई भी नहीं दे रहा था। अचानक उस अन्धियारी रात में उस राज्य का बादशाह अकेले राजधानी का भ्रमण करता हुआ उसी पथ पर आ पहुँचा। बादशाह ने अपने आपको सम्राट मानते हुए रास्ते से अलग हटने की आवश्यकता नहीं समझी और सन्यासी को अन्धेरे के कारण बराबर दिखाई नहीं दिया। अत: वह बादशाह से टकरा गया। बादशाह को बड़ा क्रोध आया और कहा- ''देखकर नहीं चलते, कौन हो तुम?''

सन्यासी ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया-'' मैं सम्राट हूँ..।'' बादशाह खिलखिला कर हंस पड़ा और उसने व्यंग्य के साथ कौतुहलवश पूछा- '' अच्छा सम्राट! यह बताईये कि मैं कौन हूँ? तुम गुलाम हो।'' सन्यासी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया। यह तो सरासर बादशाह का अपमान था। अपमानित राजा आगबबूला हो गया और गश्त लगाने वाले सिपाहियों को आदेश दे उस सन्यासी को जेल में डलवा दिया। अगले दिन प्रात: काल दरबार में बादशाह ने सन्यासी को बुलवाया और पूछा- रात को तुमने अपने आपको बादशाह और मुझको गुलाम क्यों कहा?

सन्यासी ने धैर्यवत, शान्तचित मुद्रा में, मधुर वाणी से जवाब दिया-'' इसलिए कि मैनें अपने मन और इन्द्रियों को जीत लिया हूँ। इच्छाओं और वासनाओं का मैं विजेता हूँ। आपने मुझे कैद कर लिया फिर भी मेरे मन में आपके प्रति तनिक भी रोष नहीं है और आप अपने ही गुलाम हैं, अपनी जिव्हा के, अपनी वासनाओं के..। और मैं अपने मन का सम्राट हूँ। यह मेरा स्वमान है।'' राजा उसकी बातों से अत्यन्त प्रभावित हुआ और उस सन्यासी को मुक्त कर दिया।

सच्चा स्नेह

सुभद्रा कृष्ण की बहन थी लेकिन कृष्ण का द्रौपदी के साथ अधिक स्नेह था। सुभद्रा को यह अनुभव होता था और वह कृष्ण से पूछती रहती थी ऐसा क्यों,आपका द्रौपदी के साथ मेरे से अधिक स्नेह क्यों? एक दिन श्रीकृष्ण के अँगुली में गन्ना खाते समय गन्ने का छिलका लग गया और खून बहने लगा, तो फौरन आवाज निकला कि कोई कपड़ा लाओ और अँगुली पर बाँधो। सुभद्रा छोटा सा कपड़ा ढूँढ़ती रही और द्रौपदी जो वहाँ खड़ी थी उसने अपनी कीमती साड़ी से कपड़ा फाड़कर श्रीकृष्ण की अँगुली पर बाँध दिया। तब श्रीकृष्ण की अँगुली ने कहा कि देखो इसकी कारण मुझे द्रौपदी से अधिक स्नेह है क्योंकि उसका मेरे साथ अधिक स्नेह है। उसने अपनी कीमती साड़ी की फिकर न कर मेरी अँगुली तथा खून का महत्व समझ साड़ी से कपड़ा फाड़कर मेरी अँगुली पर बाँध दिया।

साधना से भगवान मिलते हैं

एक राजा था। वह बहुत न्याय प्रिय तथा प्रजा वत्सल एवं धार्मिक स्वभाव का था। वह नित्य अपने इष्ट देव को बड़ी श्रद्धा एवं आस्था से पूजा करता था। एक दिन इष्ट देव ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिये तथा कहा - '' राजन् मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। बोलो तुम्हारी क्या इच्छा हैं, मैं उसे पूर्ण करूँगा।''प्रजा को चाहने वाला राजा बोला -'' भगवन् मेरे पास आपका दिया सब कुछ है। आपकी कृपा से राज्य में

अभाव, रोग-शोक भी नहीं है। फिर भी मेरी एक इच्छा है कि जैसे आपने मुझे दर्शन देकर धन्य किया है, वैसे ही मेरी सारी प्रजा को भी दर्शन दीजिये।''

'' यह तो सम्भव नहीं है''- भगवन् ने राजा को समझाया। परन्तु प्रजा को चाहने वाला राजा भगवन् से जिद्द करने लगा। आखिर भगवन् को अपने साधक के सामने झुकना पड़ा और वे बोले- ''ठीक है तो कल अपनी सारी प्रजा को उस पहाड़ी के पास लाना। मैं पहाड़ी के ऊपर से सभी को दर्शन दूँगा।''

राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने भगवन् को प्रणाम किया और सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कल सभी पहाड़ी के नीचे मेरे साथ पहुँचे, वहाँ भगवन् आप सब को दर्शन देंगे।

दूसरे दिन राजा अपने समस्त प्रजा और स्वजनों को साथ लेकर पहाड़ी की ओर चलने लगा तो रास्ते में एक स्थान पर तांबे के सिक्कों का पहाड़ दिखा। तांबे के सिक्कों को देखते ही प्रजा में से कुछ एक उस ओर भागने लगे। ज्ञानी राजा ने पुकार-पुकार कर सभी को सर्तक किया कि कोई भी उस ओर न जाये। तुम तो भगवन् से मिलने जा रहे हो, इन तांबे के सिक्कों के पीछे जाकर अपने भाग्य को लात मत मारो।

परन्तु स्वार्थ और लालच में अंधी, प्रजा उस तांबे के सिक्कों वाली पहाड़ी की ओर भाग गयी और तांबे के सिक्कों की गठरी बना कर अपने घर की ओर चलने लगी। वे मन ही मन सोच रहे थे कि पहले इन सिक्कों को तो समेट लें, भगवान से तो फिर कभी मिल लेंगे।

राजा खिन्न मन से आगे बढ़े। कुछ दूर चलने पर चाँदी के सिक्कों का चमचमाता पहाड़ दिखाई दिया। इस बार भी बचे हुये प्रजा में से कुछ लोग, राजा के कुछ कहने से पहले ही चाँदी के सिक्कों की ओर भागने लगे और वे भी सिक्कों की गठरी बना कर अपने घर की ओर चलने लगे। उनके भी मन में विचार चल रहा था कि ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलता है। चाँदी के इतने-सारे सिक्के फिर मिलें-न मिलें, भगवान तो फिर कभी मिल जायेंगे। इसी प्रकार कुछ दूर और चलने पर सोने के सिक्कों का पहाड़ नजर आया। अब तो प्रजा जनों में बचे हुये सारे लोग तथा राजा के स्वजन भी उस ओर भागने लगे। वे भी दूसरों की तरह गठरी लाद कर अपने-अपने घरों को चल दिये।

अब केवल राजा और रानी ही शेष रह गये थे। राजा रानी से कहने लगे-'' देखो कितने लोभी हैं ये लोग। भगवान से मिलने का महत्व यह नहीं जानते हैं। भगवान के सामने दुनियाँ की सारी दौलत क्या चीज है? रानी ने राजा की बात का समर्थन किया। और वे आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर चलने पर राजा और रानी ने देखा कि सत्परंगी आभा बिखेरता हीरों का पहाड़ है। अब तो रानी भी दौड़ पड़ी और हीरों की गठरी बनाने लगी। फिर भी उसका मन नहीं भरा तो साड़ी के पल्लू में भी बाँधने लगी। रानी के वस्त्र देह से अलग हो गये, परन्तु हीरों की तृष्णा अभी भी नहीं मिटी। यह सब देख राजा को

अत्यन्त ग्लानि और विरक्ति हुई। वह आगे बढ़ गया। वहाँ भगवान सचमुच खड़े उसका इन्तजार कर रहे थे। राजा को देखते ही भगवन् मुस्कराये और पूछा - ‘‘ राजन्, कहाँ हैं तुम्हारी प्रजा और तुम्हारे प्रियजन। मैं तो कब से उनसे मिलने के लिये बेकरारी से उनका इन्तजार कर रहा हूँ।‘‘

राजा ने शर्म और आत्म-ग्लानि से अपने सर को झुका दिया। तब भगवन् ने राजा को समझाया- ‘‘ राजन् जो लोग भौतिक प्राप्ति को मुझसे अधिक मानते हैं, उन्हें कदाचित मेरी प्राप्ति नहीं होती और वे मेरे स्नेह तथा आर्शीवाद से भी वंचित रह जाते हैं। दूसरा बिना प्रेम एवं पुरुषार्थ के भी मुझे नहीं पा सकते। तुमने स्व को पहचाना, मुझे प्रेम से याद किया, तब तू मूझे पा सका।

बड़ा कौन?

एक राजा ने अपने तीन बच्चों की महानता की परीक्षा लेनी चाही। उसने सारी सम्पत्ति के तीन हिस्से करके एक हीरा अपने पास रख लिया और कहा कि यह उसे मिलेगा जो तीनों में से सबसे महान कार्य करेगा। एक मास की निश्चित अवधि के बाद तीनों ने अपनी-अपनी महानतायें पेश की। पहले राजकुमार ने कहा कि एक व्यक्ति ने मेरे पास दो लाख रूपये अमानत के रूप में रखे ओर मैंने उसे ज्यों के त्यों लौटा दिये। राजा ने कहा ये क्या महानता हे, ना लौटाते तो तुम बेईमान कहलाते। दूसरे राजकुमार ने कहा मैंने एक डूबते हुए बच्चे को बचाया। राजा ने कहा यह तुम्हारा फर्ज था। तीसरे राजकुमार ने कहा कि मेरा दुश्मन एक ऐसी चट्टान पर सोया पड़ा था जिसके पास नदी बह रही थी। यदि वह जरा भी करवट लेता तो नदी मे ंगिर पड़ता। मैंने उसे उठाकर सुरक्षित स्थान पर सुला दिया। राजा बड़ा प्रभावित हुआ। हीरा तीसरे राजकुमार को मिल गया। क्योंकि उसका कार्य वास्तव में हीरे तुल्य था।

जीवन की सफलता

एक बार एक शिक्षक ने ब्लैक बोर्ड पर एक रेखा खींची और छात्रों से पूछा कि इस रेखा को बिना मिटाये छोटा करो। सभी छात्र प्रश्न का उत्तर सोचने लगे। इस प्रश्न का उत्तर किसी के मस्तिष्क में नहीं आ रहा था। अतएव सभी शांत थे। तभी एक छात्र उठा। उसने हाथ में चॉक ली और उसी रेखा के नीचे में एक उससे भी बड़ी रेखा खींच दी। छात्र के इस उत्तर से शिक्षक ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हें अपने से बड़े दिखाई देंगे और लालसा होगी कि उनसे भी ऊँचे बनूँ, परन्तु इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए उन्हें गिराना नहीं, अपितु स्वयं को और योग्य बनाना। यही जीवन की सफलता है।

आइना

महान दर्शन शास्त्री ‘सुकरात‘ शक्ल से अति बदसूरत थे। यदि कोई उनके विचार सुने बिना ही पहली बार उन्हें देखे तो घृणा हो जाये परन्तु उनके उच्च विचार सभी को पहली ही बार में अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे।

एक बार सुकरात वृक्ष की शीतल छाँव में बैठे आइने में अपना मुख निहार रहे थे। इसी समय उनका एक शिष्य वहाँ आ गया। सुकरात को यह क्रिया कलाप करते देख न चाहते हुए भी उसे हंसी आ गई। उसने हंसी को दबाने के भरसक प्रयास भी किया परन्तु वह सफल न हो सका। शिष्य को हंसता देख सुकरात ने उसकी हंसी का कारण पूछा। शिष्य ने सुकरात के प्रश्न को टालना चाहा परन्तु उसे सुकरात के आगे उनके बार-बार पूछने पर झुकना ही पड़ा और उसने डरते हुए कहा कि ‘‘ आप शक्ल से सुन्दर भी नहीं हैं और अपने चेहरे को आइने में निहार रहे हैं अत: यह देखकर मुझे हंसी आ गई। मेरी इस धृष्ठता को माफ करें।‘‘

यह सुनकर सुकरात ने बहुत ही अच्छा उत्तर दिया-‘‘ देखो, मैं दर्पण में अपना चेहरा यह सोच कर नहीं देख रहा था कि मैं चेहरा देखकर ईश्वर को दोष दूँ कि उसने मुझे इतना बदसूरत क्यों बनाया? बल्कि आइना इसलिए देखता हूँ कि मैं ऐसे कौन से उत्तम कर्म करूँ जो कि मेरे चेहरे की कुरूपता को ढक लें।‘‘

सुकरात का रहस्य भरा यह उत्तर सुनकर शिष्य ने सोचते हुए कहा-‘‘ फिर तो सुन्दर व्यक्ति को अपना चेहरा दर्पण में नहीं देखना चाहिए?‘‘ इस प्रश्न के उत्तर में सुकरात ने कहा ‘‘नहीं, सुन्दर व्यक्ति का भी अपना चेहरा दर्पण में यह सोच कर अवश्य देखना चाहिए कि मैं ऐसे कौन से अच्छे कार्य करुँ, ताकि मेरी सुन्दरता सदैव ही बनी रहें। मैं ऐसे कोई गंदे कर्म न करूँ जिससे मेरी सुन्दरता धूमिल हो जाये।‘

सहनशीलता शंहनशाह बनाता है

एक बार की बात है कि महात्मा गाँधी जी, पानी वाले जहाज में सफर कर रहे थे। शाम का समय था। सभी यात्री अपने-अपने केबिन से बाहर आकर खुले में बैठे थे। कुछ यात्री मनोरंजन के अनेक साधनों से स्वयं को तथा अन्य यात्रियों का मनोरंजन कर रहे थे, तो कुछ यात्री जहाज के किनारे पर खड़े होकर समुद्र में उठती लहरों का आनन्द ले रहे थे। परन्तु गाँधी जी एक कुर्सी में बैठे ध्यान-मग्न होकर एक पुस्तक पढ़ रहे थे।

इतने में एक अंग्रेज (जो गाँधी जी से चिढ़ता था तथा उनका अनादर करना चाहता था) गाँधी जी के पास आया। वह गाँधी जी के हाथ में कागज के चार पृष्ठ (जिन पर कुछ लिखा हुआ था तथा जो एकपिन की सहायता से संलग्न था) पकड़ाकर चला गया और दूर एक कोने में खड़े होकर गाँधी जी के चेहरे में उभरते भावों का अध्ययन करने लगा।

गाँधी जी ने उन पृष्ठों को क्रमानुसार खोला तथा उसे पुरा ऊपर से नीचे तक पढ़ा। उन कागजों पर बहुत ही बुरे तथा असभ्य शब्दों में गाँधी जी के लिये गालियाँ लिखी हुई थी। चारों पृष्ठों को पढ़ने के बाद गाँधी के पास पहुँचे (जो गाँधी जी को अपने तरफ आते देख कर एक कुर्सी पर बैठ कर कुछ पढ़ने का नाटक करने लगा था) और एक कुर्सी लेकर उसके सामने बैठ गये तथा बड़े ही प्यार से बोले- श्रीमान जी, मुझे इस पिन की अत्यन्त आवश्यकता थी, जो आपने मुझे दे दिया। इसलिये अपका बहुत-बहुत धन्यवाद। बाकी इन कागजों की मुझे आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये मेरे काम की चीज नहीं है इसलिये इसे आप वापस अपने पास ही सम्भाल कर रखें। हो सकता है यह आपके काम आ जाये। इतना कह कर गाँधी जी ने बड़े प्यार से उस अंग्रेज से हाथ मिलाया तथा वापस आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गये।

''मैंने इस व्यक्ति के लिये इतने असभ्य शब्दों का प्रयोग किया, परन्तु इसका तो इस पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा उल्टा ही उसने मुझे धन्यवाद दिया''- यह सोच-सोच कर वह अंग्रेज आत्म-ग्लानि से भर गया तथा महात्मा गाँधी जी की महानता के आगे नतमस्तक हो गया।

अन्न का मन पर प्रभाव

महाभारत में प्रसंग आता है-भीष्म पितामह सर -शैय्या पर लेटे हुए थे और अर्जुन को धर्मोपदेश दे रहे थे। धर्म की बड़ी गम्भीर लाभदायक बातें बता रहे थे। द्रोपदी वहाँ खड़ी थी, उसको हँसी आ गई। पितामह का ध्यान उधर गया और पूछा बेटी क्यों हँसती हो?

द्रोपदी ने कहा- ऐसी कोई खास बात नहीं है, पितामह। बेटी तुम्हारी हँसी में कुछ रहस्य है। - भीष्म ने प्रश्न किया। पितामह आपको बुरा तो नहीं लगेगा। भीष्म पितामह बोले- नहीं बेटी, बुरा नहीं लगेगा । तुम जो चाहे पूछो। द्रोपदी ने कहा- पितामह, आपको स्मरण है, जब मेरी इज्जत दुर्योधन की सभा में उतारने का प्रयत्न दु:शासन कर रहा था, उस समय में रो रही थी, चिल्ला रही थी। आप भी वहाँ उपस्थित थे। लेकिन उस समय आपका यह ज्ञान-ध्यान का उपदेश कहाँ गया था?

भीष्म बोले- तुम ठीक कहती हो, बेटी। उस समय मैं दुर्योधन का पाप भरा अन्न खाता था, इसलिए मेरा मन मलीन हुआ पड़ा था। मैं चाहते हुए भी धर्म की बातें नहीं कह सका। आज अर्जुन के

तीरों ने उस रक्त को निकाल दिया है, इसलिए मेरा मन शुद्ध हो गया है। आज धर्मोपदेश दे रहा हूँ। तो धर्म के प्रणेता भीष्म पितामह, जिनके आगे मानव नत मस्तक हो जाते, वह स्वयं सब कुछ भूले हुए थे क्योंकि पाप भरे अन्न का प्रभाव उनके मन पर पड़ा हुआ था।

नाम गुणवाचक हो!

देहली के निकट गाँव में एक आदमी रहता था जिसका नाम था- 'छज्जु'। उसकी पत्नी रोज उसे कहती थी कि तुम्हारा नाम बिल्कुल अच्छा नहीं है। तुम अपना नाम बदल डालो, क्योंकि जब भी कुएँ पर पानी भरने जाती हूँ तो गाँव भर कि स्त्रियाँ मुझसे मजाक करते हुए कहती हैं कि तुम्हारे पति का नाम कैसा है।! हर रोज यह बात सुनते-सुनते, छज्जु एक दिन अपने लिए कोई अच्छा-सा नाम ढूँढने निकल पड़ा। वह अभी कुछ ही दूर गया था कि उसने देखा कि एक स्त्री छाज से धान छटक रही थी। छज्जु ने उससे कहा- '' तुम्हारा नाम क्या है? पहले तो वह महिला कुछ हैरान हो गई और सोचने लगी कि आखिर यह मेरा नाम क्यों पूछता है। परन्तु फिर उसने सोचा कि नाम बताने में हानि भी क्या है। वह बोली-'' मेरा नाम है लक्ष्मी।''यह सुनकर छज्जु को बड़ी हैरानी हुई क्योंकि उसका नाम तो था लक्ष्मी और वह काम कर रही थी किसी जमींदार के घर अनाज साफ करने का! 'लक्ष्मी' नाम तो स्वर्गाधिपति श्री नारायण की पत्नी का है जिससे लोग धन-दौलत माँगते हैं, परन्तु यह तो स्वयं भी निर्धन थी! अत: छज्जू को यह नाम पसन्द नहीं आया।

चलते-चलते, रास्ते में उसे एक आदमी मिला, जो कि भीख माँग रहा था और बिल्कुल फटेहाल था। छज्जू ने वहीं रूक कर उससे पूछा- भाई, तुम्हारा नाम क्या है? भिखारी ने जवाब दिया '' मेरा नाम है 'धनपत'। छज्जु आश्चर्यचकित हो उसे देखने लगा। धनपत को तो धन दौलत का मालिक होना चाहिए था। उसे तो पैसों से खेलना चाहिए था। परन्तु यह व्यक्ति तो पैसे-पैसे के लिये तरस रहा था! यह सोचकर, छज्जू फिर आगे चल दिया।

वह यह सोचता जा रहा था कि पता नहीं उसे अपने लायक कोई नाम मिलेगा भी या नहीं। अभी तक तो उसे कोई नाम ठीक ही नहीं लगा था। इतने में ही उसे कुछ लोंगों का झुँड दिखाई दिया जो एक अर्थी को उठाये ले जा रहे थे। उसने सोचा शायद इस आदमी का नाम, जो मर गया है, ठीक हो। यह नाम मेरे लिए खाली हो गया है तो मैं अपना नाम भी यही रख लूँगा। यह विचार कर, उसने उन लोगों में से एक आदमी से पूछा कि जिसका यह शव है, उसका नाम क्या था? उस आदमी ने रोते हुए जवाब दिया कि ये सेठ अमरनाथ जी थे। अब तो छज्जु अचम्भे में पड़ गया। उसने मन ही मन सोचा- '' नाम अमरनाथ और फिर भी मर गये!''

आखिर छज्जु वापस अपने घर की ओर चल पड़ा। उसे कोई नाम पसन्द नहीं आया। जब वह घर पहुँचा तो उसकी पत्नी ने उससे पूछा- मिला कोई '' अच्छा-सा नाम? छज्जू ने कहा –

लक्ष्मी छटके धान, धनपत माँगे भीख।
अमरनाथ जी चल बसे, मेरा छज्जु नाम ही ठीक।।

शालिग्राम और शिव

बहुत समय पहले की बात है, कुरूक्षेत्र में सालिग्राम नाम का एक बालक रहता था। बचपन में ही उसका अपने पिता 'शिवानन्द' से वियोग हो गया। शिवानन्द बड़े सज्जन पुरूष थे। शालिग्राम की माँ की केवल एक ही आशा थी कि मेरा पुत्र अपने बाप का यादगार रूप बने। लेकिन शालिग्राम को खेल-कूद के सिवाय और कुछ न सूझता था। धीरे-धीरे, वह सीधा-साधा, शालिग्राम कुसंग में जा फँसा। उसे माँ की स्मृति बस खाना खाने और पैसे लेने के लिए ही आती थी।

वह रात को देर से घर लौटता। माँ देर तक उसकी प्रतीक्षा करती, उसे समझाती परन्तु अब कहाँ मानता था वह! वह उसे केवल एक बात मानने को कहती कि तुम ऐसा कोई कर्म न करो जिससे तुम्हारे माता-पिता के नाम को दाग लगे।

शालिग्राम यह सब बातें अपने दोस्तों को सुनाया करता। दोस्त भी सुनते-सुनते तंग आ गये। आखिर एक दिन उन्होंने कहा-'' तुम एक दिन माँ का काम तमाम क्यों नहीं कर देते! उसके लिए साधन तुम्हें हम देंगे।'' शालिग्राम ने कहा-'' हाँ, अब ऐसा करना ही पड़ेगा।''

उस दिन वह रात को 12 बजे घर पहुँचा। सर्दी का मौसम था। वर्षा हो रही थी और वह ठिठुर रहा था। माँ बेचारी तो पहले से ही इन्तजार कर रही थी। उसने उसे वस्त्र दिये, खाना खिलाया और प्यार करते हुये वे शिक्षा भी देती रही। शालिग्राम ने तो मन में कुछ और ही ठानी हुई थी। सोचते-सोचते उसे नींद आ गई और स्वप्न में भी वह उसी उधेड़बुन में रहा। स्वप्न में उसने मौका पाकर अपनी माँ के साथ सदा के लिए सम्बन्ध तोड़ने का कार्य कर लिया और अपनी माँ के शीर्ष को बाहर ले चला ताकि दोस्तों को अपनी वफादारी का प्रमाण दिखाये।

स्वप्न में ही शालिग्राम ने देखा कि वह धीरे-धीरे चल रहा था। बाहर वर्षा के कारण मार्ग में फिसलन हो रही थी। शालिग्राम फिसल कर कुहनियों के बल गिर पड़ा...। 'हाय'- यह शब्द उसके मुख से अनायास ही निकल गया। परन्तु इसके साथ ही एक कोमल ध्वनि उसके कानों में पड़ी- ''बेटा, तेरे को कहीं चोट तो नहीं आई।'' वह इधर-उधर देखने लगा परन्तु यह आवाज तो उसकी माँ के शीर्ष से सुनाई दी थी। शालिग्राम की आँखों में पानी भर आया। वह अपने को कोसने लगा। वह

‘माँ, माँ, माँ.. ऐसे चिल्लाने लगा। स्वप्न में ‘‘माँ-माँ कहते उसकी आवाज बाहर भी सुनाई दी। माँ भागी-भागी उसके पास पहुँची और उसने कहा-‘‘ बोलो बेटा? शालिग्राम अपने सामने माँ को खड़ा देख आश्चर्यन्वित हुआ। वह सिसक-सिसक कर, ‘माँ-माँ कहता हुआ अपनी माँ के गले से लग कर बोला-‘‘ माँ, बताओ मेरे लिए क्या आज्ञा है? मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ? जो मेरे पास है, वह मैं अवश्य दूँगा।‘‘ माँ बोलो -‘‘ अच्छा तो आज मुझे अपनी बुराइयों का दान दे दो।‘‘

अशान्ति का कारण अहंकार

बम्बई में एक सेठ रहते थे जिनका नाम था रामनाथ। उन्हें भक्ति और पूजा में विशेष रूचि थी। वे समय-समय पर किसी-न-किसी साधु-सन्त इत्यादि को भी अपने बंगले पर लाया करते थे ताकि उनका आतिथ्य किया करे। परन्तु इतना धन और भक्ति-भावना होने पर भी वे अशान्त रहते थे। एक बार उनके यहाँ एक सन्यासी आकर ठहरे हुये थे। सेठ जी ने सन्यासी जी को बताया कि उनके जीवन में अशान्ति है।

दोपहर को जब सन्यासी जी और सेठ जी ने भोजन कर लिया तो सेठजी उन्हें अपने बंगले के विभिन्न भाग दिखा रहे थे। बंगला दिखा चुकने के बाद सेठ जी सन्यासी महोदय को बंगले के बगीचे में ले गये। वहाँ रंग-बिरेंगे फूलों की शोभा देखने-जैसी थी। सब की मिली-जुली सुगन्ध भी मन को बहुत लुभाने वाली थी। सेठ जी, अँगुली के इशारे से सन्यासी जी को बता रहे थे-‘‘ इस फल का पौधा मैंने सिंगापुर से मँगाया था, वह सामने जो पेड़ है, उसकी कलम आस्ट्रेलिया से मँगायी गयी थी। और वह जो फूल दिखायी दे रहा है, वह जापान से लाया गया था..।

फिर, एक कारखाने की ओर इशार करते हुए सेठ जी कहने लगे, वह जो एक बहुत बड़ा कारखाना आप देख रहे हैं, वह मेरा है। उसमें तीन हजार व्यक्ति काम करते हैं। उधर दूसरी ओर जो बहुत बड़ी जमीन दिखाई दे रही हैं, उस पर अभी तीसरा कारखाना बनना शुरू होगा.. मेरे पास चार मोटर कार हैं.. इस प्रकार सेठ जी बहुत नशे से अपनी सम्पति का ही वर्णन करते जा रहे थे। कभी वह अपने गलीचों की बात करते, कभी फानूसों की। कभी फर्नीचर की तो कभी सजावटी सामान और कीमती चित्रों तथा कलाकृतियों की। बात करते समय उनसे कुछ अभिमान के प्रकम्पन आते थे। सन्यासी जी सेठ जी की बातें को सुनते हुए केवल ‘‘हूँ..हूँ हूँ ‘‘ ही करते रहे।

जब वे वापस अपनी बैठक में लौटे तो वहाँ विश्व का एक नक्शा लटक रहा था। सन्यासी महोदय ने सेठ जी से कहा- ‘‘ सेठ जी, इस में भारत देख को कहाँ दिखाया गया है?‘‘सेठ जी ने चित्र में भारत देश पर अँगुली रख दी। सारे विश्व में तो भारत छोटा-सा टुकड़ा ही दिखाई देता था। सन्यासी जी ने

फिर पूछा- ‘‘ सेठ जी, इसमें बम्बई को कहाँ दिखाया गया है?‘‘सेठ जी ने नक्शे में बम्बई पर अँगुली रख दी। उसमें तो बम्बई को एक बिन्दु के ही रूप में दिखाया गया था। सारे विश्‍व में तो बम्बई को इतना ही स्थान है। तब सन्यासी जी ने कहा-‘‘ सेठ जी, इसमें आप का बंगला, बगीचा और कारखाना कहाँ दिखाया गया है? यह सुनकर सेठ जी को लज्जा का अनुभव हुआ क्योंकि जब बम्बई को ही नक्शें में बिन्दु-सम दिखया ग्या था तो इतने बड़े विश्‍व में सेठ जी के बंगले और कारखाने को कैसे दिखाया जा सकता था। सेठ जी समझ गये कि सन्यासी जी ने उसके अभिमान को दूर करने के लिए ही यह सब पूछा है। सेठ जी अब अभिमान को छोड़ने का पुरूषार्थ करने लगे। अत: अब उनके जीवन में शान्ति भी आने लगी।

विज्ञान और अध्यात्म

एक नगर में चार भाई इकट्ठे रहते थे। चारों ने विद्या प्राप्त की। कई वर्ष तक कॉलेज और विश्‍वविद्यालय में पढ़ने के पश्‍चात् एक तो जीव-शास्त्री और डाक्टर बन गया, दूसरे ने यातायात के साधनों से सम्बन्धित इंजीनियरिंग में निपुणता प्राप्त कर ली। तीसरे ने इलेक्ट्रोनिक्स में अद्वितीय प्रतिभा को पा लिया और चौथे ने इन विषयों का भी सामान्य ज्ञान प्राप्त किया, कुछ और विषय भी पढ़े परन्तु विशेष बात यह कि वे तीनों तो सारा समय केवल उन्हीं विषयों के अध्ययन में लगे रहे जबकि चौथा भाई थोड़ा समय आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त कर अपने व्यवहार को श्रेष्ठ बनाने, जीवन में सद्‌गुण धारण करने, स्वभाव को शान्त बनाने और विवेक को सद्‌विवेक के रूप में पाने के लिए भी पुरूषार्थ करता रहा। परन्तु तीन भाई आध्यात्मिक शिक्षा के महत्व को न मानते हुए अपने उसे चौथे भाई को व्यर्थ में समय गँवाने वाला अथवा पिछड़ा हुआ व्यक्ति मानकर उसकी अवहेलना किया करते थे।

कुछ समय से उन तीन भाईयों के मन में यह चल रहा था कि कोई ऐसा काम किया जाये जिससे उनकी विद्वता की सभी पर धाक बैठ जाये। अचानक से हुआ यह कि उनके एक भाई जो इलेक्ट्रोनिक्स का कार्य जानता था, ने आकर कहा- भाईयों, मैं जब रास्ते से आ रहा था, तब मैनें दो स्थानों पर पास-पास हड्डियाँ पड़ी देखीं। अवश्य ही इन्हें किसी ने मारा होगा या ये वहाँ मरे होंगे और किन्हीं ने इनकी माँस- मज्जा का अन्त कर डाला होगा। शायद कभी कोई ऐसा समय भी आ जायेगा कि मरे हुए को जिन्दा किया जा सकेगा।

इस पर जीव- शास्त्री व डाक्टर भाई बोला-‘‘ यह क्या कह रहे हो? मैंने अपने विज्ञान में ऐसा प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है कि हड्डियाँ मिल जाने पर मैं शरीर बना सकता हूँ और शरीर में फिर से जीवन उत्पन्न कर सकता हूँ। परन्तु इन सब बातों के लिए कुछ यन्त्रों व साधनों की जरूरत है जो ऐसे

इलेक्ट्रोनिक्स तरीके से कार्य करें कि जिससे हम अपने वैज्ञानिक ज्ञान से यह असंभव-सा कार्य सम्भव कर दिखायें।

यह सुनकर इलेक्ट्रोनिक्स के विज्ञान वाला भाई बोला कि अगर आप बतायें कि आपको कैसे साधन व यन्त्र चाहिए तो वो मैं बना सकता हूँ। इलेक्ट्रोनिक्स का भला मुझसे कौन-सा राज छिपा है? परन्तु साधन बनाने के लिए भी जगह-जगह जा जा कर सामग्री इकट्ठी करने के लिए यातायात के अच्छे साधनों की आवश्यकता है क्योंकि सब चीजें हमारे देश में एक ही प्रदेश में तो मिलती नहीं।

यातायात के साधनों का विशेषज्ञ भाई बोला-'' लो, यह कौन सी मुश्किल बात है। यातायात के तीव्रगामी साधन मैं बना दूँगा या जो समाग्री चाहिए, मैं ला दूँगा। संसार के जिस कोने में पहुँचना हो, मैं पहुँचा दूँगा। द्वीप-महाद्वीप,सागर के तले व पर्वत की चोटी पर मैं पहुँचा दूँगा।''

चौथा भाई बोला-'' पहले देख तो लो कि हड्डियाँ किसकी हो? फिर सोचना कि बनाना भी है या नहीं।'' इस बात को सुनकर चारों वहाँ चल पड़े और जाकर देखा कि एक ढेर तो मनुष्य का था वा दूसरा ढ़ाँचा शेर की हड्डियों का। जीव-शास्त्री अथवा डाक्टर भाई बोला कि पहले तो मैं इस शेर को पुनर्जीवित करूँगा।

आध्यात्मिक भाई बोला-'' न भाई न , शेर बनाओगे तो वो हमें ही मार डालेगा क्योंकि वो तो माँस भक्षी है और नरसंहारी भी। शेर बहुत ही खूखार होता है। शेर तो दहाड़ता है, प्रेम और मधुरता का तो वह एकशब्द भी नहीं बोलता।''

सभी ने मिलकर चौथे भाई को कहा-'' तुम चुप रहो, तुम कुछ विज्ञान तो जानते नहीं, केवल बातें करना जानते हो। हम जो बनायें उसे बनाने दों।'' सभी ने अपने-अपने विज्ञान के साधन जुटाये और जीव-वैज्ञानिक ने हड्डियों के ढ़ाँचो से शेर खड़ा कर दिया। वह शेर उन्हीं पर झपटा और उनका भक्षण कर डाला। अपने आध्यात्मिक भाई को तो उन्होनें पहले ही वहाँ से भगा दिया था। कहानी का सारांश यह है कि आज के वैज्ञानिकों ने मिलकर नर संहार के साधन रूप सिंह को बना दिया है जो मानव-समाज को हड़प कर जायेंगे। काश कि वैज्ञानिक अपने आध्यात्मिक भाई की भी बात सुनते और उसे अपने से अलग कर भगा ने देते। वे सिंह की बजाय अगर मनुष्य बनाते अर्थात् संहार साधन न बनाकर मनुष्यता और दया के भाव जागृत करते तथा सहानुभूति और प्रेम के प्राण फूँकते तो संसार का भला होता।

दुआयें लें, बदुआयें नहीं

आदिवासियों के एक छोटे-से गाँव में एक बनिया अनाज तथा किराना की दुकान चलाता था। एक गरीब महिला ने सौ रूपये का नोट बनिये के हाथ पर रखा और साठ रूपये का सामान लिया, फिर बनिया अन्य ग्रहाकों को सामना देने लगा। महिला खड़ी रही। समय बीतता जा रहा था, महिला ने बचे हुए चालीस रूपये माँगे। बनिये ने कहा- तुम्हें चालीस रूपये तो उसी समय दे दिये थे। महिला बोली- नहीं सेठ, तुमने मुझे पैसे नहीं दिये, मुझे कुछ और सामान भी लेना है, सो मुझे चालीस रूपये दे दीजिये।

बनिये के बार-बार यह कहने पर कि मैंने रूपये दे दिये हैं, नौकर बोला,सेठजी, इसके चालीस रूपये देने अभी बाकी हैं। अब सेठ, नौकर पर बरस पड़ा- इतना ही तुझे है तो तू अपनी जेब से दे दे। यह सुन असहाय महिला फिर से गिड़गिड़ाई-सेठ, अभी भी मुझ गरीब के चालीस रूपये दे दे, वरना..। महिला के ऐसा बोलने पर सेठ भड़क उठा- क्या कर लेगी, मैंने रूपये दे दिए हैं। सेठ, एक गरीब, लाचार की हाय मत लो, मैं आखिरी बार कह रही हूँ- महिला आँसू भरकर बोली लेकिन सेठ के दिल में तो लोभ था। वह बोला-क्या तुमको दुबारा चाहिए?

आखिर लाचार महिला का दिल जल उठा, अंतर्मन से हाय निकली -सेठ, एक माह में तुम्हारी दोनों आँखों की रोशनी चली जाएगी और आज से ठीक एक वर्ष बाद तुम इस दुनिया में नहीं रहोगे। अब तो सेठ को और ज्यादा गुस्सा आ गया, बोला-चली जा यहाँ से, क्या तेरे कहने से ऐसा होगा?

लाचार की लगी हाय काम कर गयी। ठीक पच्चीसवें दिन जब सेठ सुबह सोकर उठा तो उसे लगा कि कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। वह एक खम्भे से टकराकर गिर पड़ा। घटना के एक वर्ष बाद एक दिन अचानक उसे दौरा पड़ा और वह दुनियाँ से विदा हो गया। मात्र चालीस रूपये लालच में गरीब की जो हाय ली उसका परिणाम कितना भयंकर निकला? यह हाय इसी जन्म में पूरी नहीं हो जाती, अगले जन्मों तक भी पीछा करती है। हाय रे दुर्भाग्यशाली मानव! तेरा यह रूपया यहीं पड़ा है लेकिन वह हाय तेरा पीछा करती जा रही है। काश! तू चालीस रूपये का लोभ न करता, महिला भी सुख से रहती, तू भी उम्र पूरी कर लेता। तेरी इस गलती से आने वाली पीढ़ियाँ शिक्षा लें, यही शुभभावना है। हराम और बेईमानी का पैसा क्या गुल खिलाता है, यह तो हम रोजाना ही देख रहे हैं। हमारे घर में जो पैसा आ रहा है,वह नीति से, प्रेम से, प्रसन्नता से, पवित्रता से, ईमानदारी से, आशीर्वाद से यदि आ रहा है तो शान्ति देने वाला होगा, अन्यथा नहीं।

महानता सत्य की

किसी समय एक वन में कुमुद नाम के ऋषि रहा करते थे। एक दिन अपना कार्य समाप्त करने के पश्चात् कहा से वे वापिस लौटे तो देखा कि कोई अन्य ऋषि उनके वन में लगे वृक्ष के फल तोड़कर खा रहा था। ये दृश्य देखने के पश्चात् वो उनके नजदीक पहुँचे और पूछा -क्या आपने फल ग्रहन करने से पूर्व इस वन के अधिपति की अनुमति प्राप्त की है? ये बात सुनकर दूसरे ऋषि चौंके क्योंकि वो यहाँ से गुजर रहे थे तो भूख की व्याकुलता में बिना कुछ सोचे ही फल तोड़कर खाना प्रारम्भ कर दिया। इस पर कुमुद ऋषि ने बताया के ये उनका ही वन है और वे ये समझते हैं कि बिना किसी आज्ञा से उसकी वस्तु का उपभोग भी चोरी है, पाप है। इसकी सजा तो आपको आवश्य भुगतनी चाहिए। ये सुनकर फल खाने वाले ऋषि को अत्यन्त पश्चाताप् हुआ और उन्होंने सुझाव दिया कि सजा देने का अधिकारी तो राजा के पास है, आप उन्हें अपना अपराध सुनाकर सजा प्रार्थी बनिए।

ऋषि राजा के पास पहुँचे । सारा वृतान्त सुनने के पश्चात् राजा ने कहा कि इतने थोड़े से फल बिना पूछे ले लेना सो भी आप जैसे ऋषि के लिए कोई पाप नहीं है। मैं तो इसकी सजा देने में अक्षम हूँ। अगर कुमुद ऋषि इसे चोरी या पाप समझते हैं तो आप उन्हीं से ही क्षमा याचना कीजिए। ऋषि ये सुनकर पुनः वन अधिपति के पास पहुँचे और अपराध की सजा माँगी। इस बार कुमुद ऋषि ने जवाब दिया कि -"जाइये, मैने आपको क्षमा किया। पर अब तो अपराधी ऋषि दृढ़ थे सजा भोगने के लिए। बहुत देर समझाने पर भी जब वे अपनी बात से नहीं टूटे तो कुमुद ऋषि ने वन से दूर कुटिया में जाकर उन्हें तपस्या करने के सुझाव दिया और कहा कि शायद परमात्मा स्वयं ही क्षमा कर दें। अपराधी ऋषि का ग्लानियुक्त मन तो जैसे प्रतिक्षण उन्हें झकझोर रहा था। भूख-प्यास,सर्दी-गर्मी की परवाह किये बिना वो कुटिया में जाकर ध्यान मग्न हो गये।

दो दिन की कठिन तपस्या रंग लाई। अपने अन्दर एक नई शक्ति का अनुभव करते हूए उन्होंने सुना- हे वत्स,मैंने तुम्हें क्षमा किया,तुमनें सच बताकर अपनी चोरी स्वीकार की, इसी पश्चाताप् ने तुम्हारी आधी सजा से तुम्हें मुक्त किया और रही हुई सजा इस तपस्या से पूर्ण हुई। अब जाओ,जाकर अपना कर्त्तव्य फिर से शुरू करो। इससे हम समझ सकते हैं कि बिना किसी दूसरे की आज्ञा से उसकी वस्तु का उपयोग भी पाप है और ये ईश्वरीय सम्बन्ध का रस लेने से वंचित कर सकता है। सत्य पथ के पुरूषार्थी को तो हल्के रूप से या अनजाने में भी बिना अनुमति पर-वस्तु को छूने से भी भयभीत रहना चाहिए और अगर ऐसा हो भी जाता है तो सच्चे हृदय से सुनाकर उसके पश्चाताप् में ही कल्याण है।

पाप, पाप को खा जाता है

पाँच चोर चोरी करने को निकले। शाम को वे एक नगर के पास पहुँचे। उनमें से दो चोर नगर के बाहर ही रूक गये। उन्हें सबके लिए रसोई बनाने का काम सौंपा गया। अन्य तीन चोर नगर के अन्दर घुस गए। उन्होंने राजमहल से करोड़ो की सम्पत्ति चोरी की। इधर रसोई पकाने वालो दोनों चोरों ने सोचा कि यदि भोजन में जहर मिला दिया जाये तो जहर युक्त भोजन खाकर वे तीनों चोर मर जायेंगे और चोरी का सब माल हमें मिल जायेगा। अतः दोनों ने पेट भर खाना खाया और बाकी के भोजन में विष घोल दिया तथा उन तीनों के आने की राह देखने लगे। उधर तीनों चोरों का भी विचार आया कि यदि रसोई पकाने वालो दोनों चोरों को खत्म कर दिया जाए तो चोरी के माल का हिस्सा उनको देना नहीं पड़ेगा। यह सोचकर नगर के बाहर पहुँचते ही रसोई पकाने वाले दोनों चोरों के सिर उन्होंने तलवार से उड़ा दिये। बाद में विषाक्त भोजन खाकर वे तीनो भी मर गये। चोरी का माल वहीं का वहीं धरा रह गया।

सहनशीलता सफलता का आधार

एक साधक, एक बौद्धिक साधु के पास योग सीखने गया। साधु ने कहा, योग तो मैं तुझे सिखा दूँगा परन्तु यहाँ एक पहाड़ी है छोटी-सी , उस पर तू एक कमरा बना दे, फिर सिखाऊँगा। साधक ने बहुत मेहनत करके, एक मास में कमरा बना दिया और साधु के पास जाकर कहा- ‘ गुरू जी, कमरा बनवा दिया है।‘ गुरू ने कहा, तोड़ डाल इस कमरे को, दूसरा बना। उसे लगा कि शायद कमरा ठीक नहीं बना। उसने मेहनत कर फिर से ढ़ेढ़ मास में नया कमरा बनवाया। फिर गुरू के पास गया। गुरू ने कहा, इसे भी तोड़ दे, दुबारा बना। उसे लगा कि शायद गुरू जी इससे भी बेहतर कमरा चाहते हैं। उसने मेहनत की। दो मास बाद उससे भी अच्छा कमरा बनाया। फिर गुरू के पास गया। गुरूजी ने फिर तोड़ने का आदेश दिया परन्तु शिष्य को एक भी नकारात्मक संकल्प नहीं आया। उसने सोचा, चाहे कितना भी सहन करना पड़े, त्याग और बलिदान देना पड़े परन्तु मैं योग जरूर सीखूँगा। इस प्रकार गुरू ने दस बार कमरा बनवाया और तुड़वाया। साधक इसे गुरू की आज्ञा समझकर करता रहा। जब वह ग्यारहवीं बार गुरू की उसी आज्ञा का पालन करने चला तो दौड़कर गुरू ने उसे गले लगाया और कहा, बेटे, तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गयी। एक साधक को सीखने के लिये जो स्थिति बनानी चाहिये वह तुम्हारी बन गयी है। अगर तेरे में रिंचक मात्र भी अहंकार होता तो तू इतना समय नहीं टिकता। तेरे चेहरे पर नकारात्मक भाव जरूर आता। मैं हर बार तेरे चेहरे के भाव देखता रहा। तुम्हारी विजय हो गयी है। ऐसा कहकर गुरू ने अपनी तपस्या के सब रहस्य उस शिष्य को सिखाये। तो सबसे बड़ा पुरूषार्थ है अहंकार से मुक्ति प्राप्त करना, तब ही एकरस अवस्था बन सकती है।

भोले का साथी भगवान

एक बार की बात है कि एक सियार जंगल में से गुजर रहा था। दोपहर का समय था, गर्मी का मौसम था। गर्मी बहुत पड़ रही थी। सियार को बहुत प्यास लगी, उसका गला सूखता जा रहा था,, उसे ऐसे लगा कि अगर जल्दी से पानी नहीं मिलेगा तो आज प्राण पखेरू उड़ जायेंगे। वह पानी की तलाश में हाँफता हुआ आगे बढ़ रहा था कि उसकी निगाह एकाएक एक खढ्डे की ओर गयी जिसमें कुछ पानी था। उसे देखते ही जीवन बचने की कुछ उम्मीद लगी परन्तु वह खढडा कुछ गहरा था। उसमें वह जैसे- तैसे उतर तो जाता परन्तु फिर उसमें से बाहर निकलना उसे मुश्किल लग रहा था। यह सोचकर उसे महसूस होने लगा कि आज उसकी मौत तो आ ही जायेगी। या तो वह प्यासा ही खढडे के बाहर मर जाएगा या पानी पीकर खढडे में पड़ा-पड़ा बाहर आने की चिंता में दम तोड़ देगा।

अचानक ही उसने देखा कि एक बकरी उस ओर आ रही थी। उसे लगा कि वह भी पानी ही की तलाश में आ रही है। उसे ख्याल आया कि अब शायद काम बन जाये। जब बकरी उसके निकट पहुँची तो सियार ने उससे कहा-'' बहन बकरी, क्या तुम्हें प्यास लगी है? क्या तुम पानी की तलाश में निकली हो? बकरी बोली-'' हाँ भैया? गला सूखा जा रहा है और प्यास के मारे होश उड़े जा रहे हैं। अगर थोड़ी देर पानी न मिला तो आज यह तेरी बहन बचेगी नहीं।''

सियार बोला-'' अरे, ऐसा क्यों कहती हो? चलो मैं तुम्हें दिखाऊँ कि पानी कहाँ है? सियार मक्कार तो होता ही है। वह बकरी को बहन कहकर पुकारता हुआ नेता बनकर स्वयं को बड़ा निःस्वार्थी प्रगट करता हुआ, सेवाभाव प्रदर्शित करते हुए उसे खढडे की ओर ले चला। खढडे पर पहुँचकर सियार बोला-'' ले जितना पानी पीना हो, पी ले।'' बकरी बोली -'' भैया, पानी पीने के लिए इसमें उतर तो जाऊँ परन्तु फिर निकलूँगी कैसे? दूसरी बात यह है कि तुम भी तो पानी पी लो।

सियार बोला-'' अच्छा, तो फिर ऐसा करते हैं कि तुम कहती हो तो मैं भी पानी पी लेता हूँ। मैं भी उतरता हूँ, तुम भी उतरो। मैं पानी पीकर तुम्हारी पीठ पर चढ़कर बाहर निकल आऊँगा और बाहर खड़े होकर तुम्हारे सींगों से पकड़कर तुम्हें बाहर खींच लूँगा ताकि तुम भी बाहर आ सको। अगर मैं तुम्हें सींगों से खींच लूँ, तब तुम बुरा तो नहीं मानोगी?''

बकरी बोली-'' इसमें बुरा मानने की भला क्या बात है? तुम तो मेरा भला ही चाह रहे हो। लो, अब देर किस बात की है। दोनों उतरकर जल्दी से पानी पी लेते हैं।'' दोनों ने खढडे में उतरकर पानी पी लिया। अब सियार तो बकरी की पीठ पर चढ़कर बाहर निकल आया। तब बकरी ने उसे कहा-'' लो भैया, अब मुझे भी खींच लो। '' ऐसा कहकर बकरी ने अपने सींग आगे बढ़ाये। परन्तु मक्कार

सियार बोला-'' वाह बहन वाह, अगर तू मेरी खैर चाहती होती, तू कभी न कहती कि मुझे सींगों से पकड़कर बाहर खींच लूँ क्योंकि तुझे खींचने की कोशिश करने पर तो मैं स्वयं ही वापस खढडे में गिर जाऊँगा। तू स्वयं ही सोच कि तू कितनी भारी और बड़ी है। मैं तुम्हें खींचने की कोशिश करूँगा तो तुम्हारे साथ मैं भी खढडे में मर जाऊँगा। अतः नमस्कार, मैं तो अब चलता हूँ क्योंकि मेरी साथी मेरा इंतजार करते होंगे।'' ऐसा कहकर वह तो वहाँ से चल दिया और बकरी वहीं ठगी-सी खड़ी रह गयी।

सियार कुछ ही आगे बढ़ा था कि रास्ते में एक बाघ आ रहा था। बाघ सियार पर झपटा उसे अपनी भूख का शिकार और गले का ग्रास बना लिया। बकरी वहाँ खड़ी मैं..मैं कर रही थी मानों भगवान से प्रार्थना कर रही हो कि प्रभु, सच्चाई वालों के आप ही साथी हो। हे प्रभु, आप मुझे इस खढडे से निकालो। वह अपना मुँह ऊपर को उठाकर मैं..मैं..मैं कर रही थी।

उसी रास्ते से भक्त स्वभाव का एक यात्री गुजर रहा था। उसने मैं..मैं की आवाज सुनकर जब चारों ओर देखा ओर उसे कोई बकरी दिखाई नहीं दी तो उसे ख्याल आया कि बकरी किसी आपातकालीन स्थिति में है। वह उस आवाज का अनुशरण करते खढडे के पास पहुँच गया। उसने उसे निकालकर बाहर किया। जीवन की रक्षा पाकर बकरी खुशी से उछलती-कूदती चली गयी।

मृत्यु की स्मृति पाप से मुक्ति

एक संत थे जिनका जीवन निष्पाप एवं पवित्र था। अनेक लोग उनके उपदेश सुनने आते थे। एक दिन एक युवक ने संत से कहा-महात्मन! मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि आप पाप रहित जीवन कैसे जी सकते है? कितनी भी कोशिश कर लूँ फिर भी मुझसे पाप तो हो ही जाता है। आप पाप रहित जीवन कैसे जीते हैं, कृपया पाप रहित जीवन का रहस्य मुझे समझाइये।

संत ने कहा- वत्स! बहुत अच्छा हुआ जो तुम आ गये। क्योंकि मुझे तुमसे एक विशेष बात करनी थी। युवक ने उत्सुकता से पूछा- महात्मन! कैसी बात?

संत ने कहा- बेटे! बात तेरे जीवन से सम्बन्धित है। आज सुबह मैंने सपने में देखा कि ठीक सातवें दिन आपकी मृत्य्यु होनी वाली है। तेरे परिवारिक जनों का विलाप सुनकर मेरी नींद खुल गयी। बेटे, मेरा सुबह का सपना हमेशा सच्चा होता है।

मृत्यु की बात सुनते ही युवक के दिल की धड़कन बढ़ गयी, आँखों के आगे अंधेरा छाने लगा, हाथ-पैर भय से कापंने लगे ओर सिर चकराने लगा। वह वहाँ से सीधा भगवान के मन्दिर में जाकर उनके चरणों में झुककर प्रार्थना करने लगा-हे प्रभु! हे मेरे रक्षक! मैनें अपनी जिन्दगी में बहुत पाप किये हैं। पाप करके कभी मैंने पश्चाताप् नहीं किया। मैं अपनी करनी को शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर

सकता। प्रभु! मुझे माफ कर दीजिए। जब वह घर लौटा तो उसका खाने-पीने, हंसने-बोलने में मन नहीं लगा। संसार के वैभव अब उसे आकर्षित नहीं कर रहे थे। पाप करना तो दूर अब तो पाप करने की इच्छा भी नहीं पैदा हो रही थी। संसार की सारी वस्तुएं उसे नि:सार लगने लगी क्योंकि कोई ऐसी वस्तु नहीं थी जो उसे मृत्यु से बचा ले।

धन, दुकान, मकान, पुत्र, पत्नी, परिवार और मित्र कोई भी उसे मृत्यु से बचा नहीं सकता था। वह सोचने लगा कि क्या कोई ऐसा डॉक्टर नहीं जिसके कैप्सूल से मौत रूक जाये, क्या कोई ऐसा वकील नहीं जो मृत्यु को स्टे-आर्डर दे सके, क्या कोई ऐसा वैज्ञानिक नहीं जिसके शोध से यमराज की गति अवरूद्ध हो जाये। बहुत सोचने पर उसे अहसास हुआ कि सदगुण और प्रभुस्मरण ही एकमात्र आधार है। तभी उसने क्षमा-याचना के द्वारा सभी लोगों के दिलों को जीतना प्रारम्भ कर दिया और प्रभु स्मरण में लग गया। उसके हृदय में पवित्रता का संचार होने लगा।

इस प्रकार निष्पाप एवं पवित्र भावों में उसके छ: दिन बीत गये। सावतें दिन का जब सूर्योदय हुआ तो उसके मन से मृत्यु का भय निकल चुका था। इतने में संत उसके घर पहुँचे और पूछा- वत्स! सात दिन में तुमनें कितने पाप किये? उसने कहा– महात्मन! पाप करन तो दूर, पाप करने के विचार भी पैदा नहीं हुये। जब मौत सिर पर खड़ी हो तो मन पाप में कहाँ लगता है, गत छ: दिनों में मेरा जीवन ही बदल गया है, संत ने कहा- पवित्र जीवन जीने का यही रहस्य है। मैं भी मौत का प्रतिपल स्मरण करता हूँ।

सत्य से बढ़कर असत्य

एक बार एक राजा को अपने उस मंत्री की परीक्षा लेने की सूझी जो किसी भी हालत में झूठ नहीं बोलता था। भरे दरबार में सम्राट ने उपने हाथ के पंजे में एक पक्षी को लिया और मंत्री से पूछा- बताओ, यह पक्षी जिंदा है या मृत? मंत्री के सम्मुख यह नई तथा विचित्र परीक्षा की घड़ी थी। यदि वह कहता है कि पक्षी जिंदा है तो सम्राट पंजा दबा कर उसे मार देगा और यदि वह कहता है कि पक्षी मृत है, तो सम्राट पंजा खोलकर उसे उड़ा देगा। मंत्री के दोनों ही उत्तर झूठे ठहराये जाने की पूरी संभावना थी। आखिर मंत्री ने फैसला किया यदि मेरे एक झूठ से पक्षी के प्राण बच सकते हैं, तो यह झूठ भी मुझे मंजूर है।

मंत्री ने कहा- हे सम्राट, आपके पंजे में जो पक्षी है, वह मृत है। ऐसा सुनते ही सम्राट ने पंजाा खोल दिया और पक्षी उड़ गया। सम्राट ने कहा- आज तो तुमने झूठ बोल दिया। मंत्री ने जवाब दिया- महाराज, यदि मेरे इस झूठ से इस निर्दोष पक्षी की जान बच गयी है, तो यह झूठ बोलकर भी मैं विजयी

ही हूँ, हारकर भी विजयी हूँ। इस उत्तर से सम्राट बहुत खुश हुआ और भरे दरबार में उसकी तारीफ करने को विवश हो गया। कल्याण के लिए बोला गया झूठ, कई बार सत्य से भी बढ़कर होता है। सत्य लचीला होता है, यह व्यक्ति, समय, स्थान और परिस्थिति को परखकर निर्धारित होता है। एक व्यक्ति के सम्बन्ध में जो झूठ है, वही दूसरे के सम्बन्ध में कल्याणकारी हो सकता है।

माँ का वात्सल्य

एक बार एक व्यापारी दो घोड़ियों को लेकर राजा के दरबार में उपस्थित हुआ और नम्रतापूर्वक राजा से निवेदन करने लगा कि अपके दरबार में एक से एक ज्ञानी है, क्या उनमें से कोई भी यह बता सकता है कि इन दोनों घोड़ियों में से माँ कौन है और बेटी कौन है। राजा के लिए यह चुनौती भरा प्रश्न तो था ही, साथ ही दरबार की प्रतिष्ठा का भी सवाल था। सोच विचार कर राजा ने मन्त्री को इस रहस्य से पर्दा उठाने का भार सौंप दिया।

दरबार की समाप्ति पर उदास चेहरे के साथ मंत्री जब घर लौटा तो उनकी बुद्धिमान पुत्रवधू विशाखा ने उदासी का कारण जानना चाहा। मंत्री जी पहले तो टालते रहे परन्तु बाद में विशाखा के स्नेह भरे आग्रह के आगे नत मस्तक हो गये और सारी बात उसे बता दी। वह सुशील नारी इस छोटी-सी बात को सुनकर मुस्करा दी और कहा- पिता जी, यह तो बहुत आसान काम है। मंत्री जी ने उसके समाधान सूचक चेहरे को पढ़कर धीरे से पूछा- कैसे बेटी?

विशाखा ने कहा- पिता जी, दोनों घोड़ियों को अलग-अलग पात्र में दाना डाल देना, जो माँ होगी वह धीरे-धीरे खायेगी और जो बेटी होगी वह जल्दी–जल्दी खायेगी। बेटी अपने पात्र का दाना समाप्त कर, माँ के पात्र में मुँह डालेगी और माँ अपने पात्र से मुँह हटाकर बेटी को खाने देगी। इस प्रकार आपको पहचान हो जायेगी।

निर्धारित समय पर दरबार में राजा, व्यापारी, दरबारीगण और मंत्री जी ने घोड़ियों की अलग-अलग पहचान बता दी। सौदागर इस पहचान से सन्तुष्ट हुआ। उसने राजा के ज्ञानी मन्त्री को और राजा को साधुवाद दिया। परन्तु राजा के मन में प्रश्न उत्पन्न हुआ कि ऐसा हल मन्त्री के मन की उपज कैसे हो सकता है, यह अवश्य ही किसी वात्सल्यमयी नारी के द्वारा सुझाया गया है। राजा के पूछने पर मंत्री ने अपनी पुत्रवधू की सूक्ष का सच्चा-सच्चा हाल कह सुनाया। राज ने विशाखा को दरबार में बुलाकर सम्मानित किया।

समय का महत्व

एक बार एक प्रसिद्ध जौहरी की अल्पायु में मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी तथा एकमात्र पुत्र पर विपत्ति आ गिरी। जौहरी अपने पीछे एक बहुमूल्य हीरा छोड़ गया था। एक दिन माता के आदेश से जौहरी का पुत्र हीरे को लेकर बाजार गया और एक अच्छा पारखी उसके बदले में अपनी सारी सम्पत्ति देने को तैयार हो गया। उसने अपनी तीन दुकानें बारी-बारी से खोल कर लड़के को दिखायी और शर्त रखी कि पहली दुकान में 15 मिनट, दूसरी में अगले 35 मिनट और तीसरी में अगले 10 मिनट खड़े रह कर देखने तथा सामान को हाथ लगाने की छूट दी जायेगी। जिस-जिस चीज को वह हाथ लगायेगा, वह-वह चीज उसके घर भिजवा दी जायेगी। इसके बाद दूर देश से दूसरे सौदागर आने वाले हैं, उनके साथ व्यापार की बातें करनी हैं इसलिए कुल 60 मिनट में उसे सौदा पूरा कर लेना है।

लड़के ने हाँ में सिर हिलाया और पहली दुकान में घुस गया। उसने देखा कि दुकान बहुत सजी हुई है। उसमें लाखों रूपये का एक-एक हीरा रखा हुआ है। कई बक्से पड़े हुए हैं, जो चमक रहें है। हीरा तो दूर रहा, उसने ऐसा बक्सा भी नहीं देखा था। वह चकरा गया। उसके साथ एक आदमी था, जो घड़ी में समय देख रहा था। उसने कहा कि देखा, पाँच निमट हो गए हैं। लड़का बोला-ठहर-ठहर , हल्ला मत कर! पन्द्रह निमट बाद तो यहाँ रहने देंगें नहीं, इसलिए अच्छी तरह से देख लूँ। देखते-देखते पन्द्रह मिनट हो गए पर देखने की लालसा अभी भी अधूरी ही थी। साथी आदमी बोला कि बस, समय पूरा हो गया है, अब बाहर निकलो। अब इसमें से कोई वस्तु छू भी नहीं सकते हो, एक दाना भी ले नहीं सकते हो। लड़का बाहर निकल गया। उसे थोड़ा दुःख हुआ परन्तु तुरन्त दूसरी दुकान के भीतर जाकर वहाँ की विलक्षण सजावट को देख कर पहली दुकान से निकलने का दुःख भूल गया। वह सोचने लगा कि यह तो कोई अजायबघर है। उसमें खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने आदि की सैकड़ो वस्तुएँ थी। तरह-तरह की सवारियाँ थीं। तरह-तरह का नाच-बाना हो रहा था। शब्द, स्पर्श, रूप , रस और गन्ध इन पाँचों विषयों की तरह-तरह की चीजें वहाँ मौजूद थीं। वह उन चीजों में मस्त हो गया। कभी वह मोटर पर चढ़ता, कभी बग्घी पर चढ़ता, कभी झूला झूलता, कभी नाटक देखता, कभी सिनेमा देखता। लड़के ने पूछा कि क्या दुकान आगे और लम्बी है? वह आदमी बोला कि हाँ, आगे दुकान बहुत लम्बी तथा ज्यादा सुन्दर है। लड़का ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों अधिक सुन्दरता दिखती गयी। साथ में जो आदमी था वह समय बताता रहा कि अब पाँच निमट हो गए, अब 10 मिनट हो गए। पर लड़के ने सोचा कि अभी तो आँखों को तृप्त कर लें। बाद की बाद में देखी जायेगी। इस प्रकार, दखेते-देखते पैंतीस मिनट पूरे हो गए और वह इस दुकान से भी बाहर निकाल दिया गया। पुनः थोड़ा दुःख उसे हुआ पर तीसरी दुकाने के आकर्षण ने दुःख को कम कर दिया। तीसरी दुकान में कई प्रकार के मान-सम्मान के साधन, आराम के गद्दे- बिस्तर, सेवा करने वाले नौकर तथा खुशबू और संगीत आदि के भिन्न-भिन्न आकर्षक पदार्थ थे। वह कभी बिस्तर पर उछलता, कभी सोफे पर

कूदता, कभी खुशबू अपने पर छिड़कता, कभी संगीत का आनन्द लेता। साथ वाले आदमी ने कहा कि देखो, पहली दुकान गयी, दूसरी दुकान भी गयी और अब तीसरी दुकान भी जा रही है। अब समय बहुत थोड़ा बचा है। अब जल्दी सम्भल जाओ। जो लेना है ले लो, नहीं तो दुकान से निकलते-निकलते समय पूरा हो जायेगा। यही हुआ, समय पूरा हो गया। उसे बाहर की ओर धकेला गया। दुकान से निकलते समय उसे बड़ा मानसिक कष्ट हुआ। वह माथे पर क्रोध के भाव लेकर बाहर आया। दुाकन के मालिक ने हीरा अपने पास रख लेने की शर्त पहले ही रख दी थी। इसलिए लड़का खाली हाथ वापस लौट गया।

असन्तुष्टता दुःख का कारण

एक बार एक मालिक ने 100 रू. प्रतिदिन के हिसाब से 4 मजदूरों को काम पर लगाया जो सुबह 8 बजे काम पर आते थे और सायंकाल 5 बजे जाते थे। प्रतिदिन दोपहर एक घण्टे की छुट्टी मिलती थी। ये मजदूर नौकरी पाकर खुश थे और बड़ी सन्तुष्टता के साथ कार्य कर रहे थे। कुछ दिन के बाद मालिक ने 4 और मजदूरों को काम पर लगाया जो दोपहर 12 बजे काम पर आते थे और सायं 5 बजे जाते थे। उन्हें भी प्रतिदिन सौ रूपये ही मिलते थे। सुबह आने वाले मजदूरों ने एक-दो दिन तो यह सब देखा फिर उनमें कानाफूसी शुरू हो गयी कि हम 8 घण्टा काम करके भी सौ ही रूपये प्राप्त करते हैं और ये मजदूर केवल 5 घण्टा काम करते है परन्तु पाते है पूरे सौ रूपये। ऐसा क्यों?

धीरे-धीरे यह कानाफूसी जोर पकड़ती गयी। वे अपना काम करते-करते भी बीच-बीच में उन दूसरे मजदूरों को देखने लगे और काम से उनका ध्यान हटने लगा, असन्तुष्टता जीवन में छाने लगी, एकाग्रता भंग हो गयी और उनके कार्य में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ निकलने लगीं। पहले जिनके कार्य की सर्वत्र प्रशंसा हो रही थी, अब उन्हीं के कार्य को असन्तोषजनक कहा जाने लगा। इस असन्तोष का कारण है तुलना। जब तक तुलना नहीं कि किसी के साथ, पहले वाले मजदूर धन्य थे परन्तु दूसरे मजदूरों से तुलना करके, अपने पलड़े को हल्का पाकर उनके श्रम में कमी हो गयी और पारिश्रमिक भी कम नजर आने लगा।

ऐसा ही आज मानव जीवन में भी हो रहा है। व्यक्ति के पास कोई कमी नहीं है परन्तु दूसरे से तुलना करने पर कई कमियाँ निकल ही आती है। तुलना करने के बजाये यदि दूसरे की भौतिक प्राप्तियों को तूल (महत्व) ना दिया जाये तो इस समस्या का समाधान हो सकता है।

सुपात्र को दान करें

एक राजा बहुत दानी था। शरीर छोड़ने पर जब धर्मराज के समाने उपस्थित हुआ तो चित्रगुप्त ने बताया कि राजा के खाते में लाखों मछलियाँ मारने का पाप लिखा है। राजा ने कहा मैं तो शाकाहारी था और मैंने कभी मछली को हाथ भी नहीं लगाया। तब चित्रगुप्त ने बताया कि अपके राज्य के एक मछुवारे ने आपके दान के पैसों से मछली पकड़ने वाले जाल की नई जाली खरीदी थी। परिणाम स्वरूप आपके खाते में दान-पुण्य जमा नहीं हुआ बल्कि पाप का खाता ही बढ़ गया। इस तरह से सेवा और जमा के खाते में जो फर्क रह जाता है उसे समझा जा सकता है। अर्थात् दान हमेशा सुपात्र को दें।

समाने की शक्ति को अपनायें

एक परिवार में उच्च कुल की बहू आई । उसने पहले दिन भोजन बनाया पर नमक थोड़ा ज्यादा पड़ गया। घर के अनेक सदस्य भोजन करने आये। हरेक ने एक-दूसरे से यही पूछा कि आज भोजन किसने बनाया। सास ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया- भोजन तो मैंने ही बनाया है। अन्दर कमरे में बहू सब बातें सुन रही थी। वे बड़ी गम्भीर हो गयी, उसका दिल सास के लिए कृतज्ञता से भर गया। वह सोचने लगी कि मेरी सास का मेरे से कितना प्यार है जो सबके सामने मुझे अपमानित होने से बचा लिया। वह गद्गद हृदय से सदा के लिए अपनी सास की ऋणी और सहयोगी बन गयी। तो देखिए, किसी के अवगुण को समा लेने से कितना बड़ा फायदा हो गया। सास ने बहू का दिल जीत लिया। सदा के लिए उसे अपना बना लिया। जो कार्य बड़ी से बड़ी भौतिक सम्पदा नहीं कर सकती वह कार्य एक गुण ने कर दिया।

कहा जाता है कि सदगुण धन से भी ज्यादा कीमती हैं। कई कार्य सदगुण की बदौलत सिद्ध हो जाते हैं। जहाँ सदगुण हैं वहाँ धन का अभाव भी अभाव नहीं लगता है। धन भी सदगुण का ही पीछा करता हे और सर्व प्रकार के सुख और शान्ति सदगुण के आने से आ जाते हैं।

दान दो, धनवान बनो

धनपतराय करोड़पति सेठ थे, पर स्वभाव से बड़े कंजूस। उनकी पत्नी थी सुमति। वह शीलवान, दयालु, सहनशील तथा दानी स्वभाव की थी। उसने दाता का गुण अपनी माँ से सीखा था। सेठ जी जब काम-धन्धे पर जाते थे तब सुमति दीन-दु:खी की मदद करती, गरीबों की सहायता करती, बच्चों को पढ़ाती, साधु-महात्माओं को खिलाती-पिलाती, दान-दक्षिणा देती। वह भूखे को अपने पेट की रोटी भी दान दे देती थी। सुसंस्कारी थी। कभी-कभार धनपतरासय को पता चलता तो वह उसे खूब डाँटता-‘‘

तुम तो बड़ी खर्चीली हो, मैं दिन-रात मेहनत करता और तुम खर्च करती रहती। सेठ जी को धनवान बनने की लालसा थी। ‘‘ सोने की चारपई पर लेटा हुआ हूँ, सोने की थाली में खाना खा रहा हूँ‘‘- इसके वे दिन-रात स्वप्न देखा करते थे। और यही कारण था कि वे दिन-प्रतिदनि पाई-पाई जुटाकर पूँजी को बढ़ाने में व्यस्त रहते थे।

एक दिन सेठ जी बाहर गये हुये थे। सुमति अकेली घर में थी। द्वार पर एक साधु-महात्मा आये। दिव्य ज्ञान से उनका मस्तक चमक रहा था, पवित्रता की सुगन्ध सर्वत्र फैल रही थी। सुमति ने आदरपूर्वक उन्हें घर में बुलाया और अपने लिए बनाया हुआ भोजन तथा मिठाईयाँ आदि खिलायीं। रूचिकर भोजन खाकर साधु सन्तुष्ट हुए। वह उन्हें दक्षिणा देने जा ही रही थी कि उतने में सेठ जी ने घर में प्रवेश किया। सेठ जी आग-बबूला हो उठे। उन्होंने पत्नी को डाँटना शुरू किया-‘‘ पता नहीं तुम्हारी बुद्धि कैसी भ्रष्ट हुयी है, मैं मेहनत करता हूँ और तुम इन लफंगे ढोंगी साधुओं को खिलाकर लुटाती रहती हो। इन दर-दर भटकने वालों का क्या भरोसा? तुम कहीं मेरा धर न लुटा दो।‘‘ बहुत भली-बुरी सुनाकर सेठजी ने साधु को निकालना चाहा। पर साधु जी शांत मुद्रा में खड़े थे। सारी स्थिति को भली-भाँति समझ चुके थे। साधु जी ने कहा-‘‘ सेठ जी! क्या तुम्हें धनवान बनने की इच्छा है? धन, सोना और रत्नों को पाने की इच्छाहै? सेठ जी बोले-हाँ, मैं सोने की चारपाई पर चैन की नींद सोना चाहता हूँ। साधु ने कहा-‘‘ मैं भोजन कर प्रसन्न हुआ। तुम्हें जो चाहे दे सकता हूँ।‘‘ धनपतराय जी का मन ललचा उठा। उन्होंने कहा- उपाय बताओ महाराज। साधु ने अपनी झोली से एक छोटा बीज निकाला और सेठ जी को देते हुए कहा-‘‘ ये बीज तुम्हें सच्चे रत्न देगा(सेठजी बड़े खुश हो रहे थे), इस बीज को घर के पीछे बगीचे में लगाना। नित्य नियम से पानी देना। हीरे-रत्नों के फल लगेंगे। लेकिन यह याद रहे कि यह बीज तब फलीभूत होगा जब तुम सबके सहयोगी बन मदद करोगे, सबकी सेवा करोगे। सबको सम दृष्टि से देख उनसे व्यवहार करोगे। दान करोगे। जितना सत्कर्म करोगे, प्रभु चिन्तन करोगे उतने ही जल्दी फल लगेंगे। इस बीज को प्रतिदिन शुभ-भावना रूपी जल से सींचना तो सहज फल मिलेंगे, अन्यथा नहीं।

सेठ जी बीज बोया। सच, एक दिन पौधा भी निकल आया। उन्हें आश्चर्य हुआ तथा विश्वास भी। अब वे साधु की हर एक बात का ध्यान रखने लगे। उन्होंने रोज सत्कर्म करना, सबके प्रति शुभ भावना रखना शुरू किया। सबकी मदद कर उन्हें सुख देने लगे। असहाय की सहायता कर उनकी दुआयें लेने लगे। हरेक केप्रति आत्मीयता उनके मन में जगने लगी। सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करने लगे। उन्हें लगता- अब तो जल्दी ही मैं धनवान हो जाऊँगा। उनमें परिवर्तन देख सब खुश हो उन्हें दुआयें देते। दुआओं को पाकर सेठ जी शांति का अनुभव करते। शनै:शनै: सेठ जी की धन इकट्ठा करने की लालसा क्षीण होती गयी और दान करने की इच्छा दिनोंदिन बढ़ने लगी। अब वे तृप्त

थे और समझ चुके थे कि सच्चे रत्न से धनवान मैं बन गया हूँ। ये तो साधु की युक्ति थी मुझे शिक्षा देने की। सन्तुष्टता, शान्ति पाकर अपने को अब धन्य-धन्य महसूस कर रहे थे।

सच्चे दिल से प्रभु समर्पण हो

एक बार एक लकड़हारा अपनी प्यास बुझाने के लिए कुंए में झाँका तो वह आश्चर्य नजरों से कुंए में देखता ही रह गया। वह अपनी प्यास भी भूलकर आश्चर्यचकित हो गया, उसने देखा- एक सन्यासी जंजीरों के सहारे कुए में उल्टा लटका हुआ है। उसने लोहे की मजबूत जंजीरों से अपने पैरों को बाँधा हुआ है। श्राप के भय से भयभीत होते भी लकड़हारे ने सन्यासी से पूछने का साहस किया।

लकड़हारा-''महात्म्न! आप क्या कर रहे है?

सन्यासी- '' बेटा, भगवान से मिलने के लिए कठोर तप कर रहा हूँ। मुझसे प्रसन्न होकर एक दिन भगवान अवश्य ही दर्शन देंगे।''

लकड़हारा- क्या ऐसा करने से भगवान प्रसन्न हो जायेंगे''?

सन्यासी- ''हाँ, जब अपने भक्त को अधिक पीड़ामय देखेंगे तो भगवान से सहन नहीं होगा और वे दौड़े चले आयेंगे''।

लकड़हार पानी पीना भूल गया और उसने सोचा कि मैं भी ऐसा ही करूँगा। और उसने घास की रस्सी बाँटी और उस कुँए पर एक लकड़ी रख कर उसमें रस्सी बाँध कर वह लटकने लगा। परन्तु ज्यों ही वह लटका, रस्सी उसका बोझ झेल न सकी और टूट गयी। उसकी आँखें बंद हो गयी परन्तु अगल ही क्षण अपने आपको भगवान की बाँहों में पाया। अब उसकी खुशी का परावार नहीं था। उसी क्षण भगवान ने उस सन्यासी को भी दर्शन दिये।

सन्यासी ने प्रभु से प्रश्न किया? '' मैं इतने दिन से तपस्या कर रहा हूँ। मुझे आपने बहुत दिन बाद दर्शन दिये और उस लकड़हारे को अभी-अभी आपने अपनी बाहों में थाम लिया।''

प्रभु मुस्करायें। बोले- '' भक्त, तुम पूरे इन्तजाम से कुंए में लटके थे। ताकि तुम गिर न सको। परन्तु वह लवड़हारा पूर्णतया मुझ पर समर्पण हो चुँका था। उसने यह सोचा ही नहीं कि मेरा क्या होगा। इसलिए उसकी भक्ति श्रेष्ठ है। तुम में अपनेपन का मान था, वह सर्वस्व न्यौछावर कर चुका था।''

स्वावलम्बन की श्रेष्ठता

ग्रीस में किलेंथिस नामक एक बालक एथेंस के तत्वेत्ता जीनों की पाठशाला में पढ़ता था। किलेंथिस बहुत ही गरीब था। उसके बदन पर पूरे कपड़े भी नहीं थे, पर पाठशाला में प्रतिदिन जो फीस देनी पड़ती थी, उसे किलेंथिस रोज नियम से देता था। पढ़ने में वह इतना तेज था कि दूसरे सब विद्यार्थी उससे ईर्ष्या करते थे। कुछ लोंगों ने यह संदेह किया कि किलेंथिस जो दैनिक फीस के पैसे देता है, वो कहीं से चुराकर लाता होगा, क्योंकि उसके पास तो फटे चिथड़ों के सिवाय और कुछ है नहीं। आखिकार उन्होंने उसे चोर बताकर पकड़वा दिया। मामला अदालत में गया। किलेंथिस ने निर्भयता के साथ हाकिम से कहा कि मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ। मुझ पर चोरी के सर्वथा झूठा दोष लगाया गया है। मैं अपने इस ब्यान के समर्थन में दो गवाह पेश करना चाहता हूँ। ग्वाह बुलाये गये। पहला गवाह था एक माली। उसने कहा, यह बालक प्रतिदिन मेरे बगीचे में आकर कुँए से पानी खींचता है और इसके लिये इसे कुछ पैसे मजदूरी के रूप में दे दिये जाते है। दूसरी गवाही में एक बुढ़िया आयी। उसने कहा, मैं बूढ़ी हूँ। मेरे घर में कोई पीसने वाला नहीं है। यह बालक प्रतिदिन मेरे घर पर आटा पीस जाता है और बदले में अपनी मजदूरी के पैसे ले जाता है। इस प्रकार शारीरिक परिश्रम करके किलेंथिस कुछ पैसे प्रतिदिन कमाता है और उसी से अपना निर्वाह करता है तथा पाठशाला की फीस भी भरता है। किलेंथिस की इस नेक कमाई की बात सुनकर हाकिम बहुत प्रसन्न हुए और उन्होनें उसे इतनी सहायता देनी चाही कि जिससे उसको पढ़ने के लिए मजदूरी नहीं करनी पड़े, परन्तु उसने सहायता स्वीकार नहीं की और कहा,मैं स्वयं परिश्रम करके ही पढ़ना चाहता हूँ। किसी से दान लेने के स्थान पर स्वावलम्बी बनकर आगे बढ़ना ही मेरे माता-पिता ने मुझे सिखाया है।'' बाल्यकाल के जीवन में समाविष्ट ये संस्कार ही व्यक्ति को आगे चलकर महामानव बनाते हैं तथा ऐसे लोग ही आगे चलकर श्रेष्ठ नागरिक बनते हैं।

अहंकार

बहुत पुरानी बात है। दो मित्र पाठशाला में साथ-साथ पढ़े और बड़े हुए, पर प्रालब्ध की बात, एक तो राजा हो गया, दूसरा फकीर। राजा राजमहल में रहने लगा और फकीर गाँव-गाँव भटकने लगा। राजा अपने प्रशासन के कारण और फकीर अपनी त्याग-तपस्या के कारण विख्यात हो गये। एक बार वह फकीर राजधानी में आया, राजा को पता लगा। वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि उसका मित्र आया है। उसने उसके स्वागत की अच्छी व्यवस्था की। महल सजाया। नगर में दीपावली करने का हुक्म दिया। जब फकीर अपने राजा मित्र से मिलने चला, तो लोगों ने बहका दिया कि राजा बड़ा अहंकारी है। तुम्हें

अपने वैभव दिखाना चाहता है। अपनी अकड़ दिखाना चाहता है। वह तुम्हें दिखाना चाहता है कि देखो, तुम क्या हो? एक नंगे फकीर। उस फकीर ने कहा- देख लेंगे, उसकी अकड़।

फकीर जब राजमहल के द्वार पर पहुँचा, तो राजा और उसका समस्त मंत्रीमंडल फकीर के स्वागत के लिए उपस्थित हुआ। राजा ने देखा कि वर्षा के दिन तो नहीं हैं, फकीर के घुटनों तक कीचड़ लगी है। राजा क्या कहता, वह फकीर को लेकर अंदर गया तो उसके सारे बहुमूल्य गद्दे-गलीचे गंदे हो गये।

राजा को बुरा लगा, जब एकांत हुआ तब उसने फकीर से पूछा-मित्र मैं हैरान हूँ। वर्षा का तो समय नहीं, रास्ते सूखे पड़े हैं, पर तुम्हारे पैरों पर इतनी कीचड़ कहाँ से लग गई? तब फकीर ने उत्तर दिया-अगर तुम अपने वैभव की अकड़ दिखाना चाहते हो, तो हम भी अपनी फकीरी दिखाना चाहते हैं। उत्तर सुनकर राजा हंसा, बेला-मित्र, आओ गले लग जायें, क्योंकि मैं कहीं पहुँचा, न तुम कहीं पहुँचे। हम दोनों वहीं के वहीं है, जहाँ पहले थे।

एक में धन की अकड़ थी, तो दूसरे में त्याग की। पर राजा के उद्धार की संभावना तो थी, फकीर की नहीं। क्योंकि जो अपनी गलती जान लेता है, हृदय से मान लेता है, वह सुधर सकता है।

अपकारी पर भी उपकार करें

महाराज रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे। साथ ही बहुत से अमीर-उमराव व अंग-रक्षक थे। इतने बड़े काफिले के होते हुये भी अचानक एक पत्थर महाराज के सिर पर आकर लगा। उनका सिर फट गया और वे लहू-लुहान हो गये। इस अप्रत्याशित घटना से चारों तरफ अफरा-तफरी मच गयी। तुरंत पत्थर मारने वाले को ढूँढ़ने के लिय सैनिक इधर-उधर घोड़े दौड़ाने लगे।

थोड़ी देर में दो सिपाही एक मरियल से बूढ़े और एक पतले-दुबले लड़के को पकड़कर महाराज के सामने लाये। बूढ़ा भय से थर-थर काँप रहा था। बड़ी कठिनाई से वह कह पाया- मैं बे कसूर हूँ महाराज! मैं तो अपने बच्चे की भूख मिटाने के लिए कुछ तोड़ना चाहता था। महाराज ने बूढ़े को सांत्वना दी- 'घबराओ मत बाबा। अपनी बात आराम से कहो।'

'महाराज, यही पत्थर यदि आम की डाली को लग जाता तो मैं आम पा जाता, पर पत्थर आम को न लग कर आपको लग गया,मैं अपने किये की क्षमा चाहता हूँ।' 'बाबा, यदि तुम्हारा पत्थर आम को लगता तो तुम्हें और तुम्हारे बच्चे को आम खाने को मिल जाता न?' हाँ महाराज!' बूढ़े ने काँपती आवाज में कहा। ' किन्तु अब तो तुम्हारा पत्थर महाराज रणजीत सिंह हो लगा है, वह वृक्ष से गया-बीता नहीं है। तुम्हें और तुम्हारे बेटे को स्वादिष्ट भोजन, फल और मिष्ठान खाने को मिलेगा।' बूढ़ा

भौंचक! अमीर-उमराव सन्न! अंगरक्षक हैरान! किन्तु महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान खिल रही थी। महाराज ने आज्ञा दी-' इस बूढ़े को साल भर खाने-पीने योग्य अन्न दिया जाये और पाँच हजार रूपया नगद! यह दूसरा आश्चर्य था।

एम अमीर ने तो पूछ ही लिया-' यह आप क्या कर रहे हैं, महाराज! अपराधी को सजा की बजाय पुरस्कार दे रहे हैं? 'पंजाब केशरी' ने शांत भाव से कहा-'अरे भाई, जब निर्जीव पेड़ पत्थर की मार सह कर भी लोंगो को मीठा फल देता है फिर हम तो चैतन्य इंसान हैं, जीवमंडल के सर्वोच्च प्राणी हैं। हमें चाहे लोग जाने-अनजाने लाख भला-बुरा कहें, चोट पहुँचाये, हमारे मार्ग में बाधा उत्पन्न करें लेकिन हमें सबका कल्याण करना चाहिए, सबको सुख देना चाहिए। मित्र, महान बनना है तो वृक्ष से कुछ सीखो।'

परिश्रम का चमत्कार

चन्द्रपुर गाँव में एक धनी किसान रहता था। उसके दो बेटे थे। मरते समय उसने दोनों बेटों को बराबर-बराबर संपत्ति बांट दी और सीख देते हुए कहा कि तुम दोनों हमेशा अच्छे से अच्छा खाना खाने की कोशिश करना। इसी से तुम हमेशा मेरी तरह धनी व सुखी रह सकोगे। किसान के मरने के बाद छोटे भाई ने बड़े भाई से कहा-''भैया, चलो किसी बड़े शहर में चलकर रहते हैं। वहीं हमें अच्छे से अच्छा खाना मिल सकता है। बड़े भाई ने कहा-अगर तुम चाहो तो शहर जा सकते हो, मैं यहीं गाँव में रहूँगा और जो अच्छे से अच्दा खाना यहाँ मिलेगा, वही खाऊँगा।

छोटे ने अपनी जमीन-जायदाद बेची और सारा पैसा लेकर शहर चला गया। शहर में उसने बड़ा सा घर लिया। अच्छे से अच्छे रसोइये व नौकर रखे, उनसे अच्छे से अच्छा खाना बनवाकर खाने लगा और आराम से रहने लगा। सोचने लगा कि अब वह जल्दी ही अपने पिता की तरह धनी और सुखी हो जायेगा। लेकिन हुआ उसका उल्टा। जल्दी ही उसका सारा पैसा खत्म हो गया और फिर सारा सामान व मकान भी बिक गया। अत: उसे गाँव में लौटना पड़ा।

गाँव आकर उसने देखा कि उसका बड़ा भाई बहुत धनी हो गया है। उसने कहा-भैया, मुझे वह खाना दिखाओ, जिसे खाकर तुम इतने धनी हो गये। मैंने अच्छे से अच्छा खाना खाया फिर भी कंगाल हो गया। खाना दिखाना क्या? मैं तुम्हें खिलाऊँगा भी। लेकिन चलो पहले खेत पर चलें। बड़े भाई ने कहा और उसे खेत पर ले गया। वह खेत पर काम करने लगा और छोटे को भी काम पर लगा दिया। काम करते-करते घंटों बीत गये। पसीने से लथपथ बेहद थके और भूख-प्यास से व्याकुल छोटे भाई ने कहा-'भैया, बहुत देर हो गयी काम करते-करते। मेरे हाथ पैर जवाब दे रहे हैं। अब तो अपना वह

अच्छे से खाना खिलाइये। थोड़ा सा काम और बाकी था, खैर छोड़ो, कहकर बड़े ने काम बंद कर दिया। हाथ पैर धोये और पेड़ की छाया में बैठ गया। फिर पोटली खोली और उसमें से रोटी निकालकर एक खुद ने ली और दूसरी छोटे भाई को दी। छोटे का भूख के मारे तो बुरा हाल था। वह फौरन उस मोटी सी सूखी रोटी पर टूट पड़ा। भूख के मारे उसे वह रोटी छप्पन भोग की तरह लग रही थी। बड़े ने पूछा, कहो रोटी का स्वाद कैसा है?

बहुत अच्छा, बहुत अच्छा- कहकर उसने पूरी रोटी खत्म कर दी। इस रोटी से मुझे में जरा सी जान आयी। अब चलिये, घर चलकर मुझे अपना अच्छा खाना भी खिलाइये। यही तो वह सबसे अच्छा खाना है, क्यों तुम्हें अच्छा नहीं लगा? बड़े ने कहा, रोटी तो बहुत स्वादिष्ट लगी, लेकिन क्या यही आपका अच्छा खाना है? आश्चर्य से छोटे भाई ने पूछा। मेरे प्यारे भाई, मेहनत करने के बाद कड़कड़ाकर भूख लगने पर खाया गया खाना ही दुनियाँ का सबसे अच्छा खाना होता है। इसी अच्छे खाने से सदा धनी ओर सुखी रहा जा सकता है। पिताजी के कहने का यही मतलब था।

जहाँ प्रेम है, वहाँ सब कुछ है

एक बार प्रेम स्वरूप, यशपाल व धनदेव नामक तीन साधु एक गृहस्थ परिवार में पधारे। उनमें से एक जोर की आवाज में बोला- अलख निरंजन। इतने में अंदर से एक माता निकल कर आयी और तीनों महात्माओं ने अपना परिचय दिया कि हम बहुत दूर पहाड़ों से तपस्या करके आये हैं। तीनों में से किसी एक को अंदर बिठाकर विधिवत भोजन स्वीकार करायें तो आपके सभी मनोरथ पूरे हो जायेंगे। हमारे में एक का नाम धनदेव हैं, यशपाल दूसरे का नाम है और तीसरे का नाम है प्रेमस्वरूप। अब यह आपकी मर्जी है आप जिसे चाहे अंदर जाने की अनुमति प्रदान करें। तो माता बड़ी खुशी-खुशी अंदर गयी और अपने पति से कहने लगी कि ऐसे-ऐसे तीन महात्मा हमारे दरवाजे पर आयें हैं, जिनके नाम यशपाल, धनदेव एवं प्रेमस्वरूप हैं। तीनों में से किसी एक को आमंत्रित कर अंदर बिठाकर भेजना करना है। अब हम किसको बुलावें? आपका क्या विचार है? पतिदेव ने कहा, पगली इसमें पूछने की क्या बात है। धनदेव को बुलाओ और विधिवत भोजन खिलाओ। अहो भाग्य है, जो धनदेव स्वयं हमारे अतिथि बनकर आयें हैं।

पत्नी बाहर गयी और सोचने लगी कि धनदेव को भोजन खिलाने से मुझे क्या मिलेगा, धन आयेगा तो इन्हीं की जेब में जायेगा। मैं तो यशपाल को निमंत्रण देती हूँ। कम से कम मुझे यश तो मिलेगा। ये तो सारे दिन मुझे ही कोसते रहते हैं।

जैसे ही निमंत्रण देने के लिए गेट पर पहुँची, तो वहाँ उसकी सखी ज्ञानी देवी मिली। उसने पूछा किसको भोजन कराओगी, तो कहा तैं तो यशपाल को कराऊँगी। तो ज्ञानी बहिन ने कहा कि मैं अपना विचार बताऊँ, माता ने कहा बताओ। ज्ञानी बोली-मेरा विचार है, कि तुम प्रेम स्वरूप को निमंत्रण दो, क्योंकि आज सभी को सच्चा प्रेम चाहिए। प्रेम से भरपूर हो जायेंगे, तो परिवार में चारों तरफ खुशहाली आ जायेगी। माता को बात जँच गयी। उसने प्रेम स्वरूप को निमंत्रण दिया कि, प्रेम स्वरूप महाराज आप चलिये। अन्दर भोजन ग्रहण कीजिये। तो जब प्रेम स्वरूप चलने लगे, धनदेव और यशपाल भी चलने लगे। माता ने कहा मैंने तो एक को ही चुना है। तीनों ने कहा कि आपने चुनाव अच्छा किया है। जहाँ प्रेम जायेगा, वहाँ धन भी जायेगा और यश भी जायेगा। कहने का भाव यही है कि यदि प्रेम हैं, तो परिवार, समाज व देश में सब कुछ है। हमें प्रेम की ही सदा खातिरी करनी है।

कला का सम्मान करो

प्रदर्शनी में प्रदर्शित भगवान की उस भव्य मूर्ति को देखने वालों में सम्राट समुद्रगुप्त, उनके महामात्य व अन्य राज्य कर्मचारी भी शामिल थे और सभी एक स्वर में मूर्तिकार के कला-कौशल की हृदय से सराहना कर रहे थे। जब सम्राट ने कलाकार का नाम पूछा तो प्रदर्शनी में सन्नाटा छा गया। कलाकार का नाम किसी को पता ही न था। आश्चर्य की बात थी कि इतना अनोखा कलाकार स्वयं को छिपाये हुए क्यो हैं? काफी खोज-बीन के पश्चात् राज्य कर्मचारी एक काले-कलूटे युवक को पकड़ कर लाये और सम्राट से बोले- महाराज, गजब हो गया! इस शुद्र ने भगवान की पवित्र मूर्ति बनाई। दर्शकों में कुछ ऊँची जाति के लोग भी खड़े थे। वे चिल्लायें-पापम्-शान्तम्! गजब!! महान गजब!!! इस शुद्र को भगवान की मूर्ति गढ़ने का अधिकार किसने दिया। इसके हाथ काट दिये जाने चाहिए। उनकी आवेशपूर्ण बातें सुन कर मूर्तिकार डर के मारे थर-थर काँपने लगा और सम्राट के चरणों में गिर कर क्षमा याचना करने लगा।

सम्राट समुद्रगुप्त ने बड़े प्यार से उसे उठाया और उच्च वर्ण के लोगों की ओर आँखें तरेर कर देखते हुए कहा-छीः! कैसी अन्याय पूर्ण बातें कर रहे हैं आपलोग! भगवान की मूर्ति बनाने वाले इन सुन्दर हाथों के प्रति आप सबको ऐसा निर्णय? आप ऊँचे और कुलीन लोगो से मुझे ऐसी अपेक्षा न थी। तोड़ दो इस ऊँच-नीच की दीवार को, तभी सभी आपस में प्यार से हिल-मिल कर रह पायेंगे, समाज में सुख-शान्ति व समृद्धि आयेगी और सही अर्थो में हम वसुधैव-कुटुम्बकमह की भावना को धरा पर साकार कर पायेंगे। यों कहकर सम्राट ने उस काले शूद्र युवक के हाथ अपने हाथों में लेकर चूम लिए और उसे सबके बीच एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ ईनाम में देते हुए अपना राजमूर्तिकार घोषित कर दिया।

सदाचार ही सम्मान दिलाता है

पुराने समय की बात है। एक राजा का मंत्री बड़ा ही बुद्धिमान, व्यवहार कुशल और ईमानदार था। सारी प्रजा उसकी बुद्धिमता, कर्त्तव्य परायणता एवं श्रेष्ठता के कारण उसका बहुत सम्मान करती थी। राजा भी मंत्री के गुणों पर- उसके आचरण एवं कर्त्तव्यपालन से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट था। राजा एवं प्रजा दोनों के मंत्री पर अटूट श्रद्धा थी। वे सब उसका सम्मान करते थे।

एक दिन यों ही अनायास बैठे राजा के मंत्री के मन में एक प्रश्न उठा कि '' लोग मेरा आदर क्यों करते है? यह प्रश्न उसे परेशान करने लगा। वह व्यग्र हो उठा। वह कभी सोचता ब्राह्मण होने के कारण या मंत्री पद पर नियुक्त होने के कारण अथवा बुद्धिमान व धनवान होने के कारण। पर सही कारण वह जानने को उत्सुक हो उठा। उसे इनमें से कोई भी सही कारण नहीं अनुभव हुआ। अतंत: में उसने विविध प्रकार के प्रयोग इस सत्य को जानने के लिये प्रारम्भ कर दिये। मंत्री के व्यवहार ओर आचरण पर लोग आश्चर्य करने लगे। वे भी नहीं समझ पा रहे थे कि अचानक मंत्री को क्या हो गया है?

एक दिन मंत्री ने एक सेठ की दुकान से उसकी कोई वस्तु बिना पूछे उठा ली और लेकर चला गया। सेठ अत्यधिक आदर करने के कारण यद्यपि चुप रह गया, पर उसे मंत्री महोदय की बात बहुत बुरी लगी।

कुछ दिन बाद मंत्री ने फल के टोकरे से बिना पूछे और बिन मूल्य दिय दो संतरे उठा लिये और बिना मूल्य दिये यों ही चल पड़े। फल वाले को गुस्सा तो बहुत आया पर वह चुप रह गया। सब तरफ मंत्री के कामों की चर्चा होने लगी। पर किसी ने कुछ करने का साहस नहीं बटोरा।

एक दिन ऐसे ही बाजार में एक सर्राफ की दुकान में घुस कर मंत्री ने उसकी अलमारी से हार जो सोने का था और मूल्यवान था। ऐसे ही बिन पूछे और बिना धन दिये लेकर चल दिया। वह दुकानदार दौड़ा उसने मंत्री को पकड़ लिया और कोतवाली में शिकायत कर पकड़वा दिया।

इसकी सूचना राजा को मिली। पहले तो राजा को विश्वास ही नहीं हुआ। फिर कोतवाल ने आकर इसकी पुष्टि की तो राजा को बड़ा दु:ख हुआ। मंत्री को कोतवाली में देखने वालों की भीड़ लग गई। मंत्री उछल-कूद कर चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे पता लग गया, पता लग गया। लोग समझने लगे मंत्री पागल हो गये हैं।

फिर राजा स्वयं जेल में मंत्री को देखने गये। उन्हें स्वयं यह विश्वास नहीं हो रहा था कि हमारे मंत्री ऐसा भी कर सकते हैं। राजा दु:खी थे। मंत्री प्रसन्न था। राजा ने पूछा, '' आपको क्या पता लग

गया? जो आप इतने प्रबल हो उठे हैं। आपको दुकान से चोरी करते शर्म नहीं आई- ग्लानि नहीं हुई। आश्चर्य आप जैसा व्यक्ति इतने पर भी प्रसन्नता अनुभव कर रहा है।

तब मंत्री बोले, ''महाराज मैं आज अभी इसका रहस्य बताता हूँ। आप इस भीड़ को हटवा दें- इन्हें घर जाने को कहें। फिर मैं आपको सब बात समझाकर विस्तार से बाऊँगा।'' राजा ने कोतवाल से कहकर लोगों को घर भिजवा दिया। तब एकान्त होने पर मंत्री ने बताया, ''महाराज, गत तीन महा से मैं बहुत परेशान था। मेरे मन मस्तिष्क में प्रति पल, चौबीसों घण्टें एक प्रश्न उठकर मुझे विक्षिप्त बना देता था। आज वह प्रश्न अब हल हो गया है। अत: मैं सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हूँ।''

राजा बोले, '' मंत्रीवर वह प्रश्न क्या था? और आपने ऐसे घृणित कार्य क्यों किये? तब मंत्री ने बताया, '' महाराज, मेरे मन में प्रश्न उठा कि जनता मेरा इतना सम्मान क्यों करती है? क्या इसलिये कि मैं ब्राह्मण कुल का हूँ या इसलिये कि मैं विद्वान-ज्ञानी हूँ अथवा इसलिये की मैं आपके राज्य का मंत्री हूँ या प्रभावी व्यक्ति हूँ।''

राजा ने पूछा, ''मंत्रीवर, अब आपको क्या उत्तर मिला। आपको क्या पता चल गया? जो बार-बार कह रहे हैं मुझे उत्तर मिल गया।-उत्तर मिल गया।'' तब मंत्री जी ने स्पष्ट किया '' महाराज, मैं मंत्री हूँ (मैंने पद त्यागा नहीं है।) मैं ब्राह्मण भी हूँ। मैं धनी भी हूँ परन्तु फिर भी लोगों ने मुझे, मारा, पीटा, बन्द करवा दिया क्यों? मुझे अब ज्ञान हुआ कि सदाचार (सत् आचरण) ही सम्मान का प्रमुख कारण है। मैंने सदाचार का परित्याग कर दिया। इसी कारण सब कुछ होते हुए भी मैं बन्दी (कैदी) के रूप में आपके सामने खड़ा हूँ।'' राजा प्रसन्न हो उठे। जब प्रजा को यह सत्य ज्ञान हुआ तो वह मंत्री का और अधिक आदर करने लगी। सच है सदाचार से ही मनुष्य सम्मान पाता है।

बुद्धि ही धनवान बनाती है

एक रेल में बचपन के तीन साथी यात्रा कर रहे थे। एक निर्धन था, एक मध्यम वर्ग का और एक धनी परिवार से। साथ में धनी साथी के पिता भी थे। बातें चल निकलीं। निर्धन मित्र बोला कि आप लोग भाग्यशाली हैं जो सुख से रह रहे हैं, मैं तो अभागा ही रह गया। इतने में ट्रेन रूकी। धनी साथी के पिता ने गन्ने खरीदे और तीनों को एक-एक गन्ना दिया। निर्धन ने गन्ना चूसा और डिब्बे में ही छिलके डाल दिये। दूसरे ने चाकू से गन्ना छीला और गंडेरियाँ बना कर चूसी और कचरे को एक अखबार में लपेट कर अगले स्टेशन पर कचरे के डिब्बे में डाल दिया। पर तीसरे मित्र ने गन्ने को चाकू से छीला। छिलकों को एक तरफ रख दिया। गंडेरियाँ चूस कर कचरा पात्र में डाल दीं। सावधानीपूर्वक

छीले गये छिलकों को दो रंगों में रंग कर उसने उनका एक पंखा बना दिया और उसे अगले स्टेशन पर बेच दिया।

यह सारा माजरा धनी साथी के पिता देख रहे थे। उन्होंने कहा कि बेटे! गन्ने तुम तीनों ने चूसे। निर्धन युवक को सम्बोधित करते हुए वे बोले- बेटे तूने गन्ना चूसा पर दूसरों के लिये परेशानी पैदा कर दी। बचपन में तुम तीनों साथ पढ़े, तू नदी किनारे खेलता ही रहा, पढ़ा ही नहीं। दूसरे ने कुछ पढ़ा तो उसने कुछ कमाया भी। उसने गन्ना चूसा पर दूसरे को परेशानी नहीं दी। मेरे बेटे ने गन्ना भी चूसा, मगर किसी को परेशान किये बिना कमाया भी।

श्रेष्ठ कर्मों की पुंजी जमा करें

एक बार एक साधू किसी गरीब किसान के घर रात्रि विश्राम के लिए ठहरा। रात बात-चीत के दौरान उसे पता चला कि यह किसान गरीब है। सन्यासी ने उस किसान से कहा, ''मैं उस प्रदेश को जानता हूँ, जहाँ जमीन कौड़ी के भाव मिलती है और वह जमीन उपजाऊ भी है। तुम यहाँ की जमीन बेचकर वहाँ खरीद लो।'' किसान को वासना जगी, लालच आ गया। सचमुच बात तो सही निकली। गाँव के लोगों ने कहा, तुम सारा पैसा दे दो और सूर्योदय से चलकर सूर्य ढ़लने तक जितनी जमीन घेर सकते हो, घेर लो। शर्त बस एक ही है कि जहाँ से चले थे वहीं तक सूर्य ढ़लने से पहले पहुँच जाना है। कितनी जमीन घेरनी है, कैसे चलना है इसी उधेड़बुन में, योजना बनाने में उसकी सारी रात निकल गयी।

दूसरे दिन नियत जगह से गाँव के लोगों ने खुशी-खुशी उसे विदाई दी। उसने सोचा-चलने से कितनी जमीन मिल सकेगी? क्यों न दौड़ लगाऊँ, दौड़ के साथ उसने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। भागा, और तेज भागा... भागता गया। दिन के 12 बज गये। अब वह दौड़ कर काफी थक गया था। उसने सोचा अब ऐस वापस भी लौटना चाहिए। लेकिन लालच ने उसे आ घेरा। क्योंकि आगे की जमीन और भी अधिक सुन्दर थी। उसने सोचा क्यों न थोड़ा और घेर लें। जिन्दगी भर तो विश्राम ही करना है। लालच वश अपने सामर्थ्य के भूल उसने और तेज दौड़ लगायी। अब तो दिन के दो बज रहे थे...। सूरज ढलान पर था। अब उसे वापस लौटना चाहिए, उसने ऐसा सोचा। पर लौटने की तो उसे इच्छा नहीं हो रही थी। लेकिन लौटना पड़ा। सारे दिन की तेज दौड़ से उसकी सारी ताकत समाप्त हो चुकी थी। फिर भी हिम्मत करके दौड़ा, खाना-पानी भी फेंक दिया। सोचा, इसमें भी थोड़ा समय लगेगा। आज ही तो भूखे रहना है, फिर जिन्दगी भर खाता रहूँगा। सूरज ढलने के समीप था। घबड़ाहट और थकान से उसकी सांसे टूटने लगी थी। अब तो उसे गाँव के लोग भी दिखाई दे रहे थे, तथा उनके

उमंग-उत्साह की आवाज भी उसे सुनाई दे रही थी। अपनी निर्धारित दूरी से कुछ ही फासले पर वह बदकिस्मत किसान गिर गया। घिसटते-घिसटते जब वह निश्चित जगह पर पहुँच ही रहा कि उधर सूरज डूब गया और वह शर्त पूरी नहीं कर सका। आखिरी श्वास ने भी उसका साथ छोड़ दिया । शायद अत्यधिक मेहनत के कारण वह मर गया। सभी लोग आपस में हँसने-बोलने लगे, पागल लोगों की इस दुनिया में कोई कमी नहीं। देखो! कोई भी इस जमीन का मालिक नहीं बन पाता।

यही तो आम लोगों की जिन्दगी की कहानी है। सुबह-दोपहर-शाम, लोग पूरी जिन्दगी दौड़ते रहते हैं। कल जी लेंगे। आज थोड़ा बैंक-बैलेन्स हो जाए। थोड़ी जमीन और घेर लें। कल जियेंगे और कल तक कोई भी नहीं जीता। चाहे वह गरीब हो या अमीर। सभी अतृप्त कामना के साथ ही मर जाते हैं। भरपूर जीवन कोई भी नहीं जीता। इसके लिए चाहिए, थोड़ा विश्राम, थोड़ी शान्ति, थोड़ी समझ और थोड़ा बोध, कि मैं आत्मा हूँ। प्रभु की सन्तान हूँ। शान्ति, आन्नद मेरा स्वभाव है। जगत का समस्त वैभव इन्द्रियों की तृप्ति की सुविधा और आश्वासन तो दे सकता है परन्तु सच्चा सुख नहीं।

प्राण जाय पर प्रण न जाय

अकबर बादशाह की सेना ने राजपूतों ने चित्तौड़गढ़ पर अधिकार कर लिया था। महाराणा प्रताप अरावली पर्वत के वनों में चले गये थे। महाराणा के साथ राजपूत सरदार भी वन एवं पर्वतों में जाकर छिप गये थे। महाराणा और उनके सरदार अवसर मिलते ही मुगल-सैनिकों पर टूट पड़ते और मार-काट मचाकर फिर वनों में छिप जाते थे।

महाराणा प्रताप के सरदारों में से एक सरदार का नाम रघुपति सिंह था। वह बहुत ही वीर था। अकेले ही वह जब चाहे शत्रु की सेना पर धावा बोल देता था और जब तक मुगल-सैनिक सावधान हो, तब तक सैकड़ों को मारकर वन-पर्वतों में भाग जाता था। मुगल सेना रघुपति सिंह के नाम से घबरा उठी थी। मुगलों के सेनापति ने रघुपति सिंह को पकड़ने वाले को बहुत बड़ा इनाम देने की घोषणा कर दी। रघुपति सिंह वनों और पर्वतों में घूमा करता था। एक दिन उसे समाचार मिला कि उसका इकलौता लड़का बहुत बीमार है और घड़ी दो घड़ी में मरने वाला है। रघुपति सिंह का हृदय अपने पुत्र को देखने के लिये व्याकुल हो उठा। वह वन में से घोड़े पर चढ़कर निकला और अपने घर की ओर चल पड़ा। पूरे चित्तौड़ को बादशाह के सैनिकों ने घेर रखा था। प्रत्येक दरवाजे पर बहुत कड़ा पहरा था। पहले दरवाजे पर पहुँचते ही पहरेदार ने कड़क कर पूछा‘कौन हो तुम?‘

रघुपति सिंह झूठ नहीं बोलना चाहता था, उसने अपना नाम बता दिया। इस पर पहरेदार बोला-तुम्हें पकड़ने के लिये सेनापति ने बहुत बड़ा इनाम घोषित किया है, मैं तुम्हें बंदी बनाऊँगा।‘

रघुपति सिंह बोला-' भाई! मेरा लड़का बीमार है। वह मरने ही वाला है। मैं उसे देखने आया हूँ। तुम मुझे अपने लड़के का मुँह देख लेने दो। मैं थोड़ी देर में ही लौटकर तुम्हारे पास आ जाऊँगा।'

पहरेदार सिपाही बोला- यदि तुम मेरे पास न आये तो? रघुपति सिंह ' मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि अवश्य लौट आऊँगा।' पहरेदार ने रघुपति सिंह हो नगर में जाने दिया । वे अपने घर गये। अपनी स्त्री और पुत्र से मिले और उन्हें आश्वासन देकर फिर पहरेदार के पास लौट आये। पहरेदार उन्हें सेनापति के पास ले गया। सेनापति ने सब बातें सुनकर पूछा-'रघुपति सिंह क्या तुम नहीं जानते थे कि पकड़ जाने पर हम तुम्हें फाँसी देंगे? तुम पहरेदार के पास दोबारा क्यों लौट आये? रघुपति सिंह ने कहा-'मैं मरने से नहीं डरता। राजपूत वचन देकर उससे टलते नहीं और किसी के साथ विश्वाघात भी नहीं करते।'

सेनापति रघुपति सिंह की सच्चाई देखकर आश्चर्य में पड़ गया। उसने पहरेदार को आज्ञा दी-' रघुपति सिंह को छोड़ दो। ऐसे सच्चे वीर को मार देना मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता।'

श्रेष्ठ विचार ही विजय दिलाता है

भारत के एक नगर में एक अत्यन्त बुद्धिमान राजा राज्य करता था। वह कोई भी कार्य करता, उसको भली-भाँति सोच-समझ कर उस कर्म का परिणाम सोच कर ही करता। उसकी निर्णय शक्ति परख शक्ति बहुत प्रबल थी। शहर के बहुत से लोग उससे अपनी घरेलू समस्याओं का समाधान लेने आया करते। वह अपनी बुद्धिमता से सभी को सन्तुष्ट करके भेजा करता। इस प्रकार पूरे नगर में वह इस विशेषता के कारण प्रसिद्ध हो चुका था।

दिन बीतते गये, समय गुजरता गया और वह बहुत बूढ़ा हो गया। परन्तु उसकी बुद्धि क्षीण नहीं हुई। दिनोंदिन वह अधिकाधिक अनुभवी हो गया था। उस राजा के तीन पुत्र थे परन्तु तीनों पुत्रों में रात-दिन का अन्तर था। तीनों बेटे एक ही महौल में पले थे, परन्तु, जैसा कि हम जानते हैं एक आत्मा का संस्कार हुबहू दूसरी आत्मा से मिल नहीं सकता, इसी अनुरूप वे भी एक-दूसरे से एकदम भिन्न थे। बूढ़े राजा के सामने एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ। वह सोचता था कि मरने से पहले ही इन सबों को अपना-अपना कार्य-भार सौंप दूँ ताकि मैं निश्चिन्त हो इस संसार सें विदा ले सकूँ। परन्तु प्रश्न था कि किसको उत्तराधिकारी बनाया जाये। वह तीनों में से किसी को नाराज भी नहीं करना चाहता था परन्तु बुद्धिहीन बेटे को राज्य-अधिकारी भी नहीं बनाना चाहता था।

विचार करने पर उसको एक युक्ति सूझी। उसने तीनों बेटों को अपने पास बुलाया और कहा-'' देखो, मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। इस दुनियाँ में चन्द ही रोज का मेहमान हूँ। इस संसार से जाने से पहले मैं चाहता हूँ कि आप तीनों में से एक को राज्य-अधिकारी बना दिया जाये।''

तीनों बेटे बहुत ध्यान पूर्वक अपने पिता की बात सुन रहे थे। पिता ने उनको शान्त मुद्रा में देख अपनी बात को आगे बढ़ाते हुये कहा, '' मैं बुद्धिमता, समझ और सूझ-बूझ के हिसाब से ही यह निर्णय करना चाहता हूँ।'' यह कहकर राजा ने उन तीनों को सौ-सौ रूपये दिये और कहा कि '' घर के पिछले भाग में जो तीन बड़े-बडे.कमरे खाली पड़े हैं, आप तीनों को उन कमरों को इस सौ-सौ रूपये के लाये गए सामान से भरना है। जिसका ढ़ंग सबसे अच्छा होगा, उसे ही राज्य-अधिकरी नियुक्त किया जायेगा।

फिर पिता ने आगे कहा कि'' आप तीनों को एक सप्ताह का समय देता हूँ। उस दौरान आप सोच लेना कि आप अपने-अपने कमरे को किस-किस चीज से भरे।'' तीनों पुत्रों ने हामी भरी और सौ-सौ रूपये लेकर अपने-अपने कमरे में चले गये। एक सप्ताह बीतते समय भी न लगा। वे तीनों अपना कार्य पूरा कर चुके थे और सोच रहे थे कि देखें आज फैसला किसके हक में होता है।

कुछ ही देर में पिता ने उन तीनों को बुलवा भेजा और कहा-'' चलो, अपना-अपना कमरा दिखाओ कि तुमने उसे किस वस्तु से भरा है।'' सब घर के पिछले भाग की ओर बढ़ चले। सबसे पहले पिता ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को कहा कि खोल कर दिखाओ, तुम्हारा कमरा किस प्रकार से भरा हुआ है। पुत्र ने जब कमरा खोला तो गली-सड़ी चीजों की बदबू से दम -सा घुटने लगा। उसने सोचा था कि सौ रूपये में ऐसा कौन-सा सामान आ सकता है जिससे इतना बड़ा कमरा भर जाये। उसे कुछ और न सूझा तो वह रद्दी बाजार से 100 रूपये में गला-सड़ा सामान भर ले आया और कमरा उससे भर दिया। पुत्र की बेसमझी पर वह बुद्धिमान राजा बहुत ही शर्मिन्दा हो रहा था और पुत्र इस नशे में था कि मैंने 100 रूपये में कमरा भर दिखाया।

अब दूसरे बेटे की बारी थी। पिता ने अब उसे आज्ञा दी कि वह अपना कमरा खोल कर दिखाये। उस ने अपनी समझ के अनुसार सारा कमरा गाय-भैंस को डालने वाले घास-भूसा और चारे से भर दिया था। सारा कमरा इस कदर भरा हुआ था कि उसके अन्दर कोई जा भी नहीं सकता था लेकिन फिर भी वह पहले कमरे से बेहतर था।

छोटा बेटा तो पहले से ही तैयार था। इसी इन्तजार में था कि पिताजी मुझे आज्ञा करें और मैं दरवाजा खोलूँ। पिताजी की आज्ञा मिलते ही उसने झट दरवाजा खोला। आ..हा.. सारा कमरा प्रकाश से व अगरबतत्ती की भीनी-भीनी सुगन्ध से महक रहा था। इस बेटे ने कमरे में 4-5 स्थानों पर दीपक और अगरबत्तियाँ जला कर रख दी थी जिससे सारा कमरा प्रकाशित था और सुगन्ध से भरपूर था।

100 रूपये में से थोड़े रूपयों का ही यह सामान आया था। बाकी बचे हुए पैसों में से वह 2-3 चटाईयों और कुछ फल आदि खरीद लाया था। उसने अपने पिता और दोनों भाईयों को कमरे में प्रवेश करने को कहा और सबके लिए फल काट कर खिलाया। पिता ने अब अपने पहले दोनों बेटों की ओर मुड़कर देखा। दोनों की गर्दन शर्म से झुकी हुई थी। पिता ने उनसे कहा, तुम ही बताओ कि मुझे क्या पैसला करना चाहिए। दोनों बेटों ने कहा-'' पिताजी, हम बहुत शर्मिन्दा हैं। पैसला तो स्पष्ट ही है'' फिर छोटे भाई की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा-'' राज्य-अधिकारी इसी को ही बनाया जाना चाहिए। अपनी बुद्धिमता के कारण ही इसने विजय प्राप्त की है।'' यह सुनकर पिता ने घर की चाबियाँ छोटे बेटे के हाथ में सौंप दी और कहा-'' बस, अब तुम सब संभालो। मैं अपना अन्तिम समय प्रभु-भजन में व्यतीत करुँगा।''

माया का झूठा बंधन

ऊँटो के काफिले को चलते-चलते शाम पड़ गई, सामने एक गाँव नजर आ रहा था, रात्रि व्यतीत करने के विचार से काफिला गाँव की ओर चल दिया। वहाँ चलकर एक सराय में रात्रि बिताने का विचार हुआ। सभी ऊँटों को खूँटियाँ गाड़ कर रस्सी से बाँध दिया गया, लेकिन एक ऊँट की खूँटी और रस्सी कहीं रास्तें में गिर गयी थी, उसे बाँधने की समस्या ऊँटों के सौदागर के सामने थी, उसे बाँधने की समस्या ऊँटों के सौदागर के सामने थी। वह सराय के मालिक के पास गया और उससे ऊँट को बाँधने के लिए रस्सी तथा खूँटी की माँग की, परन्तु सराय मालिक के पास न रस्सी थी, न खूँटी थी। उसने कहा मेरे पास न रस्सी है, न खूँटी है। परन्तु तुम जाकर उस ऊँट को खूँटी गाड़ कर रस्सी से बाँध दो। सौदागर ने बड़ी हैरानी से पूछा कि खूँटी नहीं, रस्सी नहीं, तो मैं कैसे ऊँट को बाँध दूँ। सौदागर के ऐसा कहने पर सराय का मालिक उसके साथ हो लिया और वहाँ जाकर उसने ऐसे ही एक हाथ धरती के ऊपर रखा जैसे खूँटी पकड़ कर रखा जाता है तथा दूसरे हाथ से हथोड़े मार कर खूँटी गाड़ने जैसी हरकत की फिर उसने ऊँट के गले में हाथ घुमाया जैसे कि गले से रस्सी खोल रहा हो, फिर उसने खूँटी के साथ रस्सी बाँधने जैसी हरकत की और चला गया। ऊँट ने समझा कि मालिक उसे बाँध गया है तथा वह सारी रात वहाँ से नहीं हिला। सुबह होने पर सौदागर ने सभी ऊँटों की रस्सियाँ खोली व खूँटियाँ उखाड़ी तो सभी ऊँट उठ कर चलने लगे लेकिन वह जो ऊँट था जिसकी रस्सी व खूँटी नहीं थी वह वैसे ही बैठा रहा। सौदागर फिर सराय के मालिक के पास जाकर कहने लगा कि मालिक वह ऊँट तो उठता नहीं, बाकी सब ऊँट तो चलने को तैयार खड़े हैं। तो मालिक ने पूछा कि क्या तुमने उसकी रस्सी व खूँटी उखाड़ी? सौदागर ने हैरान होकर कहा कि उसकी रस्सी व खूँटी है ही नहीं, तो उखाड़ने क्या थी। मालिक उस सौदागर के साथ गया और जाकर

फिर वैसे ही खूँटी उखाड़ने और रस्सी खोलने जैसा अभिनय किया। ऊँट फट से उठकर चलने लगा। इस प्रकार मालिक ने सौदागर को समझाया कि बेशक हमारी नजर में खूँटी व रस्सी नहीं है। परन्तु ऊँट के लिए रस्सी तथा खूँटी है वह समझता है कि वह बँधा हुआ है और जब उसकी रस्सी खोली गई व खूँटी उखाड़ी गयी तभी उसने समझा कि वह आजाद हो गया और वह उठकर चलने लगा।

ठीक यही हालत आज इन्सान की है वह भी समझ्झता है कि वह माया के बंधन में बँधा हुआ है तथा विषय- विकारों में फँसा हुआ है और स्वयं को स्वतन्त्र नहीं समझता है। यदि ऊँट को भी इस बात का ज्ञान हो जाता या करा दिया जाता तो वह भी स्वयं को स्वतन्त्र समझ लेता। ऊँट वास्तव में बँधा हुआ नहीं था लेकिन उसके मन में यह संकल्प था कि वह बँधा हुआ है। या यूँ कहिए कि वह संकल्प से बँधा हुआ है। ठीक उसी प्रकार इन्सान भी वास्तविक रूप में बँधा हुआ नहीं हैं बल्कि उसके मन में संकल्प ही है कि वह बँधा हुआ है। जब तक मनुष्य के मन में यह संकल्प है कि वह विषयों में फँसा हुआ है माया से हारा हुआ है, तब तक वह बन्धन में ही रहेगा और मायाजीत नहीं बन सकता। इसके विपरीत यदि वह यह संकल्प कर ले कि वह स्वतन्त्र है, ऐसी किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं और काम क्रोधादि कोई भी विकार उसे प्रभावित नहीं कर सकते, तो इस संकल्प मात्र से ही वह मायाजीत बन सकता है। सारा दिन इस विजयी स्वरूप की स्थिति में रहकर कर्म करे तो पुराने संस्कार भी मिट सकते हैं तथा वह सदा विजयी बन सकता है।

ईश्वर भक्ति से बड़ा कोई नहीं

एक बार औरंगजेब के दरबार में एक मान्य व्यक्ति थे दीवान वली राम। उनके बारे में बताया गया है कि एक बार दरबार में सभी दरबारी औरंगजेब के स्वागत में खड़े थे। दीवान वली राम भी उनमें थे। औरंगजेब बैठ गये और उन्होनें किसी काम से दीवान साहब को अपने निकट बुलाया। तब अचानक एक तैतया दीवान साहब के पाजामें में घुस गया और उन्हें काटने लगा परन्तु शिष्टाचार के नाते वलीराम वहीं खड़े रहें। उन्होंने कोई भी हलचल नहीं की। तैतया ने दीवान साहब को बुरी तरह काटा था। वहाँ से हटने के बाद दीवान साहब को अपनी मजबूरी पर बड़ा अफसोस हुआ। उन्होनें सोचा कि यह भी क्या नौकरी है कि सम्मान तो मिलता है, धन भी मिलता है परन्तु मनुष्य को एक प्रकार से गुलामी भी करनी पड़ती है। उन्होंने अपने मन से कहा, ‘‘अगर मैं इतनी गुलामी, साधना और सहनशीलता भगवान के पथ पर करता तो काफी आगे निकल जाता। उसके मन को ठोकर लगी और दीवान साहब सब छोड़-छाड़ कर नदी के किनारे जाकर, साधना में लग गए।

कहते हैं कि औरंगजेब ने दीवान साहब की खोज करने के लिए आज्ञा दी। आखिर उन्हें समाचार दिया कि दीवान साहब ने सन्यास कर लिया है और वे नदी के किनारे साधना करते हैं या पाओ पाँव पसारे रहते हैं। औरंगजेब के मन में प्रश्न उठा कि दीवान साहब को आखिर क्या मिला है कि वे इतने बड़े पद को छोड़ कर चले गये हैं। क्या उन्हें किसी ने उससे ऊँचा पद तथा अधिक वेतन दिया है या क्या कारण बना कि वे सब छोड़-छाड़ कर चले गये।

औरंगजेब एक बार स्वयं वहाँ गये। उन्होंने देखा कि दीवान साहिब वहाँ पाँव पसारे पड़े हैं। औरंगजेब को वहाँ अपने सामने आया देख कर भी वली राम गुलामों की तरह पेश नहीं आयें परन्तु प्रेम से मिले। औरगंजेब ने यह परिवर्ततन देख कर कहा-'' वली राम, कब से पाँवों को पसारे हो?'' वली राम ने उत्तर दिया -'' जब से प्रभु की सेवा में उपस्थित हूँ।'' औरंगजेब इस उत्तर से सारी बात समझ कर वहाँ से चले गये।

इधर वली राम ने सोचा कि थोड़े दिन भगवान का बनने से औरंगजेब स्वयं मेरे पास आये हैं, अब यदि मैं स्थायी रूप से भगवान की सेवा में उपस्थित हो जाऊँ, तब तो मेरा कल्याण ही हो जायेगा। इस प्रकार, तैतया काटने की एक छोटी सी घटना ने उनके जीवन में भारी परिवर्तन कर दिया।

सत्य की नैया हिलती है डूबती नहीं

गंगा के तट पर अनेक तीर्थ यात्री पहुँचे हुए थे, गंगा में स्नान करने के लिए। एक स्थान पर कुछ नौकाएँ भी खड़ी थीं। जो यात्री इस पार से उस पार जाना चाहते थे, वे एक नाविक को बुलाते, नैया में बैठते और नाविक गीत गाता, चप्पु चलाता ले चलता उन्हें उस पार। इस प्रकार आने और जाने वालों को ताँता सा बँधा सा हुआ था।

शाम होने वाली थी, सूर्यास्त होने ही वाला था। किनारे पर खड़े कुछ यात्रियों ने एक नाविक को आवाज लगाई '' ऐ नैया वाले, हमें शीघ्र ही उस पार जाना है।'' नाविक आवाज सुनकर जल्दी से अपनी नैया की रस्सी खोलकर आगे आ गया। यात्री उसमें सवार हो गये। उन यात्रियों में एक दो वृद्ध महिलायें भी थीं। नौका आगे बढ़ने लगी। अरे, यह क्या, बीच मंझदार में पहुँचते ही नौका डोलने लगी। किनारे पर खड़े लोग चिल्लाने लगे। नैया में बैठे हुए लोगों के दिल भी धड़कने लगे। सब प्रभु को पुकारने लगे। वे सभी भयभीत थे कि अब क्य होगा। वे सब अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे। नाविक नैया को बहुत संभालने की कोशिश कर रहा था परन्तु भरसक प्रयत्न करने के बावजूद भी लगता था कि बस,अभी नैया उलट जायेगी। नाविक चिल्ला कर बोला-''अवश्य ही इस नैया में किसी यात्री के पास कोई झूठ अथवा चोरी का सामान है, इसलिए ऐसा हो रहा है। जिसके पास भी ऐसा

सामान है, कृपया वह चुपचाप उसे जल-प्रवाहित कर दे, वरना वह खुद तो डूबेगा ही, सबको भी ले डूबेगा और जीव-घात के पाप का भी भागी बनेगा।'' वह प्रार्थना करता हुआ बोला ''कृपया जल्दी करें, अधिक विलम्ब न करें, वर्ना हाथ से निकला समय वापस नहीं आयेगा।'' सभी यात्री गण एक दो का चेहरा देखने लगे। आपस में खुसर-पुसर भी होने लगी, कुछ थोड़ा ऊँचे शब्दों में भी बोल उठते, अरे भाई, जल्दी करो, थोड़ी सी चीज के पीछे सभी की जिन्दगी खत्म करने के निमित्त न बनो।''

उस नौका में एक अति साधरण वृद्ध महिला भी थी जिसके पास पूजा का सामान तो था परन्तु ठाकुर जी की मूर्ति न थी। सो वह हरिद्वार के बाजार की एक दुकान से दो मूर्त्तियाँ उठाकर ले आयी थी और उनके पैसे उसने नहीं चुकाये थे। वह घबरा गयी थी। जब सभी आपस में बातचीत करने में तल्लीन थे और ईश्वर को रक्षा करने के लिए पुकार रहे थे, तब उसने चुपके से अपनी झोली में से वे दो मूत्तियाँ निकाल कर उन्हें जल-प्रवाहित कर दिया। और देखते ही देखते, नैया ठीक-ठाक अविरल गति सेआगे बढ़ने लगी। सबके मुरझाये चेहरे खिल उठे और सबने मन ही मन उस प्रभु का शुक्रिया अदा किया।

सहनशीलता दीर्घायु बनाती है

एक सन्त बहुत बूढ़े हो गये। देखा कि अन्तिम समय समीप आ गया है तो अपने सभी शिष्यों को अपने पास बुलाया। प्रत्येक से बोले-'' तनिक मेरे मुँह के अन्दर तो देखो भाई, कितने दाँत शेष है? प्रत्येक शिष्य ने मुँह के भीतर देखा । प्रत्येक ने कहा-'' दाँत तो कई वर्ष पहले समाप्त हो चुके हैं महाराज, एक भी दाँत नहीं है।''

सन्त ने कहा-'' जिह्वा तो विद्यमान है?''

सबने कहा-''जी हाँ।''

सन्त बोले-'' यह बात कैसे हुई? जिह्वा तो जन्म के समय विद्यमान थी, दाँत तो उसके बहुत पीछे आये, पीछे आने वालों को पीछे जाना चाहिए था। ये दाँत पहले कैसे चले गये?''

शिष्यों ने कहा-''हम तो इसका कारण समझ नहीं पाये।''

तब सन्त ने अति गम्भीर तथा शान्त स्वर में कहा-'' यही बतलाने के लिए मैंने तुम्हें बुलाया है। देखो, यह जिह्वा अब तक विद्यमान है तो इसलिए कि इसमें कठोरता नहीं और ये दाँत पीछे आकर पहले समाप्त हो गये। एक तो इसलिए कि ये बहुत कठोर थे। इन्हें अपनी कठोरता पर अभिमान था। यह कठोरता ही इनकी समाप्ति का कारण बना। इसलिए मेरे बच्चो, यदि देर तक जीना चाहते हो तो नम्र बनो, कठोर न बनो।

मूल्यहीन वस्तु

बहुत दिन पहले एक गुरू के पास दो शिष्य पढ़ते थे। एक का नाम था श्याम दूसरे का राम। दो-तीन वर्ष की पढ़ाई के बाद गुरू ने उन्हें दो मास की छुट्टी दी। तब गुरू ने दोनों की बुद्धिमत्ता देखने के लिए कहा ''बच्चों, ऐसी चीज को ढूंढ कर आओ जिसकी दुनिया में पाई की भी कीमत न हो। दोनों ने बात को मान लिया और वहाँ से चले। श्याम ने सोचा अभी दो महीने हैं फिर कभी सोच लेंगे। वह मित्र-सम्बन्धियों से मिले, बातें करने में और घर के कारोबार में जुट गया। राम यात्रा करने के विचार से काशी की ओर चल पड़ा। बार-बार गुरू का प्रश्न उसे याद आने लगा। बेचारे ने तो बहुत सोचा, ढूंढा। अनेक स्थानों पर गया, अनेक तरह के लोगों से उसकी मुलाकात हुई, पर उसे ऐसी कोई चीज दिखाई न दी कि जिसका दाम पाई का भी न हो। दिन बीतते गए और ढूढ़ते–ढूढ़ते थक गया। दो मास पूरा होने में केवल तीन -चार दिन ही बाकी रह गये तब राम गुरू के पास लौटने लगा। बेचारा प्रश्न का उत्तर न पाने से उदास था। रास्ते में ही श्याम का गाँव था तो सोचा शायद उसे उत्तर मिला होगा और वह उसका घर ढ़ंढूने लगा। एक घर पर उसे थोड़ी भीड़ दिखाई दी और शोर भी सुनाई दे रहा था। राम ने वहाँ चलकर देखा तो वहाँ पर एक आदमी का देहान्त हुआ था। घर के लोग रोने-पीटने लगे थे और गाँव के लोग उसे सजा रहे थे। वह तो श्याम का पिता ही था। शव को उठाते समय उसके सगे थोड़ी देर और रोकना चाहते थे लेकिन गाँव वालों ने जबरदस्ती शव को कंधे पर उठाये शमशान की ओर चल पड़े।

एक बार श्याम ने कहा था'' मेरे पिताजी बहुत दयालु हैं, उन्हें गाँव में सभी लोग प्यार करते हैं, सम्मान देते हैं।'' राम सोचने लगा 'जिसे कल तक प्यार रक रहे थे वही आज उसे क्षण भर रखना नहीं चाहते। जिससे कल तक कुछ चाहते थे उससे आज कोई भी नहीं। कल तक जो कीमती था आज कुछ भी नहीं। तब उसे निश्चय हुआ कि दुनियाँ में मानव के निर्जीव शरीर की पाई की कीमत नहीं है। कोई उसे रखना भी नहीं चाहता।

दूसरे दिन दोनों गुरू के पास पहुँचे। बेचारा श्याम तो गुरू का प्रश्न ही भूल चुका था। कहने लगा 'मेरे पिता का देहान्त हुआ इसलिए मैं वह चीज ढूंढ़ न सका।' राम ने जवाब दिया'गुरूवर्य, दुनियाँ में बिना दाम की चीज तो मानव का निर्जीव शरीर है। उसे तो बिना दाम के भी कोई रख नहीं सकता।' उसके जवाब से गुरू ने खुश होकर कहा- शाबस बेटा।'

मानव का यह शरीर विनाशी है। आत्मा अविनाशी है। जब तक आत्मा शरीर में है तब तक इस शरीर की कीमत है। आत्मा ही शरीर में है तब तक इस शरीर की कीमत है। आत्मा ही शरीर से सब कुछ करती है न कि शरीर।

जैसा अन्न वैसा मन

जंगल में एक साधू रहता था। उसकी प्रभु से बहुत प्रीत थी। वह अपना काफी समय भक्ति, पूजा, अध्ययन और ध्यान में लगाता था। वन के एकान्त और शान्त वातावरण में वह प्रभु के गुण गाता था और वन उपवन के फल इत्यादि से जीवन व्यतीत किया करता था।

एक बार वह एक कमण्डल में पानी भरकर और कुछ फल रखकर प्रभु के ध्यान में बैठ गया। ध्यानावस्था में उसने प्रभु को ये फल भी सर्मपित किये। वह आँखें मूँदे हुए प्राणायाम चढ़कार अचेत हुआ सा बैठा ही था कि उस नगर का राजा अपने नौकर के साथ वहाँ आ पहुँचा। बात यह थी कि राजा अपने नौकर को साथ लेकर हिरणों के शिकार के लिए निकला था और हिरणों के पीछे भागते-भागते उसे बड़ी सख्त प्यास लग गई थी परन्तु वह शहर के काफी दूर जंगल के बीच में पहुँच गया था और वहाँ कुछ पानी भी नहीं दिखाई देता था। ऊपर एक वृक्ष पर चढ़ कर उसने देखा कि दूर एक कुटिया दिखाई दे रही थी। वे दोनों उस ओर चल पड़े। रास्तें में राजा ने नौकर को कहा कि वह इधर-उधर पानी की तलाश करे और अगर पनी मिल जाये तो उसे लेकर कुटिया पहुँच जाये और वह स्वयं भी वहाँ कुटिया में पहुँच जायेगा।

नौकर तो पानी की तलाश में निकल गया और राजा कुटिया में जा पहुँचा। आखिर राजा ने देखा कि वह साधू कुटिया के बाहर बैठा हुआ है। आँखें बन्द किये हुए ध्यान में मग्न है। कुछ समय तो राजा कुटिया में साधू की इन्तजार में बैठा रहा। परन्तु जब उसने आँखें नहीं खोली तो राजा उसके पास गया और वहाँ पानी का कमण्डल देखकर उसकी प्यास और भड़क उठी आखिर उससे न रहा गया। उसने कमण्डल लेकर हाथों को पात्र बनाकर पानी पी लिया और अपने नौकर को भी, जो इसी बीच पहुँच गया था, पानी पिला दिया। कमण्डल खाली होने पर राजा ने कमण्डल को उस पानी से भर दिया जो अब उसका नौकर ले आया था।

राजा और नौकर दोनां कुटिया में आकर बैठ गये और कुछ देर बाद जब साधू की आँख खुली तो अपना कुटिया में अतिथि देखकर उनकी सेवा में फल ले गया और उनसे उनका विवरण पूछा। राजा और उसके नौकर ने वे फल भी खा लिए।

साधू ने राजा से पूछा कि उनका वहाँ कैसे आना हुआ? राजा द्वारा बताये जाने वर साधू ने कहा '' महाराज, अब आप थकावट तो महसूस नहीं कर रहे? अब आप ठीक तो हैं ना? कोई सेवा हो तो बताइये।''

राजा ने कहा कि यहाँ जल पीने और फल खाने के बाद उसे अजीब-अजीब सी खुशी हो रही है और वह अभूतपूर्व शान्ति महसूस कर रहा है। राजा ने साधू को बताया कि किस प्रकार प्यास लगी होने के कारण उसने कमण्डल में से पानी पिया था और जो पानी राजा का नौकर ले आया था, वह उसने बाद में कमण्डल में भर दिया था। तुरन्त साधू बोला-'' अच्छा, अब मैं समझा कि कारण क्या है और किस्सा क्या है! महाराज पहले तो मैं सोच ही नहीं पा रहा था कि आज मुझ क्या हो रहा है, मैनें भी साधना से उठने के बाद कमण्डल में से पानी पिया था। मुझे यह तो मालूम ही नहीं था कि स्वयं आपने अपने हाथों पानी भरा है। उस पानी को पीने के बाद मुझमें तो आज राजसी विचार आ रहे थे। राजाओं की तरह सुख-सुविधा से रहने को मन चाह रहा था। अब मैं समझा कि मेरे मन में ऐसे विचार क्यों चल रहे थे और आपके मन में सात्विक भावना क्यों जागृत हुई थी, महाराज, मैंने पानी और फल की भगवान को भोग लगाया था। उनमें में मेरी शुभ भावना, शुभ कामना और सात्विक वृत्ति भरी हुई थी। उन्हीं के

ध्यान में मैं बैठा था और उन्हीं के गुणगान मैं कर रहा था। उन्हों को भोग लगाया हुआ प्रसाद रूप पानी जब आपने पिया तो आपके मन में सात्विकता जागृत हुई। परन्तु आपने जो कमण्डल में पानी डाला, वह तो मेरे लिए ही डाला होगा कि इसे साधू पियेगा अथवा कोई भी अन्य पियेगा, उसमें भगवान की भावना तो थी नहीं। उसमें तो यह भावना भरी हुई कि थी कि वह पानी है जो हम लाये हैं। यह प्रभु का है और प्रभु-समर्पित है, ऐसा मनोभाव उसमें भरा ही नहीं था। अत: उस पानी में रजोगुण ही का समावेश था और उसका लेश मेरे मन में आया।

बेपेंदी का लोटा

एक सेठजी एक दिन नहा-धोकर नये उजले वस्त्र पहनकर अच्छे भले बैठे हुए थे और चमक रहे थे। उनके चेहरे से और उनकी बैठक से लगता था कि सेठजी मंगल कुशल हैं और मौज में हैं। इतने में हुआ क्या कि उनकी पत्नी भी नित्य कर्मो से फारिग होकर नहा-धोकर उस बैठक में से गुजरी। पता नहीं सेठानी जी का क्या हुआ, हथेली ठोड़ी पर रख ली, बड़ी अँगुली होठी पर और चेहरा बनाकर बोली-हा..आ आपको हुआ क्या है? अभी कल रात को सोने से पहले तो आप चंगे-भले थे अब आपका चेहरा उतरा-उतरा क्यों लग रहा है? पीला-पीला रंग और चढ़ी हुई आँखे! चलो, बैठने की

कोई जरूरत नहीं, थके-थके से लग रहे हो, चारपाई पर सोवो। जब मैं कहती हूँ तब आप मानते भी तो नहीं, जिस समय देखो काम में लगे रहते हो। अच्छा चलो, अब लेट जाओ।

यह सुनते-सुनते ही सेठजी का मुख फंक होने लगा। उनके चेहरे का रंग उड़ने लगा। उनका मन सोचने लगा कि अवश्य ही कुछ है जो अन्दर से रक्त को सुखाता जाता है। तभी तो सेठानी जी कह रही हैं कि चेहरा उतरा-उतरा है। बस, सेठानी जी की बात उन्हें ऐसे लग गई कि वे ऊँह-ऊँह करने लगे और हाथ लम्बा करके सेठानी जी को कहने लगे-'' उठाओ तो'' ।

सेठानी जी ने सेठजी का हाथ पकड़ लिया और तो खुद भी मोटी-सी तो थीं ही, सेठ जी का हाथ पकड़कर उन्हें चारपाई की ओर लिवा लाने लगीं। सेठ जी, जो अभी 5 मिनट पहले ऐसे लग रहे थे कि जैसे माजून खाया हो, अब मुश्किल से ही चलते हुए दिखाई देने लगे और चारपाई पर जाकर ऐस पड़ गये जैसे जख्मी घोड़ा मैदान में गिर पडता है।

सेठानी जी उनके सिरहाने बैठ गई। सेठ जी दबी आवाज में हा... करने लगे और सेठानी जी कभी तो सेठजी को कहती कि आज आपकी यह हालत देखकर मुझे कुछ हुआ जाता है। भगवान खैर करे! न जाने किस के श्राप से यह बुरी घड़ी मुझ पर आन पड़ी है और कभी कहती कि मालूम नहीं क्यों आपको ऐसा हो रहा है। हाय रे, कोई जल्दी से डॉक्टर को बुलाए।

फिर कुछ ही मिनट में उसने सेठजी के माथे पर हाथ रखा और उनकी कलाई को भी अपने हाथ में पकड़ा और फिर बोली-पता नही आज आपके क्या होता जा रहा है। आपके तो हाथ ही ठण्डे हुए जा रहे हैं। पिुर बोली-'' प्रभु जी, आज आप ही इन्हें बचाना।''

सेठजी जैसे-जैसे यह सुनते जाते, वैसे-वैसी उनकी हालत ही अजीब हो रही थी। उनहोंने छाती पर हाथ रख लिया, आँखें फेरने लगे और मुँह खुला छोड़कर लम्बे-लम्बे सांस लेने लगे जैसे दम तोड़ने से पहले कोई लेता है।

सेठानीजी भी यह देख बहुत घबराने लगी। उन्हें लगा कि सेठजी तो बस कुछ ही देर के मेहमान हैं। इतने में ही उनका लड़का भी वहाँ आ पहुँचा। उसको सारी बात बताते हुए सेठानीजी सेठजी से बोली कि देखो जी, न जाने अब भगवान को क्या मंजूर है, मैं तो कहती हूँ कि जो-कुछ किसी से आप का हिसाब-किताब रहा हुआ,जो लेना-देना हो सब समझा दो, कौन जाने क्या होने वाला है!

सेठजी का पुत्र कुछ समझदार मालूम पड़ता था। उसने स्थिति को भाँपते हुए कहा-'' हाँ-हाँ पिताजी, मैं भी यही समझता हूँ, आप जरा उठकर मुझे सब लेन-देन का हिसाब समझा दीजिये।''

सेठजी बहुत नाराज हो गए और बोले-'' मेरा दम निकला जा रहा है और तुम्हें हिसाब-किताब सूझ रहा है।'' पुत्र ने उन्हें शान्त करते हुए कहा-'' देखिये पिताजी, आपने कितनी मेहनत से धन कमाया है। हम नहीं चाहते कि उसे कोई यूँ ही लूट ले। इसलिए में तो चाहता हूँ आपका धन आपके

ही सगों के पास रहे।, थोड़ा हिम्म्त कीजिऐ, उठिये, उठिये।'' और, उसने सहारा देते हुए सेठजी को उठाकर बिठा दिया।

अब सेठजी का मन हिसाब-किताब की ओर चलने लगा। वे ऊँह-ऊँह करना भूलकर बीच-बीच में कह उठे-'' अरे हाँ, मुझे तो फलाँ से भी इतना पैसा लेना है।'' 'उस दिन वह आदमी भी मुझसे इतना कर्ज ले गया था'- इस प्रकार उनका मन अपने शरीर से हटकर दूसरी ओर चला गया। यह देखकर उनके पुत्र ने अन्दर ही अन्दर प्रसन्न होते हुए कहा-'' पिताजी, वो सामने अलमारी में भी हुए कहा-'' पिताजी, वो समने अलमारी में भी तो आपकी कुछ रसीदें पड़ी हुई हैं। आप जरा उन्हें भी देख डालिए।''

सेठजी थोड़ा नाराज होते हुए बोले-'' अरे, तुझे पता है कि तेरे आने से पहले मेरी क्या हालत थी। मैं बैठ भी नहीं पा रहा था औरअब तू कहता हैं कि चलकर अलमारी से रसीदें निकाल लूँ।''

पुत्र ने कहा-''पिताजी, मैं आपको वहाँ तक सहारा देकर ले चलता हूँ। आप कदम तो आगे बढ़ाइये।'' और इतना कहकर बड़े प्रेम से उसने सेठजी को सहारा दिया और अलमारी की ओर ले चला। सेठजी धीरे-धीरे कदम आगे बढ़ाते गये और रसीद बुक निकाल अपने लने-देन के हिसाब की जाँच करने में व्यस्त हो गये। धीरे-धीरे उनमें हिम्म्त सी आती गई और चेहरे का रंग भ बदलता गया। जितने पैसे के वे मालिक थे, यह सोच-सोच उन्हें खुशी भी चढ़ती गई। यह देख फिर उनके पुत्र ने कहा-'' बस, पिताजी एक बार दुकान परचलकर बही खाते और देख लीजिये। देखिये न, आपने अपने मन को दूसरी ओर लगाया तो कितना फर्क हो गया है। थोड़ा दुकान तक चलेंगे, फिर तो एकदम अच्छे हो जायेंगे। ''आप को तो कुछ भी नहीं है, आप तो बिल्कुल ठीक हैं।''

सेठजी ने फिर अपनी ओर ध्यान दिया और उन्हें महसूस हुआ, सचमुच वे तो बिल्कुल ठीक हैं । उन्हें तो कुछ भी तकलीफ नहीं है। बस, फिर तो वे तेज-तेज कदमों से दुकान की ओर बढ़ने लगे।

नर्क की एडवरटाइजमेंट

यह तो हम सब जानते हैं कि मरने के बाद धर्मराज के सामने पेशी होती है। व लोगों के नर्क व स्वर्ग में जाने का पैसला होता है। एक बार ऐसा हुआ कि धर्मराज ने रिश्वत लेनी आरम्भ कर दी, उसके इस कार्य से हाहाकार मच गया। मृत्युलोक के वासियों ने शिष्टमण्डल भगवान के पास भेजा, उस पर भगवान ने कहा कि यदि मैंने धर्मराज की जगह किसी और को रख लिया तो वह भी रूर रिश्वत लेगा। तो पृथ्वी निवासियों ने सुझाव दिया कि आप वोट डालने की तरीका अपना लें। एक दिन

में जितने लोग यहाँ धर्मराज पुरी मेंआयेंगे वे सब एक दुसरे के लिए वोट डालेंगे कि कौन नर्क में जायेगा और कौन स्वर्ग में, आखिर इस प्रणाली को अपना लिया गया।

इसी बीच एक नेता जी मरकर धर्मराज के पास पहुँचे। वे सादा अपनी राजनीति में मस्त रहते थे। उन्हें नर्क और स्वर्ग के बारे में कुछ पता नहीं था। उन्होनें वोट डलवाने से पहले कहा मुझे नर्क और स्वर्ग दिखाया जाये, जो स्थान मुझे पसन्द आयेगा मैं वहाँ जाने के लिए अपना चुनाव स्वीकारकरूँगा। चुनाव अधिकारी सहमत हो गया, उसने एकविमान मँगवाया और नेता जी को स्वर्ग की ओर ले चला। स्वर्ग का दरवाजा खोलकर नेता जी ने अन्दर झाँका तो देखा कि पन्द्रह बीस महात्मा लोग हाथ में माला लिए भगवान का नाम ले रहे हैं। मौसम बड़ा सुहावना है ता शान्ति का वातावरण बना हुआ है। कोई एक दुसरे से बातचीत नहीं कर रहा है। नेताजी को यह अच्छा नहीं लगा, उन्होनें मुँह बनाकर अधिकरी को नर्क दिखाने को कहा।

जब नेता जी ने नर्क का दरवाजा खोला तो देखा जगह-जगह लोग शराब पी रहे हैं, मौज उड़ा रहे हैं। सब लोग मस्त हैं और खूब रौनक लगी हुई है। नेता जी को नर्क पसन्द आया और वापस आकर वे अपने प्रचार में लग गये और कहने ले कि मुझे नर्क में जाने के लिए वोट दीजिये। फिर क्या था नेजाजी को नर्क के लिए वोट पड़ गयी और नेता जी को नर्क भेज दिया गया।

वहाँ जाकर उन्होनें मद्यपान किया, खूब नाचे और जब वे थक गए तो उनहोनें नर्क के इन्क्वायरी ऑफिस में आराम करने की जगह पूछी तो नेताजी को सीधा चलने को कहा गया, और उनकी आँखें पर पट्टी बाँध दी गई। सीधा चलते हुए, नेताजी बड़े जोर से एक गहरी खाई में गिर पडे़। गिरते ही उनकी बुरी तरह पिटाई होने लगी। नेताजी ने कहा यह कौन जी जगह है जो मुझे पीट रहे हो? जवाब मिला कि यह नर्क है। नेता ने कहा यह नर्क कैसे हो सकता है। नर्क से तो मैं आ ही रहा हूँ। वहाँ तो बहुत खुशियाँ तथा खाने-पीने की चीज है। तो पीटते-पीटते एक बोला, वह तो हमारा नर्क का एडवरटाइजमेंट डिर्पामेंट है। यदि हम ऐसी एडवरटाइजमेंट न करें तो हमारे नर्क में आयेगा ही कौन? वास्तविक नर्क तो यह है।

सतत् अभ्यास से सफलता मिलती है

एक राजा का राजकुमार जब वयस्क हुआ तो राजा ने उससे कहा कि तुम गद्दीनशीन होने से पहले अपने राज्य के प्रसिद्ध तलवारबाज से प्रशिक्षण लेकर आओ। लेकिन ध्यान रखना कि उस पहुँचे हुए गुरू के किसी कार्य में शंका नहीं उठाना। राजकुमार आश्रम में पहुँचा। गुरूजी ने उसे अपने अन्य शिष्यों के साथ आश्रम में लकड़ी काटना, सफाई करना, भोजन व्यवस्था करना आदि में लगा दिया।

राजकुमार के मन में शंका उठी कि यहाँ न तो कोई तलवार दिख रही है, न कोई प्रशिक्षण परन्तु पिता की आज्ञानुसार उसने शंका को दबा दिया। छ:मास गुजर गए। एक दिन गुरूजी लकड़ी लेकर राजकुमार के पास आए और कहा कि आज से मैं तुम्हें तलवारबाजी सिखाऊँगा पर मेरी एक शर्त है कि मैं दिन में किसी भी समय आकर आप पर इस लकड़ी से प्रहार करूँगा। यदि आप 'सावधान' शब्द का उच्चारण कर दोगे तो नहीं मारूँगा। इस अभ्यास में राजकुमार ने कई बार गुरू से मार खाई क्योंकि वह कभी बातों में और कभी काम में मशगूल होता था। पर धीरे-धीरे वह इतना सजग हो गया कि गुरूजी के मारने से पहले ही 'सावधान' शब्द बोलने लगा। इसके बाद गुरूजी ने कहा कि जब तुम सो रहे होंगे तब भी मैं लकड़ी मारने आऊँगा। कुछ दिन तक सोए-सोए मार खाने के बाद राजकुमार नींद में भी इतना सजग रहने लगा कि गुरूजी के मारने से पहले ही 'सावधान' शब्द बोलने लगा। ऐसा करते-करते वह इतना कुशल और सतर्क हो गया कि किसी भी समय, कोई भी, किसी भी दिशा से वार करे तो वह आसानी से सामना कर सकता था। वह अवस्था आने पर गुरूजी ने उसके हाथ में तलवार देकर प्रशिक्षण प्रारम्भ कियाऔर राजकुमार तलवारबाजी में बहुत पारंगत हो गया।

उपरोक्त कहानी में गुरू स्वयं परीक्षा बन कर बार-बार अपने शिष्य के सामने आता है और शिष्य प्रारम्भ में उस परीक्षा में असफल होता क्योंकि जागरूक रहने का संस्कार दृढ़ हुआ नहीं है परन्तु धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते यह संस्कार इतना दृढ़ हो जाता है कि परीक्षा बनने वाला गुरू ही उसकी प्रशंसा करने लगता है। आध्यात्मिक मार्ग मेंचलने वाले महावीरों पर भी माया कभी उनकी जागृत अवस्था में और कभी स्वप्न अवस्था में वार करती है परन्तु जब एक योगी माया के सभी रूपों को परख लेता है कि वह कब, कैसे, कितनी शक्ति से, कहाँ आ सकती है तो अपने को सुरक्षित कर लेता है। लेकिन यह होता है सतत् अभ्यास और गहन धारणा के बल से।

डर और दुविधा, दुःख का कारण

एक सन्त सम्राट का अतिथि बना, वहीं तीन पिंजरे रखे थे। एक पिजंरे में एक चूहा था, उसके सामने सूखा मेवा पड़ा था। दूसरे में बिल्ली थी, उसके सामने मलाई भरा कटोरा था। तीसरे में बाज पक्षी था, उसके सामने ताजा मांस था। तीनों भूखे थे पर सामने रखे पदार्थो को खा नहीं रहे थे। सम्राट ने कारण जानना चाहा। सन्त ने कहा- राजन्! चूहा,बिल्ली से भयभीत है, बिल्ली, बाज पक्षी से डर रही है। बाज पक्षी को किसी का भय नहीं पर उसे प्रलोभन है कि पहले बिल्ली को खाऊँ या चूहे को। इस दुविधा में उसे अपने पिंजरे में रखा मांस दिखाई नहीं देता। यदि लम्बे समय तक इनकी यही स्थिति रही तो अन्ततः ये तीनों प्राणी तड़प-तड़प कर मर जायेंगे। यही स्थिति आज के मनुष्यों की हो गयी है।

समय की पहचान

एक मछुआरे की कहानी है कि वह रोज समुद्र में मछली पकड़ने जाता था और उन्हें बाजर में बेच कर अपना तथा अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। एक दिन वह मध्य रात्री को ही समुद्र में मछली पकड़ने चला गया। कुछ देर जाने पर रास्ते में पड़े एक थैले से उसका पाँव टकराया और खन्..खन् की ध्वनि उत्पन्न हुई उसने वह थैल उठाया और फिर अपने लक्ष्य की ओर चलता बना। जब समुद्र के किनारे पहुँचा तो वह गोल-गोल हीरे जो उस थैले में थे, उसे वह पत्थर समझकर एक-एक करके समुद्र में फेंकने लगा। उसे ऐसा करने में आनन्द आ रहा था। इस प्रकार उन अमूल्य हीरों से अनजान वह मछुआरा एक-एक करके फेंकते-फेंकते जब हाथ में बचे अन्तिम हीरो को भी फेंकने जा रहा था, तब सूर्य के सुनहरे प्रकाश में उसने उस पत्थर को देखा। वह पत्थर जो सूर्य के प्रकाश में झिलमिला उठा और उस मछुआरे की नजर उस पर पड़ी तो वह एकटक उसे देखता ही रहा। मछुआरा उस हीरे को लेकर जब जौहरी के पास पहुँचा तो जौहरी ने कहा यह तो अमूल्य हीरा है। यह सुनते ही मछुआरे के पाँव के नीच से मानो जमीन ही खिसक गई। भागा-भागा वह समुद्र के किनारे पहुँचा। इतने में सवेरा हो चुका था। पागलों की तरह चारों ओर उन पत्थरों को ढूंढूने लगा। परन्तु वह हीरे तो समुद्र के गर्भ में समा चुके थे। भाग-भाग कर अन्त में मछुआरा थक कर निढाल हो गया। पश्चाताप के आंसू बहने लगे। अरे! ये मैंने क्या कर डाला। अमूल्य हीरों को पत्थर समझ कर व्यर्थ गँवा दिया- यह सोच-सोच कर वह अपने ही भाग्य को कोसने लगा। ठीक यही स्थिति तो है आज के मानव की। परचिन्तन, व्यर्थचिन्तन, ईर्ष्या-द्वेष, नफरत, वैर और आलस्य में वह हीरे जैसा जीवन बनाने वाले इस अमूल्य समय को व्यर्थ ही गँवा रहा है तथा इसमें ही आनन्द महसूस कर रहा है।

रत्न अमूल्य या चक्की?

एक राजा के राज्य में एक भिक्षु आये। उनकी वाणी सुनने के लिए समस्त नगरवासी उमड़ पड़े। गली-मुहल्लों और घरों में उनके प्रवचनों का चर्चा होने लगी। राजा से भी नहीं रहा गया। इसलिए वे भी प्रवचन सुनने के लिए चल पड़े। राजा भी बहुत प्रभावित हुए,उसे महल में ले आये, भोजन खिलाया और फिर महल दिखाते हुए हर कक्ष की एक-एक मूल्यवान वस्तु का परिचय देने लगे। ऐसा करते हुए सम्राट के चेहरे पर अभिमान का जो ज्वार आता था वह शुद्धचित भिक्षु से छिपा न रह सका। अंत में राजा एक विशाल आगर के सामने जाकर ठहर गये जो अमूल्य रत्नों से भरा थ। राजा बोले- ‘‘भिक्षु श्रेष्ठ, ऐसे दुर्लभ रत्न भारत भर में कहीं नहीं मिलेंगे।‘‘ भिक्षु ने आश्चर्यचकित होने का अभिनय

करते हुए पूछा-''तब तो इनसे राज्य को भारी आय होती होगी?'' '' आय?'' भिक्षु की नादानी पर मुस्कराते हुए राजा ने कहा- '' इनकी सुरक्षा के लिए तो बहुत सारा धन खर्च करना पड़ता है।'' भिक्षु ने समझ लिया कि यह राजा नहीं वरन्, राजा का अभिमान बोल रहा है और एक निस्पृह सन्यासी के सामने भी यहअभिमान इस ऊँचाई तक पहुँचा हुआ है कि राजा को सन्यासी की बात नादानी लगती है तो फिर आम जनता के प्रति इसका कैसा व्यवहार होगा! राजा तो खजाने की सम्पत्ति का जन कल्याणार्थ सुरक्षित निधि मानता है, उसके प्रति अहंकार या मेरेपन का भाव रखने के बजाये निमित्त भाव रखता है परन्तु यह राजा अहंकार के उस ऊँचे शिखर पर चढ़ गया है जहाँ से पतन अवश्यंभावी है और पतन के बाद सर्वनाश तो स्पष्ट है ही। अत: मुझे राजा को बचाना है, उसे कल्याण और करूणा का मार्ग दिखाना है। ज्ञानी भिक्षु का रोम-रोम राजा की इस नादानी पर करूणा से भर उठा।

करूणाशील भिक्षु ने कहा-''राजन, इन पत्थरों से अधिक कीमती पत्थर मैने आपके राज्य में देखा है।'' राजा अत्यधिक आश्‍र्चचकित हो उस पत्थर को देखने के लिए उतावला हो उठा। कुछ ही क्षणों मे दोनों ने एक उपेक्षित गरीब बस्ती में एक द्वार खटखटाया। एक वृद्धा बाहर आयी और दोनों के घर के अन्दर ले गयी। भिक्षु ने एक कोने की ओर ईशरा करते हुए कहा-'' यह है।' राजा ने क्रोध में झल्लाते हुए कहा-''यह तो चक्की है।'' भिक्षु ने शान्त भाव से कहा-'' ठीक कहते हो, पर तुम्हारे सभी रत्नों से श्रेष्ठ है यह। वृद्धा के श्रम की सहयोगिनी है। इस पर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। उल्टे यह चक्की इस वृद्धा काा, इसके अंधे पति का ओरतीन बच्चों का पोषण करती है।'' करूणा की किरणें बिखेरते हुए भिक्षु नेआगे कहा-'' राजन्! धन-सम्पत्ति न दिखावा करने की चीज है, न शेखी बघारने की, न गर्व करने की और न विलासिता में उड़ाने की, न पाप कर्मो में लगाने की, इसकी सुरक्षा के लिए नींद फिटाने की भी आवश्यकता नहीं है। यह तो जनकल्याण की, पुण्यकार्यो में लगा कर भाग्य बनाने की, दूसरों की जरूरतों को पूरा कर दुआँ कमाने की चीज है। मिथ्या दर्प का त्याग कर दीजिये।'' राजा का अभिमान टूट गया। अगले ही दिन से उसनेअपनी सम्पत्ति जनहित में समर्पित कर दी।

गलत प्रयोग से दु:ख

एक गाँव में पानी की कमी रहती थी। एक परोपकारी सेठ ने पर्याप्त धन खर्च करके कुआँ बनवा दिया। लोगों का कष्ट दूर हो गया। गाँव में हँसी-खुशी छा गई। एक दिन एक शरारती लड़का कुएँ की दीवार पर चढ़ कर शरारतें करने लगा और उसमें गिर कर मर गया। लड़के का का पिता इस दु:ख में अपना विवेक खो बैठा और सेठ को गाली देने लगा कि तूने कुआँ बनवाया, इसलिए ही मेरा लड़का

अकाल-मृत्यु को प्राप्त हुआ। सेठ ने तो लोगों के सुख के लिए कुआँ बनवाया था। लेकिन बच्चे ने कुएँ की दीवार को ही खेल का मैदान समझ लिया। अच्छी चीज का भी गलत प्रयोग करेगें तो दु:ख तो मिलेगा ही।

स्वच्छ बुद्धि में ही स्वच्छ ज्ञान रहता है

एक व्यक्ति को एक महात्मा जी के पास ज्ञान-चर्चा के लिए जाना था। महात्मा जी का आश्रम ऊँची पहाड़ी पर स्थित था जहाँ पहुँचने के लिए टेढ़े मेढ़े, पथरीले रास्तों से गुजरना पड़ता था। वह व्यक्ति चलते-चलते तन और मन दोनों से थक गया। उसके अन्दर ढ़ेर सारे प्रश्नों एवं उल्टे-सुल्टी बातों की झड़ी लग गयी। वह सोचने लगा कि इस महात्मा जी को ऐसे निर्जन एवं उतार-चढ़ाव वाले रास्ते में ही आश्रम बनाना था, कोई और जगह नहीं मिली? जैसे-तैसे करके वह महात्मा जी के पास पहुँचा और अपने आने का उद्देश्य बताकर रास्ते भर सोचे गए सारे प्रश्नों की बौछार महात्मा जी पर कर दी। महात्मा जी मुस्कराने लगे एवं अन्दर जाकर एक गिलास एवं जग भर पानी ले आये। खाली गिलास को भरने लगे। पूरा भरने के बाद भी भरते ही रहे। वह व्यक्ति आश्चर्यचकित हो महात्मा जी को देखने लगा और बोला-' महाराज, यह गिलास तो भर चुका है, फिर भी आप इसे भरते ही जा रहे हो।' महात्मा जी ने कहा-'' जिस प्रकार भरे हुए गिलास में और पानी नहीं भरा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार पहले से ही व्यर्थ बातों से भरे मन में ज्ञान की बाते कैसे भर सकती है? ज्ञान समझने के लिए बुद्धि रूपी पात्र हमेशा खाली, शान्त एवं निर्जन होना चाहिए। वह व्यक्ति महात्मा जी का ईशारा समझ गया और उसने अपने दृष्टिकोण और आदत को बदलने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसके मन में महात्मा जी के प्रति सम्मान भाव जग गया।

धरनी का प्रभाव

श्रवण कुमार अपने अन्धे मात-पिता को चारों धाम की यात्रा कराने निकल पड़ा। दोनों को कावड में बिठाकर हर तीर्थ स्थान की यात्रा करा रहा था। अब वह हरद्विार के तरफ प्रस्थान कर रहा था कि बीच रास्ते में उसे संकल्प आया कि मेरे मात-पिता अन्धे हैं। मैं अपने जीवन का मूल्यवान समय फालतू में गँवा रहा हूँ। मुझे अपने अन्धे माँ बाप से कुछ मिलता तो है नहीं मैं क्यों इन्हे उठाकर घूम रहा हूँ। उसने अपने मात-पिता से कहा आप मुझें क्या देंगे? मैं आपको यात्रा करा रहा हूँ, मुझे क्या मिलेगा? अन्धे मात-पिता प्रश्न सुनकर चौक गये, लेकिन उसके पिता ने श्रवण कुमार से पूछा, बेटे अभी हम कौन से स्थान पर हैं? उसने कहा दिल्ली। उसके पिता ने कहा बेटे,हमको थोड़ी दूर हरिद्वार ले चलो,

फिर तुम्हें जो चाहिए हम देंगे। श्रवण कुमार अपने मात-पिता को हरिद्वार ले आया । जब वह हरिद्वार पहुँचा तो अपने मात-पिता से कुछ माँगने पर उसे बहुत पश्चात हुआ और रोने लगा और कहा आपसे कुछ माँगकर मैनें बहुत बड़ा अपराध किया । अब मेरा जीवन में रहना उचित नहीं है। तब उसके उन्धे पिता ने कहा बेटा, इसमें तुम्हारी कोई ग्लानि नहीं है। दिल्ली की धरनी पर सब लोग लेने वाले हैं, कोई सेवा करने वाला नहीं। इसलिए उस धरनी के प्रभाव के कारण तुमने हमसे कुछ माँगा। अब हम भगवान की धरनी पर हैं जो हरी सबको देता है जिस कारण तुम्हें पश्चाताप हुआ। इसलिए बेटे तुम बहुत श्रेष्ठ हो, सिर्फ धरनी का प्रभाव तेरे पर पड़ा था, वह अब नष्ट हो गया।

निश्चय बुद्धि

अंगद जब रावण के दरबार से वापस लौटा तो अंगद के जो साथी थे वह उसे कहने लगे कि तेरे में इतनी शक्ति कैसे आ गई कि रावण की सेना का कोई भी योद्धा तुम्हारा पैर नहीं हिला पाया। यदि तुम्हारा पैर हिल जाता तो? अंगद ने कहा नहीं हिलता। उसके साथी ने कहा फिर भी हिल जाता तो, अंगद निश्चय से बोला नहीं हिलता। उसके साथी बार-बार यहीं प्रश्न पुछते रहे यदि हिल जाता तो? आखिर अंगद ने उत्तर दिया कि रावण की सभा में जब मैंने पैर रखा तो अपनी शक्ति के आधार पर नहीं रखा था। मैंने रावण को सभा में बोला की यदि यह पैर हिल गया तो सीता मैंया को यहीं छोड़ जाऊँगा। अगर मेरा पैर हिल जाता तो मेरा क्या जाता, रामजी की सीता जी जाती और मुझे पूरा निश्चय था, राम भगवान कभी ऐसा नहीं होने देते। जिस कारण रावण की सभा के बड़े से बड़े सुरमा भी मेरा पैर नहीं हिला पाये।

सर्मपणता

एक बार एक चोर चोरी करने निकला, उसे कोई स्थान ऐसा नहीं मिला जहाँ वह चोरी कर पाये। आखिर उसे पता चला कि पास में शिव मन्दिर में शिवलिंग के ऊपर पानी डालने वाला लोटा (जिसमें से बुन्द-बुन्द पानी शिवलिंग के ऊपर गिरता रहता है) सोने का है। उसने उस लोटे को चोरीकरने की मनसा बना ली और जब मन्दिर में कोई नहीं था वह लोटी लेने मन्दिर में घुसा। लोटी ऊपर थी। उसने आस-पास ऐसे कोई चीज ढूंढ़ना चाहा, जिसपर वह चढ़कर लोटी तक पहुँच जाये। जब उसे कोई साधन नहीं मिला तो उसने शिव प्रतिमा केऊपर चढ़ लोटी उतारने लगा। उसी समय उसके कानों में आवाज आयी, बेटे! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। चोर चौंक गया। आस पास देखा कोई दिखाई नहीं दिया। तब शिव प्रतिमा से प्रकाश फैलने लगा और शिव ने कहा मैं तुम पर अति प्रसन्न हूँ। चोर नीचे

उतर शिव प्रतिमा को प्रणाम किया और कहा प्रभु मैं तो एक चोर हूँ और आज आपके घर में चोरी करने के इरादे से आया था। मुझे माँफ कर दे। आज से मैं कभी चोरी नहीं करूँगा। तब शिव की प्रमिा से आवाज आयी , बेटे! मैं तेरे पर इसलिए प्रसन्न हूँ, क्योंकि की मन्दिर में बहुत लोगआते हैं , कोई मेरे ऊपर दुध चढ़ाता है कोई बेलपत्र, कोई फुलमाला, लेकिन तुम तो पूरे का पूरा मेरे ऊपर चढ़ गया। इसलिए मैं तेरे पर प्रसन्न हूँ। चाहे चोर कितना भी पापाचारी चोर हो जो अपने जीवन को भगवान पर बलिहार कर देता है वह महान बन जाता है। उस दिन से वह चोर चोरी छोड़ परमात्मा का सच्चा-सच्चा पुत्र बना और महान सन्त बन गया।

सबसे श्रेष्ठ धन, संतोष धन

एक बार किसी नगर में अकाल पड़ गया। लोग भूखों मरने लगे। उस नगर के जमींदर ने नगर में यह कहलवा दिया कि मैं प्रतिदिन बच्चों को खाने के लिए रोटी बाटूँगा। हमारे यहाँ सभी बच्चे समय पर इक्ट्ठे हो जायें। सभी बच्चों के आने पर वह जमींदार अपने हाथों से दो-दो रोटी प्रत्येक बच्चे को देता था। किन्तु एक दस वर्ष की लड़की जो बड़ी ही भोली-भाली थी। एकान्त में खड़ी रहती, जब उसकी बारी आती तो अन्त में सबसे छोटी रोटी ले लेती थी। अन्य सभी बच्चे उसे धक्का देकर बड़ी-बड़ी रोटियाँ ले लेते थे। प्रतिदिन इसी तरह से शान्त होकर सबसे बाद में वह लड़की छोटी रोटी खुशी-खुशी लेकर घर पर अपनी माँ को देती थी। उधर माँ ओर बेटी के सिवाय और कोई भी नहीं था। दोनों रोटी खाकर भगवान का गुणगान करते हुए सूख,शान्ति से सो जाते थे। इसी प्रकार एक दिन वह लड़की रोटी लेकर घर आयी। माँ ने जब रोटी तोड़ी तो उसमें से सोने के तीन छोटे-छोटे दाने मिले। माँ ने कहा-‘‘ बेटी इस रोटी में सोने के तीन छोटे-छोटे दाने हैं, ले जाकर जमींदार को दे आवो।‘‘

लड़की ने कहा-‘‘ अच्छा माँ, मैं अभी लेकर जाती हूँ।‘‘ वह लड़की टूटे हुए रोटी में सोने के दाने रखकर जमींदर के पास पहुँची और कहने लगी-‘बाबू जी, यह लो अपने सोने के दाने।‘ जमींदार के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि यह लड़की कैसे सोने के दाने देने के लिए आयी है! जमींदार के पूछने पर उस लड़की ने सारा किस्सा कह सुनाया। जमींदार सब कुछ सुनने के बाद उस लड़की को अपलक नजरों से देख रहा था। क्योंकि जमींदार जानता था, कि यह लड़की शान्त खड़ी होकर सबसे अन्त में छोट रोटी लेकर चली जाती थी।

जमींनदार ने कहा-‘‘ बेटी, तुम इसे ले जावो। यह तुम्हारे सन्तोष का फल है।‘‘ लड़की ने उत्तर दिया-‘‘ बाबू जी, सन्तोष का फल तो मुझे पहले ही प्राप्त हो गया कि भीड़ में धक्के नहीं खाने पड़े।‘‘

जमींदार यही सोचता था, कि बच्ची तो है छोटी, परन्तु बात बड़ी ही ऊँची और सयानी करती है। जमींदार के बहुत कहने-सुनने पर लड़की सोने के दाने को लेकर घर चली गयी। बाद में जमींदार ने खूब सोच समझकर उस लड़की एवं उसके माता को अपने घर बुलवा लिया। उसे धर्म-पुत्री बनाकर समूचे सम्पत्तिका उत्तराधिकार सौंप दिया। क्योंकि सन्तान हीन होने के कारण जमींदार को वैसे भी सन्तान की आवश्यकता थी। कहने का भाव यह है कि स्थूल धन से श्रेष्ठ सन्तोष धन होता है। क्योंकि उस बच्ची को सन्तोष का फल कितना मीठा प्राप्त हुआ।

अंर्तमन में झाँके

एक बहुत बड़ी संत महिला हुई '' राबिया वसी'' । एक बार वह अपनी कुटिया के बाहर कुछ ढूंढ़ रही थी। उधर से कुछ फकीर गुजरे, उन्होंने राबिया से पूछा बहन आप क्या ढूंढ़ रही हो। राबिया बोली, रूबिल रूपये का सिक्का खो गया है, उसे ढूढ़ रही हूँ। वे फकीर भी राबिया के साथ रूबिल ढूढंने लगे। काफी समय तक ढूंढा मगर रूबिल ना मिला, एक फकीर ने पूछा-बहन, रूबिल कहाँ गिरा था। राबिया ने कहा- खोया तो झोपड़ी के अन्दर था।

अब वे फकीर हंसे, सिक्का झोपड़ी में खोया और ढूढ़ बाहर रही हो, सिक्का बाहर कैसे मिलेगा, वह तो घर में ही मिलेगा। राबिया ने कहा तुम ठीक कहते हो भैया, मगर क्या करूँ घर में तो अंधरा है बाहर रोशनी है इस कारण बाहर ढूढ़ रही हूँ शायद मिल जाये। पकीरों ने कहा सिक्का खोया झोपड़ी में है तो मिलेगा भी वहीं झोपड़ी में ही। अंधरो है तो दीपक जला लो बाहर ढूंढना बेकार है। राबिया मुस्कराई और गम्भीर होकर बोली, जब आपको इतना मालूम है तो आप लोग बाहर क्या ढूढ रहे हो। जिसकी खोज के लिए आप लोग ने सारी उम्र बीता दी वह तो आपके पास है। आप स्वयं मे शान्ति, सुख, शक्ति, प्रेम, आनन्द स्वरूप हो, ये आपका अविनाशी खजाना है जो आपके पास है इसलिए स्वयं अन्धकार से प्रकाश में आओ तो स्वयं की पहचान होगी। किसी ने सत्य कहा है।

''तमसो माँ ज्योर्तिगमय''

टाइम पास

एक बार एक रेल में दो यात्री सफर कर रहे थे। स्टेशन से गाड़ी के चलने के कुछ समय पश्चात् पहले यात्री ने दूसरे से पूछा- '' भाई साहब, आप कहाँ तक जा रहे है?

दूसरे यात्री ने उत्तर दिया- जी, मैं दिल्ली तक जा रहा हूँ। और आप कहाँ तक जा रहे हैं?

पहला यात्री- जी, मैं भी दिल्ली तक ही जा रहा हूँ।

पहला यात्री- आप कहाँ से आ रहे हैं?

दूसरा यात्री- जोधपुर से। और आप कहाँ से?

पहला- मैं भी जोधपुर से ही आ रहा हूँ। अच्छा आप जोधपुर में कहाँ रहते हैं?

दूसर- मैं सरदारपुरा में रहता हूँ। और आप जोधपुर में कहाँ रहते हैं?

पहला-मैं भी सरदारपुरा में ही रहता हूँ।

दूसरा-सरदारपुर मेंआप किस गली में रहते है?

पहला- सरदारपुरा में मैं ९ॅू रोड में रहता हूँ। और आप सरदारपुरा में कहाँ रहते है?

दूसरा- मैं भी ९ॅू में ही रहता हूँ। अच्छा आपका मकान नम्बर कितना है?

पहला- 37/4, और आपके मकान का नम्बर क्या है?

दूसरा- मेरा भी 37/4, है।

अब तो साथ में बैठे अन्य सभी मुसाफिर परेशान हो गये कि ये दोनों एक ही शहर में, एक ही गली में तथा एक मकान में रहते हैं और एक-दूसरे को जानते तक भी नहीं है! एक मुसाफिर से रहा नहीं गया तो उसने पूछ ही लिया-''माँफ करना भाई साहब, मुझे एक बात समझ में नहीं आती कि आप दोनों एक ही मकान में रहते हो और एक दूसरे को जानते तक भी नहीं है! क्या आप अपने मकान में आँखें बन्द करके चला करते है? इस पर पहले व्यक्ति ने उत्तर दिया-'' दरअसल हम दोनों बाप-बेटे हैं। मैं इसका बाप हूँ और यह मेरा बेटा है। हम लोग आपस में बात कर रहे थे, ताकि आराम से हमारा समय बीत जाये।''

आज संसार में कई लोग हैं जो ऐसी ही निरर्थक बातों में अपना बहुमूल्य समय को बरबाद किये जा रहे हैं। जिस बात से न स्वयं का फायदा है और नही किसी अन्य का कल्याण है। वे सिर्फ समय बीताने के लिये ही आलोचनायें करते हैं। उनकी आलोचनाओं में न स्वार्थ होता है और नहीं परमार्थ होता है।

जंगल में आग

एक बार जंगल में भीषण आग लगी। पशु झील के दूसरी ओर जमा हो गए तथा आग की लपटों को देखने लगे। एक छोटे पक्षी ने आग को देखकर अपनी छोटी चोंच में एक बूँद पानी लिया तथा उसे लपटों पर टपकाया। वह वापस आया, अपनी चोंच में दूसरा बूँद लिया तथा टपका दिया तथा इस तरह वह मेहनत से आगे पीछे उड़ने लगा।

दूसरे पशु सिर्फ उसे देख रहे थे तथा उन्होंने एक दूसरे को कहा, '' क्या यह सोच रहा है कि वह एक बूँद पानी से कुछ कर लेगा? एक स्थान पर उन्होंने उससे पूछा: '' हमें बताओ, 'छोटे पक्षी। क्या तुम ईमानदारी से यह विश्वास करते हो कि पानी की छोटी बूँद से तुम आग बुझा सकते हो?

छोटे पक्षी ने उत्तर दिया: '' मैं कर रहा हूँ जो मुझे करना चाहिए।'' तभी वहाँ से एक देवदूत गुजरा, उसने छोटे पक्षी को देखा तथा उसने जोरों की वर्षा की । आग बुझ गई।

अन्न का मन पर प्रभाव

एक सच्ची जीवन -कथा 'सुन्दर समुद्र कुमार' नामक व्यक्ति की है। यह एक ऐसे घराने में पैदा हुआ था जिसके पास करोड़ों रूपयों की सम्पत्ति थी। लिखा है कि एक दिन उसने देखा कि कुछ लोग अपने-अपने हाथ में पुष्प-मालाएं लिये दूसरे गाँव में सत्संग सुनने जा रहे थे। उसने उनसे पूछा- 'आप लोग कहाँ जा रहे हैं, उन लोगों ने उत्तर दिया-हम शिक्षक (बुद्ध) से धर्म की शिक्षा सुनने जा रहे हैं।' उसनेकहा- 'मैं भीआपके साथ चलूँगा।' ऐसा कहकर वह भी उनके साथ हो गया।

दूसरे गाँव में पहुँच कर उसने बुद्ध का उपदेश सुना और बहुत प्रभावित हुआ। उसने घर-बार का सन्यास करके बुद्ध के संघ में सम्मिलित होने का संकल्प किया और जब सारी संगत वहाँ से चली गयी तो उसने अपना विचार बुद्ध के सामने रखा। परन्तु बुद्ध ने कहा, ' आप पहले अपने माता-पिता कीआज्ञा ले आओ, तभी आपको संघ में रखा जा सकता है- यह हमारा नियम है।'' सुन्दर समुद्र कुमार घर गया और बहुत यत्न करके संघ में सम्मिलित होने के लिए अपने माता-पिता से आज्ञा ले आया। तब वह सन्यास करके संघ के नियम में रहने लगाा। फिर, वह उस गाँव को छोड़कर, दूसरे स्थान पर चला गया।

जिस गाँव में वह पहले रहता था वहाँ एक दिन एक मेला लगा। उसकी माता ने उस मेले में 'सुन्दर समुद्र कुमार' के दोस्तों को खूब खेलते और मौज मनाते देखा। यह देखकर उसके माता-पिता बहुत रोने लगे। वे सोचने लगे कि अब तो हमारे बच्चे को वापस आना मुश्किल है। उसी समय एक वेश्या उनके घर आई और बोली-'माता, आप रोती क्यो हो? 'अपने बच्चे की याद मुझे सता रही है। इसलिए रो रही हूँ'- वह बोली। 'आपका लड़का कहाँ गया है।' वेश्या ने पूछा। 'वह तो सन्यास लेकर भिक्षूओं के साथ 'राजगहा गाँव' में चला गया है।' माता ने कहा। 'यदि मैं उसे इस संसारमें वापस ले आऊँ तो आप मुझे क्या इनाम दोगी? वेश्या ने प्रश्न किया। माता ने उत्तर दिया-' हम तुम्हें इस घर की सारी सम्पत्ति की मालकिन बना देंगी।' 'अच्छा, तो मुझे अपना यत्न करने के लिए खर्च दीजिए'। ऐसा कहकर उस वेश्या ने धन लिया और वह 'राजगहा गाँव' में पहुँची।

उसने वहाँ जाकर पहले देखा कि 'सुन्दर समुद्र कुमार', जो कि भिक्षू बन गया था, वह प्रायः भिक्षा लेने किधर-किधर जाता है। यह मालूम करने के बाद उसने उस गली में एक अच्छा मकान रहने के लिए ले लिया जिस गली में वह भिक्षू भिक्षा के लिए प्रायः आया करता था। वह प्रातः ही अच्छा भोजन बना लेती थी। ऐसे कुछ दिन जब हो गए तब एक दिन उसने कहा-''महोदय, यहीं बैठकर ही इसे खा लीजिये।'' यह कहकर उसने उसका कटोरा अथवा कौपिन माँगा। भिक्षु ने उसे दे दिया। उसमें वेश्या ने स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ डालकर भिक्षू को दिए। भोजन कर लेने के बाद उसने कहा-''महात्मन् यह अच्छी जगह है, आप यहीं बैठकर प्रतिदिन भोजन कर लिया कीजिये।'' इस प्रकार वहीं अपने बरामदे में ही उसे बिठाकर वह उसे अपने हाथों से बना हुआ भोजन देती रही।

उसके बाद उसने गली के बच्चों को मिठाईयाँ आदि खिलाकर उनके मन को जीत लिया। एक दिन उन बच्चों को वह बोली- '' जब वह भिक्षू यहाँ आता है तब आप भी आ जाया करो और धूल उड़ाने लग जया करो और जब मैं इसके लिए आपको रोकूँ तब भी आप मत रूकना''। अतः अगले ही दिन जब वह भिक्षू आया और भोजन करने लगा तब वे बच्चे आकर धूल उड़ाने लगे और रोकने पर भी न माने। तो दूसरे दिन जब वह भिक्षू आया तो वेश्या ने कहा-''महोदय, ये लड़के चंचल हैं, धूल उड़ाते हैं, कहने पर भी नहीं टलते, अतः आप घर के अन्दर चलकर बैठिए!'' भिक्षु ने मान लिया। फिर कुछ दिन बाद उस वेश्या ने उन बच्चों को सिखाया कि जब भिक्षू अन्दर बैठे और खाना खाये तो आप शोर मचाया करो और रोकने पर भी मत रूकना। अतः जब ऐसा ही हुआ तो वेश्या ने भिक्षू को घर की ऊपर की मन्जिल पर, आवाजों से परे शान्त स्थान पर बैठकर खाने के लिए कहा। भिक्षु ने मान लिया। तब वेश्या ने अपनी अश्लील कामना उसके सामने रखी।

इस प्रकार, जीवन-वृत में आगे बताया गया है कि उस वेश्या के हाथों से बने अन्न ने 'सुन्दर समुद्र कुमार' को, जो कि भिक्षु बन गया था और वैराग्य के वश करोड़ो रूपयों की अपनी सम्पत्ति को भी लात मार गया था, ऐसा बना दिया कि वह दिनों-दिन अपने धर्म-कर्म की सुध-बुध भूलता गया। आखिर उसे पश्चाताप हुआ। वेश्या तो काम-वृति और इनाम के लोभ के वशीभूत थी। अतः उसकी वृति से अन्न पर प्रभाव किया जिसे स्वीकार करने से भिक्षू के मन में उस स्वादिष्ट भोजन का लोभ भी हो गया और उसके मन की अवस्था भी बिगड़ गयी। लिखा है कि बुद्ध ने ही अपने आत्मिक बल से उसे पतित होने से बचा लिया।

अज्ञानता से क्रोध होता है

एक बार समुद्र में एक भयानक तूफान आया जिसमें अनेक जहाज अपना रास्ता भूल गए और इधर-उधर भटकने लगे। इनमें एक युद्धपोत भी था जो तूफान केकारण रास्ता भटक गया था। आधी रात के बाद जब तूफान शांत हुआ तो युद्धपोत केकैप्टन ने अपने अधीनस्थ एक अधिकारी को आदेश दिया कि वह जहाज के ऊपर जाए तथा यह पता लगाए कि उनका जहाज इस समय कहाँ है और उसकी सही दिशा भी निर्धारित करें। वह अधिकारी बड़े जोश के साथ ऊपर गया। वहाँ उसने दिशा का अनुमान किया और उस आधार पर अपने जहाज की दिशा बदल दी। फिर उसने अपने इधर-उधर चारों ओर निगाह दौड़ाई। अपने जहाज के मार्ग पर दूर कहीं उसे ऐसी रोशनी दिखाई पड़ी जो स्थिर थी। यह देखकर वह नीचे उतरा और जहाज के कैप्टन को सूचित किया। जहाज के कैप्टन ने उसे कहा कि वह दूसरे जहाज को संदेश भेज कर कहे कि वह अपना मार्ग 20 डिग्री बदल ले। उस अधिकारी ने जब यह संदेश भेजा तो तुरंत ही उसे उत्तर मिला कि तुम स्वयं अपना जहाज 20 डिग्री मोड़ लो। उस अधिकारी ने यह संदेश अपने कैप्टन को सुनाया। कैप्टन सुन कर क्रोधित हुआ और बोला कि वह अपने आपको क्या समझता है जो हमें रास्ता बदलने के लिए कहा रहा है। कैप्टन ने अपने अधिकारी को कहा कि इस बार वह कैप्टन के नाम से संदेश भेजे। अधिकारी ने कैप्टन की आज्ञा का पालने करते हुए दूसरा मैसेज भेजा कि इस युद्धपोत का कैप्टन कहा रहा है कि तुम अपने जहाज का रास्ता बदल लो। इसका भी तुरंत उत्तर मिला जिसमें यह कहा गया कि श्रीमान मैं तो चाहे सेकण्ड क्लास अधिकरी हूँ फिर भी आपको सलाह देता हूँ कि आप अपने युद्धपोत का मार्ग 20 डिग्री बदल लें। इस उत्तर ने कैप्टन के क्रोध को और अधिक भड़काते हुए आग में घी का काम किया। उसने क्रोध में काँपते हुए अपने अधिकारी को कहा कि अब तुम यह संदेश भेजो कि यह एक युद्धपोत है इसलिए यह अपना रास्ता नहीं बदलेगा। फिर तुरंत उत्तर मिला कि मैं तो 'लाइट-हाउस' हूँ, मैं अपना रास्ता कैसे बदल सकता हूँ। इस उत्तर ने युद्धपोत के कैप्टन की मानसिकता को बदल दिया।

खुशी का आधार, उद्देश्य का ज्ञान

बहुत पहले जब माउण्ट आबू में दिलवाड़ा मन्दिर का निर्माण कार्य चल रहा था दो मूर्तिकार पत्थर काटने का काम कर रहे थे। एक बूढ़ा व्यक्ति इस बात की खोज के लिए निकल पड़ा कि वह जीवन का अर्थ ढूँढ़ सके तथा उन लोगों के जीवन के बारे में जान सके जिनके साथ वह इस धरती पर रहता है। अंत में वह उन काम कर रहे व्यक्त्यिों के पास आया। पहले वह उसके पास गया जो सख्त मेहनत के कारण थका हुआ लग रहा था तथा एक बड़े पत्थर की कटाई कर रहा था। बूढ़े ने पूछा-दोस्त, तुम क्या कर रहे हो? उस आदमी ने अरूचिपूर्ण भाव से उत्तर दिया-जो तुम्हें दिखाई दे रहा है, मुझे

शाम होने तक इस सारे पत्थर को तोड़ना है। यह जानकर बूढ़े को बहुत दु:ख हुआ कि वह व्यक्ति अपने काम से खुश नहीं है। फिर वह दूसरे व्यक्ति के पास गया जो उसी प्रकार का काम कर रहा था। परन्तु वह बड़ा प्रसन्न और सन्तुष्ट दिखाई दे रहा था और सीटी बजाते हुए अपने काम में व्यस्त था। बूढ़े आदमी ने उसको पूछा- दोस्त, तुम क्या कर रहे हो' । उस आदमी ने सिर उठा कर देखा और मुस्कराते हुए उत्तर दिया-मैं एक मंदिर बना रहा हूँ। दोनों ही व्यक्ति एक ही प्रकार का काम कर रहे थे लेकिन दूसरा व्यक्ति जिसने अपने उद्देश्य को भली प्रकार से समझ लिया था, प्रसन्न और उत्साहित होकर अपने काम का आनंद ले रहा था। जबकि पहला व्यक्ति जिसे अपने कार्य के उद्देश्य का ज्ञान नहीं था, उसके जीवन में उत्साह और प्रसन्नता भी नहीं थी और नहीं वह अपना काम करके संतुष्ट हो पा रहा था। सारा दिन काम करके वह थक कर चूर हो जाता था।

महानता की महत्ता

एक सद्गृहस्थ संयम से रहता था। परिवार को सुसंस्कारी बनाने में लगा रहता। नीतिपूर्वक आजिविका कमाता। बचा हुआ समय और धन परमार्थ में नियोजित करता। वह तापेवन में बसा तो नहीं, पर घर में ही तपोवन बसा दिया।

देवता इस धर्मात्मा विरक्त गृहस्थ की योग-साधना से बहुत प्रसन्न हुए। इन्द्र उसके सम्मुख प्रकट हुए और वर माँगने के लिये कहा।

क्या माँगता, जब असंतोष ही नहीं तो अभाव किस बात का? हाथ पसारने में इज्जत भी कम होती है। स्वाभिमान गँवाकर ही किसी से कुछ पाया जा सकता है। सो उसने ऐसा उपाय खोजा, जिसमें ऋणभार भी न लदे और देवता बुरा भी न मानें।

उसने वर माँगा- उसकी छाया जहाँ भी पड़ें, वहाँ कल्याण बरसने लगे। वरदान मिल गया, पर अचम्भित देवता ने पूछा, 'हाथ रखने पर कल्याण होने पर तो आनन्द भी आता, प्रशंसा भी होती और प्रत्युपकार की सम्भावना रहती। छाया से कल्याण होने पर इन लाभों से वंचित रहना पड़ेगा। फिर ऐसा विचित्र वर क्यों माँगा?''

सद्गृहस्थ ने कहा, '' देव! सामने वाले का कल्याण होने पर तो अपना अहंकार पनपेगा और साधना में विघ्न डालेगा। छाया किस पर पड़ी, कौन कितना लाभान्वित हुआ, इसका पता न चलना ही मेरे जैसे विनम्रों के लिये श्रेयस्कर है।'' साधना का यही स्वरूप अनुकरणीय है। यही क्रमिक प्रगति के पथ पर चलते-चलते व्यक्ति को महामानव बना देता है।

परमार्थी संत

एक नगर में एक जुलाहा रहता था। वह स्वभाव से अत्यंत शांत, नम्र तथा वफादार था। उसे क्रोध तो कभी आता ही नहीं था। एक बार कुछ लड़कों को शरारत सूझी। वे सब उस जुलाहे के पास यह सोचकर पहुँचे कि देखें इसे गुस्सा कैसे नहीं आता? उनमें एक लड़का धनवान माता-पिता का पुत्र था। वहाँ पहुँचकर वह बोला-'यह साड़ी कितने की दोगे? जुलाहें ने कहा 'दस रूपये की।'

तब लड़के ने उसे चिढ़ाने के उद्देश्य से साड़ी के दो टुकड़े कर दिया और एक टुकड़ा हाथ में लेकर बोला ' मुझे पूरी साड़ी नहीं चाहिए, आधी चाहिए। इसका क्या दाम लोगे? जुलाहे ने बड़ी शान्ति से कहा 'पाँच रूपये।'

लड़के ने उस टुकड़े के भी दो भाग करते हुए पूछा- 'और इसका दाम? जुलाहा अब भी शांत था। उसने बताया-' ढ़ाई रूपये।' लड़का इसी प्रकार साड़ी के टुकड़े करता गया। अंत में बोला-' अब मुझे यह साड़ी नहीं चाहिए। यह टुकड़े मेरे किस काम के? जुलाहे ने शांत भाव से कहा 'बेटे! अब यह टुकड़े तुम्हारे ही क्या, किसी के भी काम के नहीं रहे।' अब लड़के को शर्म आई और वह कहने लगा- मैंने आपका नुकसान किया है। अत: मैं आपकी साड़ी के दाम दिये देता हूँ। पर संत जुलाहे ने कहा कि जब आपने साड़ी ली ही नहीं तब मैं आपसे पैसे कैसे ले सकता हूँ? लड़के का धनाभिमान जागा और वह कहने लगा कि मैं बहुत अमीर आदमी हूँ। तुम गरीब हो। मैं रूपये दे दूँगा तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ेगा, पर तुम यह घाटा कैसे सहोगे? और नुकसान मैंने किया है तो घाटा भी मुझे ही पूरा करना चाहिए।

संत मुस्कराते हुए कहने लगे- 'तुम यह घाटा पूरा नहीं कर सकते। सोचों, किसान का कितना श्रम लगा तब कपास पैदा हुई। फिर मेरी स्त्री ने अपनी मेहनत से उस कपास को बीना और सूत काता। फिर मैंने उसे रंगा और बुना। इतनी मेहनत तभी सफल हो जब इसे कोई पहनता, इससे लाभ उठाता, इसका उपयोग करता। पर तुमने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। रूपये से यह घाटा कैसे पूरा होगा? जुलाहे की आवाज में आक्रोश के स्थान पर अत्यंत दयार्द्र सौम्यता थी। लड़का शर्म से पानी-पानी हो गया। उसकी आँखे भर आई और वह संत के पैरों में गिर गया।

जुलाहे ने बड़े प्यार से उसे उठाकर उसकी पीठ पर हाथ फिराते हुए कहा-' बेटा, यदि मैं तुम्हारे रूपये ले लेता तो हो सकता है उससे मेरा काम चल जाता। पर तुम्हारी जिन्दगी का वही हाल होता जो उस साड़ी का हुआ। कोई भी उससे लाभान्वित नहीं होता। साड़ी एक गई, मैं दूसरी बना लूँगा। पर तुम्हारी जिन्दगी एक बार अहंकार में नष्ट हो गई तो दूसरी कहाँ से लाओगे तुम? तुम्हारा पश्चाताप ही मेरे लिए बहुत कीमती है।'

लड़का तथा उसके साथी बहुत शर्मिन्दा हुए। वह जुलाहा था दक्षिण भारत का महान संत तिरूवलुवर।

बुद्धिमान बंजारा

एक बंजारा था। वह बैलों पर मुल्तानी मिट्टी लादकर दिल्ली की तरफ जा रहा था। रास्तें में कई गाँवों से गुजरते समय उसकी बहुत सी मिट्टी बिक गयी। बैलों की पीठ पर लदे बोरे आधे तो खाली हो गये और आधे भरे रह गये। अब वे बैलों की पीठ पर टिके कैसे? क्योंकि भार एक तरफ हो गया। नौकरों ने पूछा कि क्या करे? बंजारा बोला-'अरे! सोचते क्या हो, बोरों के एक तरफ रेत भर लो। यह रास्थान की जमीन है, यहाँ रेत बहुत हैं।' नौकरों ने वैसा ही किया। बौलों की पीठ पर , एक तरफ आधे बोरे में मुल्तानी मिट्टी हो गयी और दूसरी तरफ आधे बोरे में रेत हो गयी।

दिल्ली से एक सज्जन उधर आ रहे थे। उन्होंने बैलों पर लदे बोरों में एक तरफ रेत झरते हुए देखी तो वे बोले कि बोरों में एक तरफ रेत क्यों भरी है? नौकरों ने कहा- 'सन्तुलन बनाने के लिये'। वे सज्जन बोले-'अरे! यह तुम क्या मूर्खता करते हो? तुम्हारा मालिक और तुम एक से ही हो। बैलों पर मुफ्त में ही भार ढ़ो कर उनको मार रहे हो। मुल्तानी मिट्टी के आधे-आधे दो बोरों को एक ही जगह बांध दो तो कम-से-कम आधे बैल तो बिना भार के खुले चलेंगे।' नौकरों ने कहा आपकी बात तो ठीक जँचती है, पर हम वही करेंगे, जो हमारा मालिक कहेगा। आप जाकर हमारे मालिक से यह बात कहो और उनसे हमें हुक्म दिलवाओ। वह मालिक (बंजारे) से मिला और उससे बात कही। बंजारे ने पूछा कि आप कहाँ के हैं? कहाँ जा रहे है? उसने कहा कि मैं भिवानी का रहने वाला हूँ। रूपये कमाने के लिए दिल्ली गया था।

कुछ दिन वहाँ रहा, फिर बीमार हो गया। जो थोड़े रूपये कमाये थे, वे खर्च हो गये। 'व्यापार में घाटा लग गया। पास में कुछ रहा नहीं तो विचार किया कि घर चलना चाहिए। उसकी बात सुनकर बंजारा नौकरों से बोला कि इनकी सम्मति मत लो। अपने जैसे चल रहे हैं, वैसे चलो। इनकी बुद्धि तो अच्छी दिखती है, पर उसका नतीजा ठीक नहीं निकलता,, अगर ठीक निकलता तो ये धनवान् हो जाते। हमारी बुद्धि भले ही ठीक न दिखे, पर उसका नतीजा ठीक होता है। मैंने कभी अपने काम में घाटा नहीं खाया।

बंजारा अपने बैलों को लेकर दिल्ली पहुँचा। वहाँ उसने जमीन खरीद कर मुल्तानी मिट्टी और रेत दोनों को अलग-अलग ढेर लगा दिया और नौकरों से कहा कि बैलों को जंगल में ले जाओ और जहाँ चारा-पानी हो, वहाँ उनको रखो। यहाँ उनको चारा खिलायेंगे तो नफा कैसे कमायेंगे? मुल्तानी मिट्टी

बिकनी शुरू हो गयी। उधर दिल्ली का बादशाह बीमार हो गया। वैद्य ने सलाह दी कि अगर बादशाह राजस्थान के धोरे (रेत की टीले)-पर रहें तो उनका शरीर ठीक हो सकता है। रेत में शरीर को निरोग करने की शक्ति होती है। अत: बादशाह को राजस्थान भेजो।

'राजस्थान क्यों भेजे? वहाँ की रेत यही मँगा लो।' 'ठीक बात है। रेत लाने के लिए ऊँटों को भेजो।' 'ऊँट क्यों भेजे? यहीं बाजार में रेत मिल जायेगी।' 'बाजार में कैसे मिल जायेगी?' 'अरे! यह दिल्ली का बाजार है, यहाँ सब कुछ मिलता है। मैंने एक जगह रेत का ढ़ेर लगा हुआ देखा है।'

'अच्छा! तो फिर जल्दी रेत मँगवा लो।' बादशाह के आदमी बंजारे के पास गये और उससे पूछा कि रेत क्या भाव है? बंजारा बोला कि चाहे मुल्तानी मिट्टी खरीदों, चाहे रेत खरीदो, एक ही भाव है। दोनों बैलों पर बराबर तुलकर आयें हैं। बादशाह के आदमियों ने वह सारी रेत खरीद ली। अगर बंजारा दिल्ली से आये उस सज्जन की बात मानता तो ये मुफ्त के रूपये कैसे मिलते? इससे सिद्ध हुआ कि बंजारे की बुद्धि ठीक काम करती थी।

इस कहानी से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जिन्होंने अपनी वास्तविक उन्नति कर ली है, जिनका विवेक विकसित हो चुका है, जिनको तत्व का अनुभव हो चुका है जिन्होंने अपने दु:ख, सन्ताप, अशान्ति आदि को मिटा दिया है, ऐसे सन्त महात्माओं की बात मान लेनी चाहिए, क्योंकि उनकी बुद्धि का नतीजा अच्छा हुआ है। जैसे, किसी ने व्यापार में बहुत धन कमाया हो तो वह जैसे कहे, वैसा ही हम करेंगे तो हमें भी लाभ होगा। उनको लाभ हुआ है तो हमें लाभ क्यों नहीं होगा?

ऐसे ही हम सन्त-महात्माओं की बात मानेंगे तो हमारे को भी अवश्य लाभ होगा। उनकी बात समझ में न आये तो भी मान लेनी चाहिए। हमने आजकल अपनी समझ से काम किया तो कितना लाभ लिया है? अपनी बुद्धि से अब तक हमने कितनी उन्नति की है?

गुरू और शिष्य

एक गुरू थे। जब वे बूढ़े हुए तो उनको चिन्ता होने लगी कि मेरे जाने के बाद मेरा स्थान कौन लेगा। एक व्यवित उनके पास आया, वह स्वभाव से बड़ा चंचल था। वह बोला, गुरूजी मैं आपको अपना गुरू बनाना चाहता हूँ, आपके पास रहना चाहता हूँ। थोड़े दिन वह गुरू के आश्रम में रहता है।

वह गुरू से जिद करके उनसे एक वरदान माँगता है तो गुरू उसको छड़ी देते है और कहते हैं कि इस छड़ी को तुम अपने पास रखना। इससे तुम्हें सब जानने को मिलेगा। वह छड़ी लेकर सबको लगाकर देखता है उसमें सबके अवगुण, दोष ही देखता रहता है। लेकिन उसका मन वहाँ कुछ लगता नहीं है। गुरू उस पर बहुत शिक्षा व सावधानियाँ सिखाने में मेहनत करते हैं। लेकिन उसमें एक

अवगुण था कि गुरू के आश्रम में आने वाले हर शिष्य की कमी-कमजोरियाँ, अवगुण देखता और वर्णन करता रहता। उनको कहता कि आप लोग बहुत अवगुणी हो। इसी कारण से गुरू के दर्शन करने जो भी शिष्य आते, वह उस लड़के से बहुत नाराज परेशान रहते। लेकिन रोज-रोज वह ऐसा ही करता।

एक दिन शिष्यों ने गुरू को उस लड़के बारे में बताया, गुरू ने उनको बहुत समझाया। वह नहीं माना फिर गुरू ने कहा कि तुम मेरी शिक्षा के लायक नहीं हो, अत: तुम यहाँ से चले जाओ। परन्तु उस लड़के ने कहा कि गुरूजी मैं सुधर जाऊँगा। आपको छोड़कर नहीं जाऊँगा। गुरू ने जी उसे क्षमा कर दिया। परन्तु उसकी परनिन्दा की आदत नहीं छूटी।

एक दिन उस लड़के के मन में ख्याल आता है कि अभी तक यह यह छड़ी सभी शिष्यों पर आजमाई है क्यों न आज इसे गुरू जी पर आजमाया जाय। यह सोचकर वह गुरूजी के पास जाता है, उस समय गुरूजी सो रहे थे। वह छड़ी लगाकर देखता है तो उस दिन गुरूजी के मन में उसके प्रति क्रोध रहता है जो वह उस छड़ी से देखता है। यह क्या! सबमें दोष है लेकिन मैं जिसको गुरू बनाया उनमें भी इतने दोष है तो क्या इनको गुरू बनाना चाहिए? चलो इस आश्रम से, यहाँ रहना ठीक नहीं है। सवेरा होता है वह गुरू के पास जाता है विदा लेने और सारी बात बता देता है, गुरूजी उसको कहते है, ठीक है तुम जाओ लेकिन जाने से पहले तुम यह छड़ी खुद को भी लगाकर देखो।, वह छड़ी खुद के पास लाता है, तो देखता है कि वह छड़ी पूरी ही अवगुण बुराई से भर जाती है तो उसको खुद के ऊपर शर्म आती है और कहता है कि आपमें में तो एक-दो दोष है लेकिन मैं तो अभी भी अवगुणों से पूरा भरा हुआ हूँ, फिर पश्चाताप करता है। आगे से मैं ऐसे कर्म नहीं करूँगा। ऐसा वायदा करता हूँ।

प्रार्थना की सार्थकता

एक प्रार्थना सभा के पश्चात् एक वकील साहब ने गाँधी जी से पूछा कि बापू आप प्रार्थना करने में इतने घंटे व्यतीत करते हैं, अगर इतना ही समय आपने देश की सेवा में लगाया होता तो अभी तक आपने देश की कितनी सेवा कर ली होती? गाँधी जी अचानक गम्भीर हो गये फिर बोले-वकील साहब आप भोजन करने में कितना समय लगाते हैं? वकील साहब ने कहा बीस मिनट लगाता हूँ। इस पर गाँधी जी ने कहा कि वकील साहब आप भोजन करने में इतना समय बर्बाद करते हैं। अगर इतना ही इस समय आप काम करते तो मुकदमे की काफी तैयारी कर ली होती। वकील साहब ने चकित होकर कहा कि 'महात्मा जी अगर मैं भोजन नहीं करूँगा तो मुकदमें की तैयारी कैसे करूँगा?' इस

पर गाँधीजी ने कहा- 'वकील साहब! जिस प्रकार आप बिना भोजन के मुकदमे की तैयारी नहीं कर सकते, वैसे ही मैं भी प्रार्थना के बिना देश की सेवा नहीं कर सकता। प्रार्थना ही मेरी आत्मा का भोजन है। इससे मेरी आत्मा को शक्ति मिलती है जिससे मैं देश की सेवा करता हूँ।

गाँधीजी की प्रार्थना सभा में जीवन दर्शन छिपा हुआ था। जैसे अन्न के थोथे छिलकों से शरीर को पुष्ट नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार सारहीन लालसाएँ आत्मा को स्वस्थ नहीं कर सकती। यदि शरीर को समय पर भोजन न दिया तो वह दुर्बल हो जता है और भूख प्यास से व्याकुल हो कर रोटी पानी के लिए तड़पने लगता है। यही बात आत्मा पर भी लागू होती है। इसे एकान्त में प्रार्थना करने की आवश्यकता होती है। इससे सार्थक बल मिलता है।

मूर्ख ब्राह्मण

किसी गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह एक बकरा खरीदने के लिए एक गाँव में गया। उसने एक अच्छा- सा बकरा खरीदा और उसे कंधे पर लाद कर घर की ओर चल पड़ा। रास्तें में कुछ धूर्तो ने उसे देखा, और सोचा कि किसी-न किसी तरह इस ब्राह्मण से यह बकरा छीनना चाहिए। आपस में सलाह करके उन्होंने ऐसी योजना बनाई। वे तीनों उस रास्ते पर तीन जगह जाकर खड़े हो गये।

सबसे पहले पहला धूर्त ब्राह्मण को मिला। उसने कहा, ' हे ब्राह्मण देवता! तुमने इस कुत्ते को अपने कंधे पर क्यों बैठा रखा है।' ब्राह्मण ने उस धूर्त की ओर देखा, और गुस्से में भरकर कहा, '' क्या तुम अंधे हो। यह बकरा तुम्हें कुत्ता दिखाई देता है।'और वह आगे बढ़ गया। कुछ दूर पहुँचने पर उसे दूसरा धूर्त मिला। उसने भी बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, 'हे ब्राह्मण देवता! तुम्हें क्या हो गया है? तुमने कुत्ते को कंधे पर क्यों बैठा रखा है?'अब ब्राह्मण को कुछ शक हुआ। उसने बकरे को बहुत ध्यान से देखा। और फिरआगे बढ गया। कुछ दूर जाने पर उसे तीसरा धूर्त मिला। उसके साथ और भी कई आदमी थे। उन सभी ने कहा, ' अरे, अरे देखो, यह ब्राह्मण देवता कुत्ते को कंधे पर बैठाकर ले जा रहे हैं।' और वे जोर-जोर से हँसने लगे। अब तो ब्राह्मण को विश्वास हो गया कि सचमुच यह बकरा नहीं कुत्ता है। मेरी ही मति मारी गई है, नहीं तो क्यों इतने लोग मेरा इस तरह मजाक उड़ाते? यह सोचकर उस ब्राह्मण ने बकरे को कंधे से उतार कर फेंक दिया। और तालाब में स्नान करके अपने घर चला गया। धूर्त तो यही चाहते थे। उन्होंने बकरे को बाजार में बेच दिया। धूर्तो से बचने के लिए हमेशा अपने विवेक से काम लेना चाहिए।

योग का विज्ञान

एक बहुत समझदार व्यापारी थे। एक बार वे बहुत सारे गहने और पैसे लेकर दूसरे शहर जा रहे थे। जब स्टेशन पर टिकट ले रहे थे, तो उन्होंने जान लिया कि एक चोर भी उनके पीछे-पीछे चल रहा है। गाड़ी में भी वह उनके सामने की सीट पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद एक स्टेशन आया, व्यापरी नीचे उतरे, मौका मिलते ही चोर ने उनका सारा सामान खोलकर देखा परन्तु कुछ भी नहीं मिला। जब गाड़ी चली तो व्यापारी आकर सीट पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद फिर एक स्टेशन आया, व्यापारी फिर नीचे उतरे और प्लेटफार्म पर टहलने लगे। चोर ने भी फिर से सारा सामान खोजा परन्तु कहीं भी पैसे और गहने नहीं मिले। उसे बहुत आश्चर्य हुआ। इसके बाद सेठ का उतरने का स्टेशन आ गया। उन्होंने चोर से पूछा, ''तुम्हारा एक प्रशन है ना?'' चोर ने कहा, '' आपको कैसे मालूम है? '' मुझे मालूम है,'' सेठ ने कहा, '' जब-जब मैं नीचे उतरा तब-तब तुम ने मेरा सामान ढूँढ़ा, तुम्हें वो पैसे और गहने चाहिये ना? हाँ सेठ, मैंने स्टेशन पर देखा था, आपके पास गहने और पैसे हैं जरूर, परन्तु इतना ढूँढ़ने पर भी मुझे वो नहीं मिले, अब बता दीजिये, आपने कहाँ छिपाये ? सेठ ने खड़े होते हुये कहा, '' अपना तकिया उठा, मैंने सारे पैसे और गहने इस तकिये के नीचे ही तो छिपाये थे, मुझे पक्का पता था कि तू सब कुछ ढूँढ़ेगा, पर स्वयं के तकिये के नीचे नहीं ढूँढ़ेगा इसलिये मैंने उन्हें वहीं छिपा दिया।''